प्रह्लाद चरित

स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

प्रह्लाद-चरित

प्रवक्ता

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री

सुश्री कुन्ती धर्मचन्द जालान

संपादिका

साध्वी सुश्री कंचन

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

प्रथम संस्करण : 1100
20 जुलाई 2001
आनन्द जयन्ती
द्वितीय संस्करण : 1100
रामनवमी
3 अप्रैल 2009
तृतीय संस्करण : 500
जुलाई 2020

© सर्वाधिकार सुरक्षित

●

मूल्य : रु. 170/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
मो. : 9415624020

विनम्र निवेदन

भगवान्‌के अवतारोंमें नृसिंह अवतारकी अपनी महिमा है और इस अवतारका हेतु भक्त प्रह्लाद हैं।

जिज्ञासा उठनी स्वाभाविक है कि ऐसा क्या है प्रह्लादमें कि भगवान्‌को दैत्य बालकके लिए अवतार लेना पड़ा?

इस प्रश्नके उत्तरके लिए प्रह्लादके चरित्रके बारेमें जाननेकी आवश्यकता होगी।

आपकी यह आवश्यकता श्रीमद्भागवत् महापुराणके सातवें स्कन्ध या श्री विष्णु पुराणको पढ़ने-सुननेसे पूरी हो सकती थी; परन्तु इस पुस्तकमें श्रीमद्भागवतके विश्रुत व्याख्याता अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीने उपरोक्त दोनों पुराणोंके आधार पर प्रह्लाद चरितका अमृत मुम्बईके श्रोताओंको पान कराया है। विषयके गाम्भीर्यके अनुसार उन्होंने श्रुतियोंका भी आधार लिया है। महाराजश्रीकी वही अमृतवाणी इस पुस्तकके रूपमें आपके कर कमलोंमें है।

इस पुस्तकको यह स्वरूप प्रदान करनेका श्रेय जाता है महाराजश्रीकी परमभक्ता सुश्री कुन्ती धर्मचन्द जालानको। कुन्ती बहनने प्रवचनके टेपोंसे इस ग्रन्थको लिपिबद्ध करनेका श्रमसाध्य काम तो किया ही साथ-साथ अपने-तुभ्यं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये वाले भावके साथ इस पुस्तकको प्रकाशित करनेमें आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया है। प्रह्लाद चरितकी पाण्डुलिपिका संशोधन-सम्पादन साध्वी **सुश्री कंचनने** बड़े मनोयोग एवं तत्परतासे किया।

-ट्रस्टी
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
मुम्बई / वृन्दावन

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	प्रवचन	पृष्ठ संख्या
१.	अवतरणिका	क
२.	प्रवचन-१	१
३.	प्रवचन-२	१७
४.	प्रवचन-३	२७
५.	प्रवचन-४	४७
६.	प्रवचन-५	५६
७.	प्रवचन-६	६८
८.	प्रवचन-७	७५
९.	प्रवचन-८	८७
१०.	प्रवचन-९	९६
११.	प्रवचन-१०	१०७
१२.	प्रवचन-११	११८
१३.	प्रवचन-१२	१२७
१४.	प्रवचन-१३	१३६
१५.	प्रवचन-१४	१४४
१६.	प्रवचन-१५	१५९
१७.	प्रवचन-१६	१६८
१८.	प्रवचन-१७	१८४
१९.	प्रवचन-१८	१९३
२०.	प्रवचन-१९	२०८
२१.	प्रवचन-२०	२१८
२२.	प्रवचन-२१	२२७
२३.	प्रवचन-२२	२४१
२४.	प्रवचन-२३	२५६
२५.	प्रवचन-२४	२७१
२६.	प्रवचन-२५	२८९

अवतरणिका

जो काम भगवान्‌के किये नहीं होता है उसको भगवान्‌के भक्त लोग करते हैं। जो काम भगवान्‌से नहीं बनता है वह काम भगवान्‌के भक्तलोग बनाते हैं। आप देखो, भागवतके प्रारम्भमें ही जब परीक्षित गर्भमें थे तब अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र चलाया। उत्तरा आयी शरणमें, भगवान्‌ने गर्भमें प्रवेश किया और परीक्षितकी रक्षा की—भगवान्‌ने काम बना दिया। यह काम भगवान्‌से बन गया, क्योंकि वह हथियारका काम था, गर्भमें प्रवेश करनेका काम था। लेकिन जब एक ब्राह्मणने राजा परीक्षितको शाप दे दिया तब वह भगवान्‌के काबूसे बाहर हो गया। भगवान् ब्राह्मणके शापको नहीं मिटा सकते। तब शुकदेवजी आये। वाणीसे दिया था शाप ब्राह्मणने और वाणीसे ही श्रीमद्भागवत बोलकर—मन्त्रके बदले मन्त्र पढ़कर श्रीशुकदेवजीने उस शापको निस्तेज कर दिया; क्योंकि ब्राह्मणके शापसे जो मरता है उसकी दुर्गति होती है—

ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः। भागवत ९.४.१४

नरकमें जाना पड़ता परीक्षितको। परन्तु, शुकदेवजीने वाणीसे दिये हुए शापको अपनी अदुभुत वाणीसे मिटा दिया।

आप देखें—राजा युधिष्ठिरको हुआ शोक और व्यासजी आये। भगवान्‌ने स्वयं बहुत समझाया राजा युधिष्ठिरको कि यह काल-देवताका खेल है, जो दुःख होता है, संघर्ष होता है, प्रेम होता है, लोग मरते हैं, जीते हैं—इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है युधिष्ठिर। तो स्वयं भगवान् समझानेवाले और धर्मराज युधिष्ठिर समझनेवाले, फिर भी श्रीकृष्णके समझानेपर उनका शोक दूर नहीं हुआ। भीष्म पितामहने जब उनको समझाया तब उनका शोक दूर हुआ। क्या अद्‌भुत-लीला है!

एक क्या ऐसी अनेक कथाएँ हैं—ध्रुवका चरित्र आप जानते ही हैं। भगवान्‌ने स्वयं दर्शन दिया ध्रुवको और उनके कपोलसे शङ्खका स्पर्श

कराकर ब्रह्मज्ञान भी दिया। ध्रुव भक्त भी थे और ब्रह्मज्ञानी भी थे, लेकिन उनके भाईको जब यक्षोंने मारा तब ऐसा क्रोध आया ध्रुवको कि लाखों-लाखों यक्षोंका मार दिया उन्होंने और यक्षपुरी अलका पर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके उसको नष्ट करना चाहते थे। भगवान्‌का जिसको दर्शन हो चुका हो उसको इतना क्रोध, इतनी बदला लेनेकी भावना, तब भगवान्‌के परमभक्त, परम भागवत—मनुजी महाराज आये और उन्होंने ध्रुवको समझाया, बेटे, इतना क्रोध मत करो—

'अलं वत्सातिरोषेण'। (भागवत ४.११.७)

क्रोध वाणीका शत्रु है, जिसके हृदयमें आता है उसकी हानि करता है। तुम्हारा हृदय तो भगवान्‌के रहनेकी जगह है। ब्रह्माजी कमल पर रहते हैं—कितना ठण्डा होता है; विष्णु भगवान् क्षीर-सागरमें शेष-शैय्या पर रहते हैं और वह कितनी ठण्डी होगी—क्षीर-सागरको छू-छूकर हवा आती है कोमल-कोमल। आप लोगोंने सर्पका स्पर्श कभी किया हो कि न किया हो—बहुत सुकुमार होता है और उसपर भगवान् सोते हैं और शंकर भगवान् कैलाशके शिखरपर-बर्फके पहाड़ पर रहते हैं। तो भगवान् ठण्डी जगहमें रहते हैं और क्रोधकी आग जब तुम्हारे हृदयमें जल गयी तब वहाँ भगवान् कैसे रहेंगे? क्या भट्टीमें भगवान् रहेंगे? ध्रुव तुमने यह क्या गलत काम किया। ध्रुव मान गये। भगवान्‌के दर्शनसे जो काम नहीं हुआ, वह स्वयंभू मनु—परम भागवत्‌के समझानेसे बन गया। मनुजीने ध्रुवको जीवन्मुक्त बना दिया, राग-द्वेषसे रहित बना दिया।

भगवान्‌ने ध्रुवको जीवन्मुक्त नहीं बनाया, मनुजीने ध्रुवको जीवन्मुक्त बनाया। भागवत्‌में ही यह कथा है।

पृथुके सामने भगवान् प्रकट हुए—यह कथा भी भागवतमें है और इन्द्रका हाथ पकड़कर ले गये और इन्द्रसे बोले कि तुम पृथुसे क्षमा माँगो और पृथुसे बोले कि तुम इसे क्षमा कर दो। क्योंकि, जब परस्परमें विद्वेष होता है तब धर्मके फल सुखका उपभोग नहीं हो सकता—किसीके मनमें क्रोध बना हो, उसने धर्म तो खूब किया पर

क्रोध बना हुआ है, तो धर्मका फल तो होता है सुख और क्रोधमें सुख होता नहीं। तो धर्मका फल क्रोध आनेपर रुक जाता है, क्योंकि क्रोधमें जो जलन होगी, वह धर्मका फल थोड़े ही है। तो दोनोंको क्षमा करवाया—उनको उनसे, उनको उनसे। भगवान्‌का दर्शन हुआ, बड़ी स्तुति-प्रार्थना की पृथुने, बड़ी पूजा की, यहाँतक कि जब भगवान् गरुड़पर चढ़कर जाने लगे तब पृथुने उनका पाँव पकड़ लिया। अब एक पाँव गरुड़पर और एक पाँव पृथुके हाथमें। भगवान् बहुत देरतक ऐसे ही खड़े रहे, आँसूकी धारा झर-झर पृथुकी आँखोंसे बहती रही; लेकिन फिर भी पृथुका काम नहीं बना। उनका काम तब बना जब सिद्ध जीवन्मुक्त भगवान्‌के भक्त सनकादि उनके पास आये और उन्होंने पृथुको उपदेश किया—'तमवेहि सोऽस्मि'। महात्माओंने कहा कि जो परमात्मामें सत्-चित्-आनन्द घन तत्त्व है, वही तुम हो। तो वहाँ भी भगवान्‌के दर्शनसे काम नहीं बना; महात्माओंके दर्शनसे काम बना। सनकादि परम भागवत् हैं, इनके दर्शनसे काम बना।

ध्रुवके ही वंशमें एक प्राचीनबर्हि नामके राजा हुए, उनके पुत्रका नाम था प्रचेता। वे जब तपस्या करनेके लिए गये तब पहले उन्हें शङ्कर भगवान्‌का दर्शन हुआ। शङ्करजीने कहा—तुम ध्रुवके वंशके हो बड़े धर्मात्मा हो, भगवान्‌की भक्ति करनेके योग्य हो। तो शङ्करजीने उनको मन्त्रोपदेश किया—यह मन्त्र जपो, यह स्तुति करो और इस ढंगसे रहो तुम्हें भगवान् नारायणके दर्शन होंगे। उन्होंने वैसा किया और उनको नारायणके दर्शन हुए। नारायणने भी प्रसन्न होकर खूब वरदान दिया उनको। जब नारायण दर्शन देकर चले गये और प्रचेता लोग अपने राज्यमें आये तब देखा कि प्राचीनबर्हि मर चुके हैं, कोई व्यवस्था नहीं है और सारा राज्य उच्छिन्न हो गया है, तो क्रोध आ गया और क्रोधमें आकर जंगलोंको जलाने लगे। तब वृक्षोंके राजा चन्द्रमा उनके पास आये और उन्होंने उनको शान्त करवाया, उनका विवाह करवाया, फिर उनके पुत्र हुआ। सबकुछ हुआ महाराज, परन्तु मनमें जो क्रोध

था उनके, वह नहीं गया। नारायणके दर्शनके बाद भी क्रोध—भयंकर क्रोध था मनमें। अन्तमें उनके पास नारदजी गये और जो काम शङ्करजीके दर्शनसे नहीं हुआ, नारायणके दर्शन और वरदानसे नहीं हुआ वह काम किसने किया? कि वह काम नारदजीने किया। नारदजीने उनके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति भर दी।

'तत्कर्म हरितोषम् यत्सा विद्या या तन्मतिर्यया'। भागवत ४.२९.४९

कर्म वही कर्म है जिससे भगवान्‌की सेवा हो और वे प्रसन्न हों। नारायणका दर्शन करके, इतनी तपस्या करके भी तुमलोग इतने क्रोधी? कैसे रहेंगे भगवान् तुम्हारे हृदयमें? तो नारदजी भी परमभागवत हैं, उन्होंने प्रचेताओंको भक्तिका दान किया, उनके हृदयको शुद्ध किया, उनको परमात्म-तत्त्वका अनुभव कराया। जो काम भगवान्‌के दर्शनसे नहीं होता है वह काम भक्त लोग कर देते हैं।

प्रह्लाद भगवान्‌के ऐसे भक्त हैं कि जो काम भगवान् नहीं कर सकते हैं वह काम प्रह्लाद कर देते हैं। प्रह्लादमें यह सामर्थ्य है। सारी विश्व-सृष्टिको परमानन्द दान करनेके लिए प्रह्लाद आये हैं। भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको मार तो दिया, परन्तु हिरण्यकशिपुका कल्याण भगवान्‌के दर्शनसे या भगवान्‌के मारनेसे नहीं हुआ—भागवत्‌में यह बात साफ-साफ कही हुई है। हिरण्यकशिपुका कल्याण हुआ प्रह्लादके पुत्र-रूपमें पैदा होनेसे। यदि हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद नहीं हुए होते तो नृसिंह भगवान् भी उसका कल्याण नहीं कर सकते थे।

इस तरह पुराणोंकी कथाओंमें सबकुछ स्वर्गका ही नहीं है, सबकुछ वैकुण्ठका ही नहीं है, सबकुछ नारायणका दर्शन होनेमें ही नहीं है, हमारे जीवनमें जो वस्तु प्राप्त हो सके उससे है। क्योंकि—न हम वैकुण्ठमें जा सकते हैं, न कैलाशमें जा सकते हैं—

'अदृष्टं द्रष्टाऽश्रुतः श्रोता'। वृहदा० ३.७.२३

जो अनदेखा देखनेवाला है, जो अनसुना सुननेवाला है उसको हमलोग चाहें कि हम अपनी बुद्धिसे देख सकें तो किसीकी बुद्धिमें यह सामर्थ्य नहीं है, जबतक महात्मा उस परमात्माका साक्षात्कार नहीं

करा दें। प्रह्लादकी ही कथा है—प्रह्लादको भगवान्‌की बड़ी भारी कृपा प्राप्त थी, उनके लिए उनके बापको मार दिया। लेकिन प्रह्लादका कल्याण कब हुआ—यह भागवतमें ही है, ढूँढ़ोगे तो मिल जायेगा। एक अध्याय पूरा इस विषयका है कि प्रह्लादका कल्याण तब हुआ जब उनको दक्षिणमें कावेरीके तटपर सह्याद्रिके समीप दत्तात्रेयका दर्शन हुआ और उन्होंने प्रह्लादको उपदेश किया। दत्तात्रेयके उपदेश करनेके बाद प्रह्लादको परम-तत्त्वका अनुभव हुआ और जीवन-मुक्तिका परम-सुख प्राप्त हुआ।

ो नारायण, हमारे जीवनमें भक्तोंका सत्संग प्राप्त हो, भक्तोंकी कृपा प्राप्त हो—भक्त लोग अनुग्रह करके हमारे अन्तःकरणकी शुद्धिका मार्ग दिखावें, हमारे अन्तःकरणको शुद्ध करें। भगवान् अन्तःकरण शुद्ध नहीं करते—देखो भरी सभामें यह बोलता हूँ। क्योंकि भगवान् तो सबके हृदयमें रहते हैं, लेकिन हमको दुःख भी होता है, सुख भी होता है, काम भी होता है, क्रोध भी होता है, लोभ भी होता है और वे बैठे-बैठे टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं—चाहे कोई जीये चाहे कोई मरे। तो, जब महात्मा लोग हमारे हृदयमें सद्‌भाव भरते हैं, भक्ति भरते हैं, ज्ञानका सञ्चार करते हैं, तब हमारा कल्याण होता है। तो, हमारे जीवनमें करनेकी वस्तु है—सत्सङ्ग; हमारे हृदयमें रहनेकी वस्तु है भगवान्‌की भक्ति; हमारे उच्चारण करनेकी वस्तु है—भगवान्‌का नाम।

इसलिए आपलोग खूब प्रेमसे पुरुषोत्तम-मासमें प्रह्लाद-चरित्रका श्रवण कीजिए और उसमें जो भगवद्-भक्ति और भगवान्‌की महिमा बतायी है, उसको समझिये; भगवान्‌के नामका उच्चारण कीजिए। अगर अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा तो आपका ब्रह्मज्ञान भी आपको इस जीवनमें सुखी नहीं कर सकेगा। जब अन्तःकरण शुद्ध होगा तब ज्ञानका निर्मल प्रभाव आपके जीवनमें प्रकट होगा और आप निर्द्वन्द्व हो जायेंगे। और, नहीं तो वही नोन, वही लकड़ी और वही दुनिया और उसके लिए एक ओर रोते भी रहेंगे और एक ओर ज्ञानी भी बनेंगे। एक ओर दुःखी भी रहेंगे। काम-क्रोधके वशमें भी

रहेंगे और फिर छाती तानकर बोलेंगे कि हम तो ब्रह्मज्ञानी हैं। तो ऐसे ब्रह्मज्ञानको लेकर क्या करेंगे जो हमारे जीवनमें काम नहीं देता है?

अब थोड़ी-सी चर्चा श्रवणके बारेमें भी कर लें, कि श्रवण कैसे करना चाहिए?

यह तो आपको मालूम ही है कि जो वस्तु किसी लौकिक प्रमाणसे ज्ञात नहीं होती, जो शब्द हम कानसे सुन नहीं सकते, जिसको आँखसे देख नहीं सकते, जिसको जीभसे चख नहीं सकते, जिसके बारेमें विचार निश्चय करनेके लिए हमारे मन और बुद्धिको कोई बाहरी सामग्री नहीं मिलती—उस वस्तुके बारेमें यदि हम श्रवण नहीं करें तो हमें उसका ज्ञान नहीं हो सकता। ब्रह्मका स्वरूप ऐसा है अथवा आत्मा और ब्रह्म एक है अथवा अमुक धर्मानुष्ठानसे स्वर्ग मिलता है या वैकुण्ठ मिलता है या भगवान् प्रसन्न होते हैं—इन प्रश्नोंका उत्तर दूरबीन-खुर्दबीनसे, साइन्स-गणितसे, अनुमानसे कोई निकालना चाहे तो नहीं मिल सकता। जो इनसे सिद्ध होगा वह जड़-पदार्थका ही अंश होगा और जो चेतन होता है वह द्रष्टा होता है, दृश्य नहीं होता। और, वह और किसी तरहसे भी आपको नहीं मिल सकता—आप चाहे जितनी युक्ति लगाओ, तर्क लगाओ, गणित लगाओ, ध्यान लगाओ, समाधि लगाओ, उसके लिए आपको श्रवण करना ही पड़ेगा।

'न नरेणावरेण प्रोक्त एव सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः'।

कठोपनिषद्का कहना है कि यह इतना सूक्ष्म है, इतना सूक्ष्म है कि छोटे-मोटे मनुष्यके द्वारा समझाने पर समझमें नहीं आता है। जब आचार्यसे विद्याकी प्राप्ति होती है तब वह लक्ष्य-वस्तुका साक्षात्कार कराती है। इसलिए, यदि भगवान्के रास्तेमें चलना है, उनको प्राप्त करना है तो अनुभवी महापुरुषों द्वारा शास्त्रका श्रवण करना आवश्यक है। जो लोग 'साईन्स'से समझाते हैं वे लोग 'साईन्स'से कभी काटेंगे भी। हाँ, यदि श्रवणका समर्थन करनेके लिए 'साईन्स'का गणितका या तर्कका उपयोग करते हों तो बहुत बढ़िया है।

अब बताते हैं कि श्रवण कैसा होना चाहिए?

श्रवणमें तीन अङ्ग होने चाहिए—श्रद्धा पहला अङ्ग है। जो हम श्रवण कर रहे हैं वह शास्त्रकी वाणी है, सत्पुरुषकी वाणी है और सत्य है। यह श्रद्धा होनी आवश्यक है। हृत्-प्रसाद-निर्मल हृदय—दूसरा अङ्ग है। माने हृदय निर्मल होना चाहिए। यदि हृदय निर्मल नहीं होगा तो जब हम दोषोंका वर्णन सुनेंगे तब हम समझेंगे कि ये सारे दोष हमारे दुश्मनमें हैं और जब हम गुणोंका वर्णन सुनेंगे तब हम समझेंगे कि ये सारे गुण हमारे अन्दर या हमारे दोस्तके अन्दर हैं—जिससे द्वेष होगा उसमें दोष दीखने लगेंगे और जिससे राग होगा उसमें गुण दीखने लगेंगे। और इस तरह हमारा अन्तःकरण शुद्ध होनेके बजाय और अशुद्ध हो जायेगा। इसलिए, परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें चलनेवालोंका हृदय शुद्ध होना चाहिए, हृदय निर्मल होना चाहिए।

'मनन' भी दो प्रकारका होता है—वस्तुकी दृष्टिसे 'मनन' होता है पहला और विचारकी दृष्टिसे 'मनन' होता है दूसरा।

जब हम परमेश्वरके सम्बन्धमें विचार करते हैं तब एक बात आप बिलकुल अपने ध्यानमें रख लें कि कृष्णका दर्शन हो जाये या रामका दर्शन हो जाये या नारायणका दर्शन हो जाये या शिवका दर्शन हो जाये, आप पहचान नहीं सकते हैं कि यह ईश्वर हैं। असलमें ईश्वर तो उसको कहते हैं जो जब सृष्टि नहीं थी तब भी था और जिसने सृष्टि बनायी, जो इसका पालन करता है और अन्तमें जो इसका संहार भी कर देता है और फिर भी स्वयं रहता है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।

तैत्ति० ३.१.१

अब आप बताओ कि जब आप एक व्यक्तिके रूपमें किसीका दर्शन करोगे तब, इसने सृष्टि बानायी है यह बात आपको कैसे मालूम पड़ेगी? आपको कैसे मालूम पड़ेगा कि यही सारी सृष्टिका पालन करता है और यही अन्तमें सृष्टिका संहार करेगा? वह केवल आपके हृदयका भाव होगा।

इस तरह हम देखते हैं कि बिना श्रवणके ईश्वरका साक्षात्कार अधूरा होगा, अपने मनका माना हुआ होगा। असलमें तो ईश्वर कैसा होता है इसका पता तो महापुरुषोंके द्वारा श्रवण और मनन करनेके पश्चात् ही चलेगा।

श्रोतव्यो मनतव्यो निदिध्यासितव्यः।

भक्ति-सिद्धान्तमें भी श्रवण मुख्य है—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः।

भगवान्‌के बारेमें श्रवण करना चाहिए। बिना श्रवणके आपको कुछ पता नहीं चलेगा। यदि एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीर आपके सामने खींच दी जाये और कोई आपको बोलकर न बतावे कि यह 'अ' है कि यह 'क' है, तो कोई ऐसा नहीं है जो उस अक्षरको पहचान ले। और तो और अपनी माँको, अपने बापको, अपने बेटे-बेटीको भी आप बिना श्रवणके नहीं पहचान सकते। और सच तो यह है कि आपके जन्मके दो दिन, दस दिन, पचास दिन बाद खींची गयी आपकी अपनी फोटोको देखकर भी आप नहीं पहचान सकते कि यह फोटो आपकी है। उस फोटोकी पहचानमें भी श्रवणकी आवश्यकता पड़ेगी। जब कोई आपको बतावेगा कि जब तुम बच्चे थे तब की यह फोटो है—तब आप समझ पावेंगे कि यह आप हैं।

तो जो लोग यह सोचते हैं कि हम श्रवणके बिना धर्म कर लेंगे, स्वर्ग पा लेंगे, ईश्वर पा लेंगे, हमें यों ही आत्मा-ब्रह्मकी एकताका साक्षात्कार हो जावेगा, वे लोग हमारे अध्यात्म-शास्त्र और धर्मके रहस्यसे सर्वथा अपरिचित हैं। श्रवणके बिना वे कुछ नहीं प्राप्त कर सकते।

तो नारायण, भगवान्‌के प्रति भक्ति बढ़ानेका साधन भक्तोंकी महिमाका श्रवण ही है—

'यद्भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम्'।

प्रह्लाद-चरित

(१)

यदि आप अपने मनमें भगवत्-सम्बन्धी वासना बनायेंगे तो आप किस जातिके हैं, यह बात आपसे नहीं पूछी जायेगी। जैसे, प्रह्लाद दैत्य-वंशमें पैदा हुए थे, उनकी माता कोई बहुत ऊँचे वंशकी नहीं थी और उनके पिता हिरण्यकशिपु तो अभिशप्त थे—भगवान्‌के परम भक्त सनकादिकोंके शापसे वे असुर हो गये थे। तो पिता भी अच्छा कहाँ हुआ और माता भी अच्छी कहाँ हुई? फिर भी इनके पुत्र प्रह्लादकी भगवान्‌ने पग-पग पर रक्षा की और उन्हें अपना साक्षात्कार कराया।

इस विषयमें राजा परीक्षितके मनमें एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ, जिसका समाधान श्रीशुकदेवजी महाराजने श्रीमद्भागवतके 'सप्तम-स्कन्ध'में किया है।

राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजी महाराजसे प्रश्न करते हैं—

समः प्रियः सुहृद् ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा॥

(भागवत ७.१.१)

महाराज, एक बात बताइये कि जब ईश्वर सम हैं, ईश्वर सबके लिए आनन्ददाता हैं, ईश्वर सबके हितकारी हैं और किसी निमित्तसे

नहीं हैं, स्वयं हैं अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए सम हैं, प्रिय हैं, सुहृद् हैं, फिर वे इन्द्रके लिए दैत्योंको क्यों मारते हैं? यह तो जिसके हृदयमें विषमता भरी होती है, राग-द्वेष भरा होता है, वह ऐसा करता है। भगवान्‌के हृदयमें तो राग-द्वेष है नहीं, फिर वे ऐसा क्यों करते हैं? देवताओंका पक्ष लेकर दैत्योंको क्यों मारते हैं?

अब देखो, थोड़ा-सा वेदान्ती लोग ध्यान दें। भगवान्‌में तीन गुण बताये-समता, प्रियता और सुहृदता। यह समता कहाँसे आती है? ज्ञानीसे पूछो कि तुम कौन हो? तो बोलेगा—'सर्वाधिष्ठान अद्वितीय-ब्रह्म'। अब, जो लोग तुम्हारे अद्वय ब्रह्म-स्वरूपको नहीं जानते, वे तुममें अध्यास करते हैं। माने तुमको रागी समझते हैं, तुमको द्वेषी समझते हैं। अध्यस्त चाहे कुछ भी हो, रज्जुमें चाहे कोई भी कल्पनाकी जाये साँपकी, मालाकी, दण्डकी वह जो ज्यों-का-त्यों सम है। कारण, किसी भी अध्यस्त वस्तुके साथ अधिष्ठानका कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे लोग हमारे स्वरूपमें चाहे जो भी कल्पना करें, हमारा स्वरूप उन कल्पनाओंसे अछूता ही रहता है, अस्पृष्ट ही रहता है। यह अधिष्ठान-स्वरूपगत जो समता है वह ईश्वरमें भी प्रकट होती है। क्योंकि वही अधिष्ठान सद्वस्तु जो है वह मायामें प्रतिबिम्बित होती है। तो, मायाकी उपाधि होने पर भी और मायाकी उपाधिसे उपहित होने पर भी ईश्वर सम रहता है!

अब दूसरी बात देखो कि वह प्रिय है! तो भाई मेरे, ब्रह्म आनन्द-स्वरूप है कि नहीं? बोले कि अपने आत्माके रूपमें परम प्रेमास्पद है। यहाँ तक कि माया-देशमें उसकी जो परछाँई पड़ती है, वह भी प्रियताको, आनन्दको उँडेलती रहती है। यह सच्चिदानन्दकी, घनब्रह्मकी परछाँईका नाम ईश्वर है, ऐसा बोलते हैं आभासवादी, प्रतिबिम्बवादी और माया उपाधिसे अवच्छिन्न सच्चिदानन्द ही साक्षात् ब्रह्म है, यह बोलते हैं अवच्छेदवादी और माया-छाया कल्पित है, परब्रह्मके सिवाय

दूसरा कोई है ही नहीं, यह बोलते हैं ब्रह्मवादी। अब आप देखो, वही आनन्द मायामें प्रतिबिम्बित हुआ तो ईश्वर आनन्द रूप है। सबके लिए प्रिय-ही-प्रिय है सबको वह रस देता है, स्वाद देता है! विषके कीड़ेको वह विषमें भी मजा दे देता है, मांस खानेवालेको वह मांसमें भी आनन्द दे देता है, सोने वालोंको सोनेमें भी आनन्द दे देता है और काम करनेवालोंको काममें भी आनन्द देता है। तात्पर्य यह है कि वह सबको आनन्द देता है और सबका प्रिय है!

तीसरी बात है कि वह सुहृद है—सर्वदा सबका हित करता है। सम है विषम नहीं है, प्रिय है अप्रिय नहीं है और सुहृद है; दुर्हृद नहीं है। इसीसे देखो, जिसको हम ज्ञानी पुरुष कहते हैं उसकी चर्चा छोड़ दो, जीवमें भी यदि ये गुण आ जाय वह सबके साथ समता बरते, सबको प्यार करे और सबका भला चाहे तो ज्ञान स्वरूप भगवान् जो है वह सबके हृदयमें सुष्ठु-ज्ञान देनेके लिए बैठा हुआ है—यह हित है, यह हित है, यह हित है।

तो, अधिष्ठान-स्वरूपका प्रतिबिम्बिन है सम, चित्-स्वरूपका प्रतिबिम्बन है सुहृद और आनन्द-स्वरूपका प्रतिबिम्बन है प्रिय। यह जैसे ब्रह्म-चैतन्यमें है, वैसे ही ईश्वर-चैतन्यमें है और आत्म-चैतन्यमें भी ठीक-ठीक वैसा ही है। पर, कभी यदि अज्ञान-वश अपनेमें विषमताका आरोप हो जाय और हम अपनेको किसीका शत्रु-मित्र मान लें, तो, उस समय हम ब्रह्म-चैतन्यसे, ईश्वर-चैतन्यसे, आत्म-चैतन्यसे विमुख हो जाते हैं।

तो स्वयंका अर्थ है-निर्निमित्त भूतानां भगवान् स्वयं भूत-प्रेत भेंट चढ़ानेसे खुश होते हैं, नौकर-चाकर इनाम देनेसे खुश होते हैं, साहब-मिनिस्टर रिश्वत मिलनेसे खुश होते हैं और भगवान् कैसे खुश होते हैं? बोले—स्वयं समः स्वयं प्रियः स्वयं सुहृद। देखो, महात्मा एक दृष्टिसे ईश्वरसे बड़ा होता है। इसका यह मतलब नहीं कि हम ईश्वरसे

बड़े हैं, या ईश्वर हैं परन्तु महात्माकी जो आत्मा है और महात्माकी जो बुद्धि है, दोनोंके बीचमें ईश्वरका निवास है। महात्मा पहले ईश्वरको देखता है, फिर बुद्धिको और फिर संसार देखनेमें आता है।

धियो यो नः प्रचोदयात्।

बुद्धिका प्रेरक है परमेश्वर और दृष्टा साक्षी अद्वितीय ब्रह्म है महात्मा। तो, ब्रह्म-चेतनाकी अपेक्षा ईश्वर-चेतना दूसरे नम्बर पर आती है और बुद्धिमें आरूढ़-चेतना जो है वह तीसरे नम्बर पर आती है। हाँ तो महात्माकी स्थिति कहाँ है? हमारे वृन्दावनमें एक महात्मा थे, वे बहुत बढ़िया छप्पय बोला करते थे, हमको पूरा याद नहीं है—

झण्डा गाड़ो जाय के हद-बेहद के पार।
हद-बेहद के पार दूर जहाँ अनहद बाजे॥

हमारा झण्डा वहाँ गड़ना चाहिए? कहाँ? कि हद्-बेहद्के पार 'हद' माने सीमा—संसारकी हद होती है और बेहद है असीम ईश्वर और इन दोनोंके परे 'आत्म-चैतन्य' महात्माका निवास है। तो नारायण, महात्मा भी अधिष्ठान स्वरूप ही है, प्रिय स्वरूप ही है, सुहृद स्वरूप ही है।

अब फिर से प्रश्न पर आ जाते हैं। प्रश्न यह है कि भगवान जो हैं ये भक्त का पक्षपात क्यों करते हैं? और, इसका उत्तर भी यही है कि भगवान् भक्तका पक्षपात करते हैं। क्यों करते हैं—यह बात आगे बतायी जाती है।

एक कथा आती है कि भगवान्ने वृत्तासुरके वधके लिए इन्द्रको अपनी शक्ति दे दी। माने इन्द्रके वज्रमें अपनी शक्ति भर दी और वृत्तासुरको मरवा दिया। दूसरी कथा आती है कि भगवान्ने देवताओंकी रक्षाके लिए दितिके गर्भमें प्रवेश करके उसके गर्भस्थ बालकके उन्चास टुकड़े कर दिये और अन्तमें उनको देवताओंका शत्रु न रहने देकर उनके पक्षमें कर दिया।

इन सब कथाओंको सुननेसे भगवान्‌के गुणोंके प्रति शङ्का होती है कि भगवान् सम नहीं हैं, विषम हैं, पक्षपाती हैं! इन्द्रके लिए ये विषम पुरुषकी तरह दैत्योंका वध करते हैं? क्या हो जाता है इनको जो किसीके साथ न्याय करते हैं और किसीके साथ अन्याय? यह तो संसारी लोग पत्नीके लिए, पुत्रके लिए, अपने परिवारके लिए दूसरोंकी पत्नी, पुत्र, परिवारको कष्ट पहुँचाते हैं। भगवान्‌को तो ऐसा नहीं करना चाहिए। भगवानका तो काम नहीं है यह। नहीं हो तुम भगवान्! जब एक पक्षकी स्थितिके लिए दूसरे पक्षको कष्ट पहुँचाते हो।

वैषम्य और नैर्घृण्य। किसीके प्रति पक्षपात और किसीके प्रति निर्दयता। देखो, ये दो दोष ब्रह्ममें तो होते नहीं और महात्मामें कदाचित् छायाकी तरह आ भी जायँ तो फिर स्वप्नवत् मिट जाते हैं! लेकिन, ईश्वरमें तो दोनों दोष रहते हैं! तो बोले कि जब ब्रह्ममें ये दोष नहीं होते, एक महात्मामें नहीं होते, तब ईश्वरमें भी ये नहीं होने चाहिए। कहो कि भाई, इन्द्रादि देवता भगवान्‌की बड़ी पूजा करते हैं, बड़ी भेंट चढ़ाते हैं। जो उनकी पूजा-पत्री लेकर भगवान् उनका पक्ष लेते हैं। बोले—नहीं ऐसा नहीं है, ये तो **साक्षान्निः श्रेयसात्मनः** हैं। ये तो मुक्त-स्वरूप हैं। निःश्रेयस इनका स्वरूप है। इनको देवताओंसे कुछ लेना नहीं है और दैत्योंसे इनकी कोई हानि नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे, रज्जुमें कल्पित सर्प रज्जुको विषैली नहीं बना सकता और रज्जुमें कल्पित माला रज्जुकी शोभा नहीं बढ़ा सकती। तो ये साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप हैं, निःश्रेयस स्वरूप हैं। इनको देवताओंसे क्या लेना-देना कि उनका पक्षपात लेकर दैत्योंको मारते हैं?

राजा परीक्षित बोले कि 'नारायण गुणान् प्रति संशयः' यह सब होते हुए भी नारायणके गुणोंके प्रति हमारे मनमें बड़ा संशय है, बड़ी शङ्का है कि भगवान् आखिर ऐसा क्यों करते हैं? जब सृष्टिमें उनको किसीसे कोई प्रयोजन नहीं है, अपने आपमें वे परिपूर्ण हैं तब वे ऐसा

क्यों करते हैं? उनको क्या किसीसे लेना, क्या किसीको देना, क्या किसीसे हानि, क्या किसीसे लाभ? तो फिर वे किसीको मारते क्यों हैं और किसीका पक्षपात क्यों करते हैं।

न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः।
नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि॥
इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति।
संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति॥

भा. ७.१.२-३

अब देखें बिना सत्के कोई वस्तु नहीं होती। लोग बोलते हैं—घड़ा है, कपड़ा है, मकान है, स्त्री है, पुरुष है। बिना सत्ताके कोई वस्तु नहीं होती। यहाँ तक कि नहीं भी बोलते हैं तो बोलते हैं—नहीं है। सत्ता सबमें स्थित है, इसके बिना किसी भी वस्तुकी स्थिति हो ही नहीं सकती। सत्ता माने होना। सबमें है, है, है भरा हुआ है। आप हैं ना, क्या शंका है?

दूसरी बात है 'प्रियः'। आप सबको आनन्द देनेवाले हैं सबके प्यारे हैं। विषके कीड़ेके लिए विष प्यारा होता है, कुतिया के लिए कुत्ता प्यारा होता है। संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसमें किसी-न-किसीके लिए आनन्द न हो। जब मरनेकी बहुत इच्छा होती है तब आदमीको जहर खानेमें छुटकारा मालूम पड़ता है, मुक्ति मालूम पड़ती है। ऐसी कोई वस्तु, ऐसी कोई क्रिया नहीं है, ऐसा कोई भाव नहीं है जो किसी-न-किसीके लिए प्रिय न हो। तो, यह 'प्रियता' कहाँसे आयी? हर वस्तु 'प्यारी' कैसे बनी और हर वस्तु 'है' कैसे बनी? उसमें सत्-स्वरूप, चित्-स्वरूप, और आनन्द-स्वरूप भगवान् पहलेसे ही भरपूर हैं। जैसे घड़ा बननेके पहले भी मिट्टी है और घड़ा बनने पर भी मिट्टी है, वैसे ही यह सृष्टि भी बननेसे पहले भी सत-चित् आनन्द-स्वरूप रहती है और सृष्टि बननेके बाद भी सत्-चित् आनन्द-स्वरूप है! तो ब्रह्म

जब माया लेकरके रहता है तब इसका नाम ईश्वर होता है। और जब मायाको भी कल्पित, मिथ्यारूपमें अनुभव कर लेता है। महात्मा, तब परब्रह्म परमात्मामें और महात्मामें कोई भेद नहीं रहता है; महात्मा भी ब्रह्म-रूपमें ही रहता है।

अब देखो, ब्रह्मको तो किसीसे राग-द्वेष है नहीं और महात्माको भी किसीसे राग-द्वेष नहीं है और ईश्वर? ईश्वरमें राग-द्वेष कैसे होगा? कि जब ईश्वरमें राग-द्वेष नहीं है तब वह दैत्योंको मारता क्यों है और देवताओंका पक्षपात क्यों करता है? यह है प्रश्नकी रूप-रेखा।

असलमें देवता और दैत्य दोनों मायाके बच्चे हैं। तो भगवान्‌के ही बच्चे हुए, क्योंकि माया स्वतंत्र रूपसे तो कोई बच्चा पैदा करती नहीं और उनको जो मारना और जिलाना है वह भी मायाका ही बच्चा है माने मायासे है। जैसे कोई नाटकका मैनेजर एक पात्रको राम बनाकर नाटकमें प्रस्तुत करता है और एक पात्रको रावण बनाकर। तो दोनों पात्र अभिनय करनेके लिए रङ्ग-मञ्च पर आये, एक-दूसरेसे लड़ते हैं और रावण मारा जाता है और राम बना पात्र जीत जाता है। तो, यह सब क्या है? कौन मरा, कौन जीया? ऐसे ही मायाके द्वारा परब्रह्म परमात्माका, ईश्वरका रङ्ग-मंच पर यह एक अभिनय-मात्र है; वस्तुतः न कोई मरता है, न कोई जीता है। महात्मा लोग तो इस बातको जानते हैं, संसारी लोग इस बातको नहीं जानते। परन्तु विचार तो वहाँ बैठकर किया जाता है, जहाँ हम हैं और जहाँसे हमको दिखता है।

तो बोले ठीक है भाई, देवताओंके लिए दैत्योंको मारना एक नाटक है। लेकिन, नाटक भी सोद्देश्य कि निरुद्देश्य है? यह नाटक आखिर किया क्यों जाता है? फिर बोले—देवता लोग कोई भेंट-पूजा देते होंगे और दैत्य लोग कुछ छीन लेते होंगे, जिसके कारण ईश्वर देवताओंका पक्ष लेता है और दैत्योंके प्रति निर्दयता करता है? नारायण! ईश्वरमें यह पक्षपात आया कैसे? यह प्रश्न है।

न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः।
नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि॥ भा. ७.१.२

एक महात्मा कहा करते थे कि इस संसारमें हर आदमीके अन्दर दो कमजोरी होती है और उन कमजोरियोंको पकड़ करके ही लोग उसको नचाते हैं। पहली कमजोरी हैं भय, माने किसीसे वह डरता है और उसको डरसे बचानेके लिए बोलेंगे कि हम तेरी रक्षा करें और फिर अपनी इच्छानुसार चलाते हैं और दूसरी कमजोरी है—लोभ, हमको अमुक चीज चाहिए। इसके लिए बोलेंगे हम तुमको यह चीज देंगे, पर जैसा हम कहते हैं वैसा तुम करो और वह फिर वैसा करता है।

तो यदि संसारमें भय और लोभ नहीं होता तो सृष्टि पर किसी अनुशासन नहीं होता। ईश्वर भी उसी अन्तःकरणको नचाता है जिसमें भय और लोभ होता है। ईश्वर आत्माको नहीं पकड़ता है, क्योंकि ईश्वरकी आत्मा और जीवकी आत्मा तो एक है, उसको ईश्वर भी कैसे पकड़ेगा? लेकिन, जब आत्मा अन्तःकरणके साथ तादात्म्यापन्न होकरके रहता है और अन्तःकरणमें भी भय और लोभ रहता है तब ईश्वर उसके अन्तःकरणको पकड़ करके नचाता है। यदि जीव अन्तःकरणको छोड़कर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाय तो आत्माके रूपमें वह ईश्वरका नियम्य नहीं रहता है, ईश्वर-स्वरूप हो जाता है और फिर वह बोल सकता है कि तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है। लेकिन, जब तक जीव अन्तःकरणको पकड़े हुए है, तब तक ईश्वर मायाको पकड़ करके दुनियासे सारा काम लेता है; ईश्वर मायाको पकड़ करके नियन्ता होता है और जीव अविद्या-मूलक अन्तःकरणको पकड़कर नियम्य हो जाता है। ईश्वर नचाता है और जीव नाचता है!

जग पेखन तुम देखन हारे।
विधि हरि सम्भु नचावन हारे॥

ब्रह्माको ब्रह्मा बनाया, विष्णुको विष्णु बनाया, शिवको शिव बनाया-सबको इसने बनाया और फिर सबको नचाने लग गया।

विधि हरि सम्भु नचावन हारे।

इस तरह यह सम्पूर्ण-विश्व नाच रहा है, माया नाच रही है। समग्र जीव नाच रहा है।

अब यह देखो कि इन सबको नचानेका काम ईश्वर कैसे करता है!

नट मर्कट इव सबहीं नचावत
राम खगेश वेद अस गावत॥

वेद यह गाते हैं कि जैसे एक मदारी अपने बन्दरको नचाता है, ऐसे ही भगवान् सब जीवोंको नचाता है।

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहीं नचावत राम गोसाईं॥

जैसे कठपुतलीको कोई नचा रहा हो, वैसे ही परमात्मा सम्पूर्ण विश्वको नचा रहा है। वह सूत्रात्मा है। उसके हाथमें सूत है और एक पर्दा है। सूतका नाम ब्रह्मा-विष्णु-महेश है और पर्देका नाम माया है और नचाये जाने वाले जीव सब कठपुतलीके समान हैं। तो, वह क्या करता है कि पर्देके पीछे छिपकर, सूत खींचता है और सूत खींच-खींच कर जीवोंको नचाता रहता है। जड़को भी वही नचाता है और चेतनको भी वही नचाता है।

पर प्रश्न तो ज्यों-का-त्यों रह गया कि उसने एकको कूबड़ी बना दिया, एकको कंस बना दिया और एक रूपमें कृष्ण होकरके आया—आखिर, यह सब अभिनय क्यों? जिसको कूबड़ी बनाया उसको कूबड़ी क्यों बनाया? जिसको कंस बनाया, रावण बनाया उसको कंस-रावण क्यों बनाया? जिसको महात्मा बनाया उसको महात्मा क्यों बनाया? एकको राजा क्यों बनाया, एकको रङ्क क्यों बनाया? एकको दुःखी क्यों

बनाया; एकको सुखी क्यों बनाया? एकका पक्ष लेकर लड़नेके लिए आ गया और एकका पक्ष छोड दिया, उसको मरने दिया—आखिर ईश्वर ऐसा क्यों करता है?

श्रीमद्भागवतमें एक प्रसङ्ग है, आपने जरूर पढ़ा तो होगा, पर उसके अर्थ पर ध्यान दिया हो कि न दिया हो। समुद्र-मन्थन हुआ, अमृत लेकर धन्वन्तरि प्रगट हुए और भगवान्‌ने स्वयं मोहिनी देवीका रूप धारण करके दैत्योंको ठगा और देवताओंको अमृत पिलाया। तो इसको देखकर तो यही लगता है कि देवताओंने भगवान्‌को कुछ दिया होगा और दैत्योंने उनका कुछ बिगाड़ किया होगा?

परन्तु, इसके बाद जो कथा है वह बड़ी अद्‌भुत है। जब अमृत पी लेनेके बाद देवता और दैत्य आपसमें लड़ने लगे तब अमृत पीये हुए देवता भी मरें और अमृत न पीये हुए दैत्य भी मरें। मरे दोनों! अद्भुत हो गया अमृत पीने पर भी देवता अमर नहीं हुए, कटाकट मरने लगे। अब, जब देवता लोग हारने लगे तब उन्होंने फिर भगवान्‌से प्रार्थना की कि हे प्रभु, इतना परिश्रम करके आपने मन्दराचल उठाया, उसको अपनी पीठ पर धारण किया, ऊपरसे दबाये रखा, देवता और दैत्य दोनोंके साथ मिलकर आपने समुद्र-मन्थन किया और फिर आप स्वयं धन्वन्तरि बनकर अमृतका कलश लेकर प्रकट हुए और मोहिनी रूप धारण करके हमारे पक्षमें छल-कपटसे आपने हमें अमृत पिलाया। आपके इतना सब करने पर भी अब वह अमृत काम क्यों नही कर रहा है, देवता लोग मर क्यों रहे हैं? आप हमारी रक्षा कीजिये, हमें बचाइये।

इस पर भगवान्‌ने अमृतसे पूछा—क्यों रे अमृत, तू सच्चा अमृत है और मैंने देवताओंको पिलाया है तो इस देवासुर संग्राममें तू देवताओंकी रक्षा क्यों नहीं करता है, देवता लोग क्यों मर रहे हैं?

अमृत बोला—महाराज, आपने कपट रूप धारण करके

देवताओंका पक्षपात करके और दैत्योंके साथ अन्याय करके देवताओंको अमृत पिलाया है। तो अन्यायसे देवताओंको अमृत प्राप्त हुआ है, मैं उनका पक्ष नहीं लूँगा, उनको नहीं जिलाऊँगा।

भगवान्‌ने कहा कि अच्छा, अब तुम यदि इनको नहीं जिलाते हो तो मैं आता हूँ फिर जैसे तुमको प्रगट करनेके लिए आया धन्यवन्तरिके रूपमें, तुमको बाँटनेके लिये आया मोहिनीके रूपमें, जैसे एक रूप धारण करके उनको सलाह दी जैसे कच्छप रूप धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठ पर रखा और एक रूप धारण करके उसको ऊपरसे दबाये रखा, वैसे ही अब एक रूप धारण करके देवताओंकी ओरसे मैं लड़ूँगा, इनकी रक्षा करूँगा, इनको मरने नहीं दूँगा!

अमृत बोला—अच्छा महाराज, आप देवताओंके प्रति इतने दयालु हैं? इनका पक्ष लेकर आप लड़ेंगे? तो, अब मैं भी अपना काम करूँगा, अब देवता लोग मरेंगे नहीं। तो जिस पक्षमें भगवान् हैं उसी पक्षमें अमृत है। अमृतका अपना कोई पक्ष नहीं है!

तात्पर्य यह कि चाहे कोई कितना भी धन खर्चे, चाहे कितना भी जोर लगावे, चाहे कितनी भी बुद्धि लगावे, परन्तु सुख-शान्ति तो उसीको मिलेगी जिसके पक्षमें भगवान् होंगे।

तो भगवान् पक्ष क्यों लेते हैं? हमको एक प्रसङ्ग याद है—हमारी माताजी वैष्णव हो गयीं थीं। हमारे पिताजी तो जब तक जीवित रहे शंकरजीकी पूजा करते थे और पितामह पाँचों देवताओंकी पूजा करते थे और माताजी हो गयीं रामानुज-सम्प्रदायकी श्रीवैष्णव! शङ्ख चक्र लग गया उनके हाथमें। उनके गुरुजी वृन्दावनमें ही रहते थे और कभी-कभी हम उनके पास जाया करते! एक बार उनके सामने यही प्रश्न उठा कि आखिर भगवान् पक्षपात क्यों करते हैं? इसके उत्तरमें उन्होंने जो हमें समझाया वह मैं आपको सुनाता हूँ—

आनुकूल्य प्रातिकूल्याभ्याम् व्यवस्था।

भगवान्‌के जो अनुकूल होता है और भगवान्‌के जो प्रतिकूल होता है, उसके अनुसार उसके प्रति उनके व्यवहारमें भेद होता है। जैसे—देखो, यदि तुम पूर्वकी ओर मुँह कर लोगे तो तुम्हारी छाया पीछेके ओर हो जायेगी और और पूर्वकी ओर पीठ कर दोगे तो छाया आगेकी ओर हो जायेगी। तो प्रश्न यह नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो, प्रश्न यह है कि तुम देखते किधर हो, तुम्हारी दृष्टि किधर है! तो

'आनुकूल्य प्रातिकूल्याभ्याम् व्यवस्था'

जो भगवान्‌के अनुकूल होकरके भजन करते हैं उनके प्रति भगवान्‌का सत्-चित्-आनन्द अनुभव स्वरूप साक्षात् होता है और जो लोग भगवान्‌की ओर पीठ करके रखते हैं उनके ऊपर भी सत्-चित् आनन्दकी वर्षा तो होती है, लेकिन भगवान्‌की ओर पीठ कर देनेके कारण उनको उसका अनुभव नहीं होता है! तब फिर भगवान् ही ऐसा करते हैं? कि नहीं।

'सं सेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः' भागवत, ७.९.२७

एक कल्पवृक्ष है, सबके लिए उसका दरवाजा खुला है। जो भी उसके नीचे आवे—देवता आवे, दैत्य आवे, संत आवे, संसारी आवे उसका मनोरथ पूरा हो जाय! तो, देवता तो कल्पवृक्षके नीचे जाते हैं, उससे माँगते हैं और उनका मनोरथ पूरा हो जाता है; परन्तु दैत्य लोग उसको उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं, नष्ट कर देना चाहते हैं। कि तब? क्या यह प्रश्न होगा कि कल्पवृक्ष विषमता करता है। देवताओंका पक्षपात करता है और दैत्योंके साथ क्रूरता करता है? न-न, ऐसा बिल्कुल नहीं है। जो कल्पवृक्षके नीचे जायेगा, उसकी सेवा करेगा उसको कल्पवृक्ष सब कुछ देगा, उसके सारे मनोरथ पूर्ण करेगा और जो कल्पवृक्षके नीचे नहीं जावेगा उसका मनोरथ पूर्ण नहीं होगा।

इसको एक दूसरे दृष्टान्तसे और समझिये,ठण्डके दिन हैं; आग

जल रही है। एकको ठण्ड लगी, वह जाकर आगके पास बैठ गया और हाथ-पाँव सेंकने लगा, उसकी ठण्ड मिट गयी। और, एक दूसरा व्यक्ति आगसे डर कर दूर चला गया, उसकी ठण्ड नहीं मिटी। अब इसमें आगका क्या दोष? दोष तो उस आदमीका है जो डरकर आगसे दूर चला गया और आगसे उसने ताप नहीं लिया। जंगलमें कभी रहते हैं तो आग जलाकर बैठते हैं। क्योंकि आग जलती रहेगी तो न भालू आवेगा, न शेर आवेगा, न साँप आवेगा और न भूत-पिशाच आवेगा। कैसे? आगको जलाकर उसके पास बैठे हुए हैं।

तो, यह जो परमात्मा आपके हृदयमें विराज रहे हैं आप इसकी रोशनीको प्रकट कर लीजिए, इसमें जो ज्ञान-शक्ति है उसको प्रकट कर लीजिए, उसमें जो आनन्द-शक्ति है उसको प्रकट कर लीजिए। उसका दरवाजा हमेशा खुला रहता है, किसीके लिए बन्द नहीं होता। बन्द तो लोगोंने अपनी आँख कर रखी है।

इसीसे ब्रह्मसूत्रमें यह प्रसङ्ग है—

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति। २.१.१२.३४

परमात्मामें किसीका पक्षपात नहीं है, वह किसीके प्रति निर्दय नहीं है। तब क्या है? उसको अपेक्षा है। वह आपसे कुछ चाहता है। यह सोद्देश्य है। उसको यह प्रकट करना है कि जो भगवान्‌का भजन करता है उसको क्या नहीं मिलता है? उसको कैसा ज्ञान मिलता है, कैसा जीवन मिलता है और उसके जीवनमें कैसी सुख-शान्ति रहती है। और, जो भगवान्‌का भजन नहीं करता है उसके जीवनमें कैसा अज्ञान रहता है, कैसा दुःख रहता है, कैसी अशान्ति रहती है। यह जिनके पास बहुत चीजें हैं वे शान्त नहीं है, वे सुखी नहीं हैं, वे तो बड़े उद्विग्न हैं। तो भगवान्‌के भक्त और अभक्तका भेद देखें—

तदपि करहिं सम-विषम विहारा।
भक्त-अभक्त हृदय अनुसारा॥

आप अपने हृदयको भगवान्‌के सामने कीजिए और भगवान्‌का सारा आनन्द अपने अन्दर ले लीजिए और आप भगवान्‌की ओरसे अपना मुँह घुमा लीजिये, तो आपके अन्दर संसारकी क्रूरता, संसारकी निर्दयता, संसारका पक्षपात आ जायगा।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

गीता ९-२९

भगवान् कहते हैं कि मैं सम्पूर्ण प्राणियों में 'सम' हूँ—समान प्रमा है सबके भीतर। 'स' माने समान और 'मा' माने 'प्रमा'। हमको सब एक समान दीखते हैं।

'समोऽहं सर्वभूतेषु'

सब हमारे बेटे हैं।

न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः'

मेरा कोई द्वेष्य नहीं और मेरा कोई प्रिय नहीं है, हम किसीसे दुश्मनी नहीं करते और किसीसे प्यार नहीं करते। तब फिर?

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्'

जो भक्तिसे, प्रेमसे मेरी सेवा करते हैं मैं उनमें हूँ और वे मुझमें हैं।

इसीसे श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें यह बात मानी जाती है कि भगवान् सर्वेश्वर हैं, सम हैं, अचिन्त्य कल्याण गुणगण-निलय हैं। सारे सद्‌गुण उनके अन्दर हैं और वे सबके प्रति परम दयालु, परम कृपालु हैं। परन्तु—

रक्षापेक्षाम पेक्षते!

वे कहते हैं कि भाई, दुनियामें हम किसकी रक्षा करने जायँ और किसी रक्षा करने न जायँ? हमारे तो सब हैं। हम रक्षा करें तो सबकी करें-कीट पतङ्गकी भी करें, खटमल-मच्छरकी भी करें, क्योंकि सब

हेमारे स्वरूप हैं, सबको अपना सत् देते हैं, चित् देते हैं, आनन्द देते हैं, सब हम हैं और रक्षा न करें तो किसीकी न करें। तब रक्षामें यह भेद क्यों आया? इसका उत्तर दिया—

रक्षापेक्षाम पेक्षते।

एक मर्यादा भगवान्ने बना दी कि जो उनकी ओर मुँह करके, उनके सामने हाथ जोड़करके प्रार्थना करता है कि हे प्रभु आओ हमको बचाओ, हमारे हृदयमें बस जाओ! तो, प्रभु उसकी रक्षा करते हैं और उसके हृदयमें विराज कर उसको परमानन्द प्रदान करते हैं और जो कभी प्रार्थना नहीं करता वह इन सबसे वंचित रहता है।

तो असलमें ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ भगवान् न हो, ऐसा कोई समय नहीं जब भगवान् न हों और ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें भगवान् न हों। भगवान् तो सब जगह, सब समय, सबमें मौजूद रहते हैं और हर समय हमारी रक्षा करनेके लिए तत्पर। लेकिन उनकी रक्षा ग्रहण करनेके लिए हमारे हृदयकी जैसी बनावट होनी चाहिए वैसी नहीं हो पाती है। यह हमारी आँखका दोष है, हमारे मनकी कमजोरी है, हमारी बुद्धिकी कमजोरी है कि हमको भगवान्का दर्शन नहीं होता। वे तो महाराज अभी यहीं इसी रूपमें हमको दर्शन देनेके लिए तैयार हैं और हमारी रक्षा करनेके लिए तो ऐसे तैयार रहते हैं कि हर समय चक्रको अपने हाथमें ही रखते हैं कि यदि हमारे भक्तका विरोध करने वाला कहीं दूर होगा तो उसे दूरसे ही चक्र फेंक कर मारेंगे, हमारे भक्तका विरोधी नजदीक होगा तो उसे गदासे मारेंगे, हमारे भक्तकी विजय होगी तो हम विजय शङ्ख बजावेंगे और हृदयमें से हृदय निकालकर देनेमें तो देर लगेगी, इसलिए पहलेसे ही मुट्ठीमें अपना हृदय-कमल निकाल कर रखते हैं कि जब हमारे भक्तको जरूरत होगी तब कमलके रूपमें अपना हृदय उसको दे दें। हर समय खड़े रहते हैं। अनादिकालसे अब तक बड़े आतुर-कातर-चित्तसे भक्तकी प्रतीक्षा करते

रहते हैं-कोई हमसे कहने वाला तो हो! नारायण! कोई हमको चाहने वाला तो हो! हमने तो इसको दिया अपना प्यार और वह प्यार यह हमको नहीं देकर किसी दूसरेको दे रहा है; हमने दिया इसको ज्ञान, उससे यह हमको नहीं जानता है दूसरेको जानता है, हमने दिया इसको जीवन और वह जीवन यह हमारे लिए नहीं लगाता है दूसरेके लिए लगाता है। भगवान् चुपचाप खड़े-खड़े देखते रहते हैं। लेकिन, जब कभी किसी भक्तका हृदय द्रवित होकरके भगवान्के सामने जाता है तब वह देखता है कि उस द्रवित हृदयमें पहलेसे साक्षात् भगवान् बैठे हुए हैं। तो बाबा, भगवान्को किसीसे पक्षपात नहीं है।

न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः।

ये तो मुक्त-स्वरूप हैं, इनको किसीसे किसी वस्तुकी चाह नहीं है। दैत्योंसे इनको द्वेष नहीं है, देवताओंसे कुछ लेना-देना नहीं है। ये स्वयं निर्गुण-प्रभु हैं, इनको उद्वेग नहीं है। तब फिर इनके पक्षपातका कारण क्या है? आओ, इस शङ्का पर विचार करें।

इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति।
संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति॥ ७.१.३

आओ, नारायणके गुणोंका चिन्तन करें। उनके गुण भक्त हितकारी हैं। वे तो तुम्हारे बड़े पक्षपाती हैं। तुम्हारे लिये शंङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये-लिये हर समय तैयार रहते हैं। उनके धनुषकी ताँत कभी उतरती नहीं, उनका बाण कभी विश्राम नहीं करता, उनका चक्र कभी नींद नहीं लेता-हमेशा अपने भक्तोंकी रक्षाके लिए तैयार रहता है।

तो, भक्तकी महिमा दिखानेके लिए, भक्तिकी महिमा दिखानेके लिए भगवान् ऐसी लीला करते हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(२)

प्रसंग यह चल रहा है कि भगवान् देवताओंका पक्षपात क्यों करते हैं और दैत्योंको क्यों मारते हैं? देवताओंसे क्या राग है और दैत्योंसे क्या द्वेष है? भगवान् तो स्वयं निर्गुण हैं, अजन्मा हैं, सबमें सम हैं, सबके प्रिय हैं, सबके सुहृद हैं; फिर भगवान्का ऐसा व्यवहार क्यों? तो भगवान्के गुणोंपर एक शङ्का हो गयी।

उसका समाधान यहाँ करते हैं। बहुत सीधी बात है कि शुद्ध-वस्तु जो काम करती है वह काम और उसके साथ यदि कोई उपाधि जुड़ जाये तब वह क्या काम करती है—दोनों में फर्क होता है। जैसे-हम सूर्य को देखते हैं, तो सूर्य हमको कोई हाथभर लम्बा-चौड़ा दिखायी पड़ता है और इसी सूर्यको जब विज्ञानकी दृष्टिसे देखते हैं तब पृथिवीसे कई लाख गुणा सूर्यका आकार है। तब फिर हमें सूर्य छोटा क्यों दीखता है? इसलिए दीखता है कि हमारी आँख और सूर्यके बीचमें दूरीकी उपाधि है। पर क्या सूर्य छोटा हो गया? नहीं, सूर्य छोटा नहीं हुआ है, हमारे देखनेका औजार जो है वह छोटा है।

और देखो, आकाशमें जब बादल आ जाता है तब सूर्यकी रोशनी कम दिखने लगती है। ग्रहण जब लगता है तब सूर्य ढँकने लगता है और जब बादलोंमें पानी होता है तब आकाशमें पीला रङ्ग, लाल रङ्ग, नीला रङ्ग—इन्द्रधनुष दिखायी देने लगता है। तो क्या सूर्य इन्द्रधनुषको रँगने आता है? क्या ग्रहण उसमें कोई बिगाड़ कर देता है? क्या बादल आनेसे सूर्यकी रोशनी कम हो जाती है? नहीं, यह सब बीचमें उपाधिके आ जानेसे होता है। असलमें सूर्य ज्यों-का-त्यों रहता है।

तो 'उपाधि' जो है वह 'उपहित'को अपने रङ्गमें रँगती नहीं है, वह हमारी आँखोंको ही ढँक देती है। 'उप' माने पास और 'आधि' माने आधान जो पास रहकर अपने गुण-धर्मका दूसरेमें आधान कर दे वह 'उपाधि' एकका गुण दूसरेमें चला जाय। सफेद स्फटिक बहुत स्वच्छ होता है, लेकिन जब उसको लाल कागज पर रख देते हैं तब वह लाल दिखने लगता है। इससे क्या स्फटिक लाल हो गया? नहीं, स्फटिक लाल नहीं हुआ, उसके पास जो कागज रखा हुआ है उसकी लाली उसमें दिख रही है। अब ईश्वरको हम देखना तो चाहते हैं, पर कहाँ बैठकर? इस शरीरमें बैठकर। ईश्वर इतना महान् और हम इस शरीरमें बैठकर छोटी-सी बुद्धिसे उसको नाप लेना चाहते हैं; उसकी उम्र जान लेना चाहते हैं कि क्या तौल है ईश्वरका? भाई मेरे, जब बहुत बड़ी वस्तुको जाँचना होता है तब उसके लिए छोटा औजार काममें नहीं आता है और फिर हमारे इस औजारकी तो शक्ति ही बहुत कम है। इतने शक्ति-हीन उपकरणसे, इतने शक्ति-हीन औजारसे ईश्वरको कैसे तौला जायेगा?

तो, देखो, वस्तु होती है एक, पर उसमें देशका प्रभाव, कालका प्रभाव अलग दिखायी पड़ता है। अभी थोड़े महीनों पहलेकी बात है। अखबारोंमें छपा था कि साइबेरियामें दो हजार वर्ष पुराने कुछ जौके दाने मिले जो वहाँ अङ्कुरित नहीं हुए और यहाँ आने पर और अनुकूल-ठण्डी-गर्मी मिलने पर उनमें अङ्कुर निकल आया। यह हुआ देशका और स्थानका प्रभाव!

तो, किसीभी वस्तुको देखनेके पहले यह भी देखना पड़ता है कि हम किन-किन वस्तुओंसे प्रभावित होकर उसको देख रहे हैं। हमारी जन्मभूमिमें खेती होती है, तो मेड़के बीचमें गाड़ देते हैं आलू और नीचे होता है गेहूँ और उसपर डाल देते हैं लाल मिर्चके बीज। देखें आप, एक ही खेत, एक ही माटी, एक ही खाद और एक ही सिंचाई। उसीमें-से

आलू निकलता है उसका स्वाद दूसरा, लाल मिर्च निकलती है उसका स्वाद दूसरा, गेहूँ निकलता है वह बिल्कुल अलग। क्यों भाई, ऐसा कैसे हुआ—धरती एक है, मिट्टी एक है, खाद एक है, सिंचाई एक है? ऐसा यों हुआ कि सबके बीज अलग-अलग हैं—आलूका बीज अलग है, मिर्चका बीज अलग है, गेहूँका बीज अलग है और बीजकी उपाधिसे एक ही माटी अलग-अलग गुण देती है, एक ही पानी अलग-अलग गुण देता है, एक ही हवा अलग-अलग गुण देती है, एक ही आकाश अलग-अलग गुण देता है! इसी तरह कालकी उपाधि होती है और देशकी उपाधि होती है और उपाधिके अनुसार सब वस्तुएँ अपना अलग-अलग काम करती हैं।

तो, हम लोग जब ईश्वरको देखने लगते हैं तब कहाँ बैठकर देखते हैं? हम अपनी ही दृष्टिसे ईश्वरको तौलने लगते हैं। देखो, जब हम देह बनकर जाँचेगे तब ईश्वर निकलेगा 'विराट्' और जब मन-बुद्धि बनकरके जाँचेंगे तब ईश्वर निकलेगा—'हिरण्यगर्भ' और जब हम शान्त-समाधिस्थ होकर ईश्वरको जाँचेंगे तब ईश्वर निकलेगा 'शान्त' और जब हम अभिन्न होकर ईश्वरको देखेंगे तब ईश्वर निकलेगा—'अद्वितीय'।

अब व्यवहारमें ईश्वर कहाँ क्या कर रहा है, कैसे कर रहा है—इसको समझनेके लिए —ईश्वर कर रहा है कि नहीं यह बात दूसरी है, वह कर्त्ता है कि अकर्त्ता है यह बात दूसरी है, हम जहाँ बैठकर देखते हैं वहाँसे हमारे और ईश्वरके बीचमें क्या-क्या उपाधि हैं यह देखना पड़ेगा। जैसे खेतमें धान पड़े रहते हैं छः महीने तक धरतीमें और जब वर्षा होती है तब उनमें अङ्कुर उग जाता है। तो, कालकी उपाधि होती है, देशकी उपाधि होती है, बीजकी उपाधि होती है और उनसे वस्तुएँ अपना-अपना काम अलग-अलग करती हैं।

अब देखो कि ईश्वर कैसे काम करता है। तो बोले कि कभी

सत्वकी उपाधिसे काम करता है, कभी रजस्‌की उपाधिसे काम करता है और कभी तमसकी उपाधिसे काम करता है। ईश्वर एक ही है।

स्वमाया गुणमाविष्य बाध्यबाधकतां गतः। ७.१.६

श्रीशुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि जब हम सोचने लगते हैं कि ईश्वरके व्यवहारमें और ईश्वरके रूपमें इतना अलगाव कैसे है, सोचते-सोचते हार जाते हैं और कोई कारण हमें नहीं मिलता है। तो भाई, यह सब जादूका खेल है। जादूका खेल ऐसा ही होता है। एकबार जादूगरने हमारे हाथमें जादूका एक रुपया दिया और कहा कि इसका नम्बर देख लो! देख लिया। मुट्ठी बाँध ली। बोला—'खोलो'। खोली तो मुट्ठीमें रुपया नहीं। बोला—'तुमने चुरा लिया'। 'नहीं बाबा, हमने नहीं चुराया'। बोला—'चुराया है। अच्छा, जूता उतारो!' जूता खोला तो रुपया वहाँसे निकला। अब बताओ, वह रुपया हमारे हाथसे लेकर तो जूतेमें डाला नहीं गया, गिरकर गया नहीं, हमने डाला नहीं। फिर यह कैसे वहाँ पहुँचा? इसीको बोलते हैं—जादूका खेल। इसीका नाम है माया!

तो जब हम सोचने लगते हैं कि ईश्वरने सृष्टि कैसे बनायी, तो इसके लिए सबके अलग-अलग मत हैं। चार्वाकका कहना है कि सृष्टि चार भूतोंसे अपने आप बनती है; जैनों और वैशेषिकोंका कहना है कि पुद्‌गलोंसे, परमाणुओंसे सृष्टि बनी है, मीमांसकोंका कहना है कि कर्मसे सृष्टि बनी है; बौद्धोंका कहना है कि वासनासे सृष्टि बनी है; बल्लभाचार्यजी कहते हैं कि ईश्वरके सङ्कल्पसे सृष्टि बनी है; सांख्ययोगवाले कहते हैं कि प्रकृतिसे सृष्टि बनी है; शैव कहते हैं कि अपना आत्मा ही सृष्टिके रूपमें दिख रहा है। तो, जब हम सोचने लगते हैं कि यह सृष्टि कैसे बनी, तब हम वहाँसे नहीं सोच सकते जहाँसे यह सृष्टि है, बल्कि वहाँसे सोचते हैं जहाँ हम बैठे हैं। तो, क्या हमारी नन्हीं-सी बुद्धि इस सृष्टिके अनन्त-मूलको पकड़ सकती है?

हमने कल एक बहुत बुद्धिमान सज्जनके सामने चर्चा की। मैंने

उनसे कहा कि यदि जड़ाद्वैत माना जाये कि जगत्के मूलमें जड़-सत्ता है और उसमें सब होनेका सामर्थ्य है—वही बुद्धि बनती है, वही इन्द्रियाँ बनती हैं और वही विश्व-सृष्टि भी बनती है—उसमें सर्व-भवन सामर्थ्य है। और, कहो कि नहीं चेतन है, तो हम कहते हैं कि तुम्हारा चेतन तो निष्क्रिय है, तो निष्क्रियमें और जड़ाद्वैत-सत्तामें क्या फर्क है? बात टेढ़ी हो जायेगी। बड़े मजेदार हैं भाई। बोले कि जड़ाद्वैत-सत्ता जो होगी वह यहाँ बैठकरके कल्पित होगी। हम कल्पना करेंगे कि सृष्टिके प्रारम्भमें ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा और यदि चेतनाद्वैत-सत्ता होगी तो अनुभव-रूप होगी, अपनी आत्मा होगी। जड़ाद्वैत-सत्ता यदि मूलमें होगी तो वह अनुभवके क्षेत्रमें नहीं होगी, कल्पित होगी और यदि चेतन-सत्ता होगी तो अनुभवका विषय तो नहीं होगी। लेकिन, स्वयं अनुभव-स्वरूप अपना आत्मा होगी—मैं ही अद्वितीय ब्रह्म-स्वरूप हूँ!

तो देखो, जब हम बनते हैं देह तो ईश्वर हो जाता है 'जड़' और जब हम बनते हैं सङ्कल्पवाले मन तब ईश्वर हो जाता है 'सङ्कल्पवान्' जब हम बनते हैं समाधिस्थ तब ईश्वर हो जाता है 'शान्त' और जब हम बनते हैं अद्वैत-चेतन तब ईश्वर हो जाता है 'अद्वैत-चेतन'। हम पापी-पुण्यात्मा कब होते हैं? जब कर्त्ता बनते हैं। हम सुखी-दुःखी कब होते हैं? जब भोक्ता बनते हैं। हम परिच्छिन्न कब बनते हैं? जब दृश्यके साथ तादात्म्यापन्न करते हैं। नारायण! हमारी जो परिस्थिति है वह तत्त्वके निर्णयमें सर्वोपरि अपना प्रभाव डालती है। इसलिए अपनी स्थितिको ठीक करना चाहिए।

अब जब हम ईश्वरके बारेमें सोचते हैं कि ईश्वर देवताका पक्षपात क्यों करता है और दैत्योंको क्यों मारता है? तो बोले भाई, उपाधि स्वीकार करके हम बन गये मनुष्य और देवता-दैत्यके बारेमें ईश्वरके व्यवहारके बारेमें सोच रहे हैं कि ईश्वर भी कुछ ओहदा धारण करके यह काम करता है। जैसे प्रधान-मन्त्री प्रधान-मन्त्रीकी कुर्सीपर

बैठकर हस्ताक्षर करता है; एक राष्ट्रपति राष्ट्रपतिका पद स्वीकार करके अपने कर्त्तव्यका पालन करता है, ऐसे ही ब्राह्मण जब ब्राह्मणत्वकी कुर्सीपर बैठता है तब अपना कर्त्तव्य पालन करता है; जब हिन्दू हिन्दुत्वकी कुर्सी पर बैठता है तब अपना कर्त्तव्य पालन करता है, जब मनुष्य मनुष्यत्वकी कुर्सी पर बैठता है तब अपने कर्त्तव्यका पालन करता है और जब जीव कर्त्ता-भोक्ता बन करके जीव-पदको स्वीकार करता है तब जीवके कर्त्तव्यका पालन करता है। यह देवता, दैत्य, मनुष्यका भेद कहाँसे आया? तो यह अपनी-अपनी उपाधिके कारण आया और उन-उन उपाधियोंमें प्रवेश करके ईश्वर उन-उन उपाधियोंके अनुरूप काम करता है!

जब सत्वकी उपाधि होती है तब ईश्वर सत्यको प्रकाशित करता है—तब ज्ञान-ही-ज्ञान, प्रकाश-ही-प्रकाश होता है; जब रजसकी उपाधि होती है तब रजसको प्रकाशित करता है तब कर्म-ही-कर्म होता है और जब तमसकी उपाधि है तब तमसको प्रकाशित करता है—तब जड़ता-ही-जड़ता होती है। ईश्वर है बिच्छूमें, उसके डंकमें जहर भरता है, ईश्वर है साँपमें, उसकी दाढ़में जहरकी थैली बना देता है और ईश्वर जब गायमें आता है तब दूध देता है।

तो इस तरहसे समयकी उपाधिसे, स्थानकी उपाधिसे और बीजकी उपाधिसे ईश्वर जो काम करता है, वह अपने निरुपाधिक रूपमें नहीं सोपाधिक रूपमें काम करता है। तो जब देवताओंको बढ़नेका समय होता है तब ईश्वर उनको अपनी शक्तिसे सींच देता है; जब दैत्योंका बढ़नेका समय होता है तब दैत्योंको अपनी शक्तिसे सींच देता है और जब मनुष्योंके बढ़नेका समय होता है तब मनुष्योंको अपनी शक्तिसे सींच देता है। सब अपना-अपना बीज लेकर रहते हैं और ईश्वर कब किसको बढ़ाना चाहिए और कब किसको घटाना चाहिए—यह कालकी उपाधिसे, स्थानकी उपाधिसे

और बीजकी उपाधिसे देखकर सबके साथ अलग-अलग बर्ताव करता है। असलमें, ईश्वरमें भेद नहीं है, उन-उन उपाधियोंमें भेद है। बिच्छूमें और गायमें भेद है, पर उन दोनोंके अन्दर जो ईश्वरशक्ति है उसमें भेद नहीं है-वह दोनोंको बढ़ाती है। एक चोर सूर्यकी रोशनीमें चोरी करता है और योगी सूर्यकी रोशनीमें समाधि लगाता है। अब उसमें सूर्य क्या करे? वह तो अपने प्रकाशको फैलाता है—'एतावत् मात्र' ही उसका काम है।

अब इस बातको समझनेके लिए एक उपाख्यान यहाँ दिया हुआ है। उपाख्यान माने-वस्तुको समझनेके लिए एक आख्यायिका। उसको ऐतिहासिक-दृष्टिसे नहीं तौला जाता, उसको आध्यात्मिक-दृष्टि से देखा जाता है। क्या उपाख्यान है?

श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितकी प्रशंसा करते हुए कहा कि राजन्, प्रश्न बहुत बढ़िया है। क्योंकि इसमें भगवान्के अद्भुत, अनिर्वचनीय चरित्रका प्रकाश होगा। इसमें भगवान्की महिमा नहीं, भागवत-भक्तकी महिमाका वर्णन है। और, इसका फल क्या होता है? जीवनमें भगवान्की भक्ति बढ़ती है! जब हम अपने शीशेको बिलकुल निर्मल करके रखते हैं तब उसमें सूर्यकी रोशनी पड़ती है! यहाँ तक कि एक शीशा ऐसा भी होता है कि यदि उस पर सूर्यकी रोशनी पड़ रही हो और उसपर रुई रख दो तो रुईमें आग लग जायेगी-इतना शक्तिशाली शीशा और कोयले पर सूर्यकी रोशनीका कुछ असर ही नहीं होता! तो जब हमारे हृदयमें भगवान्की भक्ति आती है तब उस भक्तिसे हमारा हृदय ऐसा चमाचम चमक जाता है कि उसमें ईश्वरकी रोशनी सीधी पड़ने लगती है।

कहते हैं कि एक राजाके पास दो चित्रकार आये। बड़े शिल्पी, बड़े निपुण। राजाने दोनोंको कहा कि तुमलोग हमें भित्ती-चित्र बनाकर दिखाओ, जिसका चित्र बढ़िया होगा उसको पुरस्कार दिया जायेगा!

अब एक चित्रकारने भीतको लीप-पोतकर स्वच्छ करके, पालिश करके उसके ऊपर चित्र बनाना प्रारम्भ किया और ठीक उसके सामने दूसरी तरफ जो दूसरा चित्रकार था उसने भीतको स्वच्छ करना, चमकाना शुरू किया। स्वच्छ करे, चमकावे और पर्दा गिरा दे! कुछ दिनों बाद चित्र बनकर तैयार हो गया। उद्घाटनका समय हुआ, महाराज आये और पहले चित्रकारने अपना चित्र दिखलाया—मैंने यह बनाया। दूसरे चित्रकारसे जब कहा कि तुम अपना चित्र दिखाओ, तब उसने केवल पर्दा हटा दिया। पर्दा हटाते ही सामने वाला चित्र उसमें प्रतिबिम्बित होने लगा, दीखने लगा। अरे, ये दोनों तो बिलकुल एक-सरीखे हैं। चित्रकार बोला—नहीं महाराज, एक-सरीखे नहीं हैं—उस चित्रकी दाँयी-बाँह दिखती है, हमारे चित्रकी बाँयी-बाँह दिखती है; उसका मुँह पूरबकी ओर है, हमारे चित्रका मुँह पश्चिमकी ओर है; उसका दाहिना पाँव पश्चिमकी ओर है तो हमारा बाँया पाँव पश्चिमकी ओर है। ये दो चित्र हैं, एक कैसे हैं? वह उसने बनाया, यह मैंने बनाया।

बात क्या हुई कि उसने अपनी भीतको घिस-घिसकर, घिस-घिस-कर बिलकुल शीशा बना दिया जिससे सामने वाला चित्र उसमें प्रतिबिम्बित होने लगा था।

इसी तरह यह भक्ति जो है वह हमारे हृदयको बिलकुल स्वच्छ, निर्मल बना देती है और उसमें ईश्वरकी तस्वीर ग्रहण करनेकी शक्ति ला देती है।

अच्छा तो अब यह देखना है कि भक्ति हृदयको निर्मल कैसे बनाती है। यही भक्तिकी अद्भुत महिमा है।

भगवद्भक्ति वर्द्धनम्।

भक्तिमें दो सामर्थ्य है। एक—भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान और दूसरा—संसारके राग-द्वेष, ईर्ष्या-मद-मोहसे निवृत्ति। यह अन्तःकरणका स्वभाव है कि उसमें दो वृत्ति एक साथ नहीं रह सकती।

युगपत ज्ञानानुपत्तिर्मनसोलिङ्गम्।

या तो ईश्वरका चिन्तन होगा या तो संसारका चिन्तन होगा। जिससे तुम्हारा राग होगा वह याद आवेगा या तो जिससे तुम्हारा द्वेष होगा वह याद आवेगा।

एक दिन राधारानी बहुत दुःखी हो रही थीं, रो रही थीं। श्रीकृष्णने पूछा—प्रियाजी, आप इतनी दुःखी क्यों हैं? बोलीं—महाराज, जिस हृदयमें आप रहते हैं उस हृदयमें आज हमको अपनी सौतकी याद आगयी, उसकी शकल दीखने लगी। आपके रहते, आपकी उपस्थितिमें हमारे हृदयमें सौतका प्रतिबिम्बन हो गया—आपसे मेरा प्रेम कहाँ है? आपके प्रति मेरा सच्चा प्रेम होता तो हमारे हृदयमें दूसरेकी याद आती ही क्यों? यह है भक्तिका स्वरूप।

तो भक्ति एक ओरसे तो करती है हृदयको शुद्ध। धर्मानुष्ठान हृदयको शुद्ध करता है, भगवान्‌की भावना नहीं लाता, भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान नहीं कराता। ज्ञान केवल भगवान्‌के स्वरूपको दिखाता है, हृदयको शुद्ध नहीं करता। जबकि भक्तिकी यह महिमा है कि वह एक ओरसे तो करती है हृदयको शुद्ध और दूसरी ओरसे कराती है भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान। भक्तिमें जब हम भगवान्‌का ध्यान करते हैं तब भगवान्‌का स्वरूप हमारे हृदयमें आ जाता है और जब भगवान्‌से हमारा प्रेम हो जाता है तब संसारके राग-द्वेष-ईर्ष्या-मद-मोह सब मिट जाते हैं। इसलिए बाबा भक्तिकी बहुत महिमा है! भगवान् भी भक्तिके वशमें हो जाते हैं! और, कहो भाई कि असली भगवान् तो नहीं हुए, यह तो भगवान्‌की तस्वीर है! तो इस बात पर सम्भवतः आप विश्वास न करें, पहले हमारे बचपनमें हमारे एक मित्र थे, वे शीशेके सामने बैठ जाते, मन्त्र-जप करते और शीशेमें अपना ध्यान करते कि हम शीशेमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, हम शीशेमें हैं और बोलते—ओ छाया—इसको छाया-पुरुष बोलते हैं—बोलते—ओ छाया, तूँ जरा हट जा, बाँए हट जा,

दाहिने हट जा, उठ जा, जरा बाहर निकल जा। इस तरह उस छाया-पुरुषमें आत्माका आधान करके उसको आज्ञा देने लगते। कहते—जा कलकत्ता, वहाँसे ला रसगुल्ला; जा जयपुर, ले आ वहाँसे करेलेका आचार और वह छाया-पुरुष उनकी आज्ञाका पालन करने लगता।

तो भगवान्‌को वशमें करनेकी एक ही रीति है! वह क्या है—

सत स्त्रियः सत् पतिं यथाः।

जैसे सती स्त्री अपने पतिको अपने वशमें कर लेती है वैसे ही जब हमारे हृदयमें भजनीय भगवान्‌का ध्यान ठीक-ठीक होने लगता है और जब संसारका ध्यान छूट जाता है और केवल भगवान्-ही-भगवान् रह जाते हैं, तब; हमारे हृदयमें जैसे-जैसे संकल्प होते हैं, वैसे-वैसे बनकर भगवान् दिखायी पड़ने लगते हैं। यह भक्तकी महिमा है, यह भक्तके हृदयमें रहनेवाली भक्तिकी महिमा है कि वह भगवान्‌से जो चाहे सो करा लेती है!

प्रह्लाद जातिसे देवता नहीं थे, जन्मसे देवता नहीं थे, जन्मसे, जातिसे दैत्य थे। पर, जब उनके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति आ गयी, तब भगवान्‌ने यह नहीं देखा कि यह दैत्य है, बल्कि उनकी रक्षा की।

तो असलमें भगवान्‌के आचरणमें, चरित्रमें जो अद्‌भुत बात देखनेमें आती है, वह भगवान्‌का पक्षपात नहीं है। बल्कि, भक्तके हृदयमें जो भक्ति है और उस भक्तिमें जो भगवान्‌का प्रतिबिम्बन है, वह हृद्देश-निवासी जो भगवान् हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गीता १८.६१

जो हमारे अन्तर्देशके निवृत्त-प्रदेशमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे विराजमान भगवान् हैं, वे भक्तिके द्वारा पकड़े जाते हैं और फिर भक्तिके वशमें होकर भक्तका पक्षपात करते हैं!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(३)

जहाँ हम बैठे हैं वहाँसे परमात्माको देखनेमें बीचमें कई उपाधियाँ आती हैं जो हमारी आँखको व हमारी बुद्धिको ढँक देती हैं। देहमें बैठकर देखेंगे तो सिवाय पंचभूतके और क्या दिखेगा? इसलिए किसी वस्तुको ठीक-ठीक देखनेके लिए ठीक स्थान और शुद्ध यन्त्र होना चाहिए। प्रश्न उठा क्या तुम ठीक स्थान पर बैठ कर शुद्ध औजारसे परमात्माको देखनेका प्रयास करते हो? यदि हम अपने और परमात्माके बीचमें हड्डी-मांस-चामका शरीर रख देंगे—तमोगुणकी वृत्ति—तब परमात्माकी उपाधि तमस हो जायेगी। अन्धकार-ही अन्धकार। जब हम अपनी क्रिया, अपने प्राणको बीचमें रख देंगे तब परमात्माकी उपाधि 'रजस्' हो जायेगी और जब हम अपने सूक्ष्म-शरीरको बीचमें रख देंगे तब परमात्माकी उपाधि 'सत्व' हो जायेगी; और जब हम स्वयं निरुपाधिक होकर स्वयं अपनी नजरसे परमात्माको देखेंगे तब मालूम पड़ेगा कि परमात्मा कोई दूसरा नहीं अपना-आपा ही है। जिसको तुमने दूर देखा, जिसके मिलनेमें देर देखी, जिसको दूसरा देखा भले-मानुष, क्या कभी यह सोचा कि तुम स्वयं कौन हो? क्या जितनी दूरमें तुम्हारा मैं है उतनी दूरमें परमात्मा नहीं है? क्या जितनी देर तुम हो उतनी देर परमात्मा नहीं है? जो तुम हो वह क्या परमात्मा नहीं है? तो तुम परमात्माको काट कर देखना चाहते हो? परमात्माको जड़-रूपमें देखना चाहते हो? परमात्माको दूसरे समयमें देखना चाहते हो? दूसरी वस्तुमें देखना चाहते हो?

इसीसे महात्मा लोग जो हैं वे उपाधिकी ओर नहीं देखते। जब उपाधिको देखोगे तब परमात्मा सत्त्वगुणकी प्रधानतासे देवता और ऋषियोंका पालन-पोषण कर रहा है, जब रजोगुणकी उपाधिसे देखोगे तो असुरोंका पालन-पोषण कर रहा है और जब तमोगुणकी उपाधिसे देखोगे तो यक्ष-राक्षसोंका पालन-पोषण कर रहा है। इस तरह परमात्मा जब, जिसका समय होता है तब उसको उन्नत करता है, समृद्ध करता है। खाली तुमको ही उन्नत करने और समृद्ध करनेका ठेका थोड़े ही ले रखा है? तुम चाहो कि दुनियामें चिड़िया न हों, मेढक न हों, पशु न हों, पक्षी न हों, तो ऐसा कैसे चलेगा?

तो, जैसे लकड़ी टेढ़ी हो कि सीधी, काली हो कि गोरी और लम्बी हो कि गोल-लकड़ीमें आग जरूर रहती है। बिना आगके कोई लकड़ी नहीं होती। लेकिन, हम उस लकड़ीमें जो आग है उसको नहीं देख पाते।

ज्योतिरादिरिवाभाति सङ्घातान्न विविच्यते।
विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः॥ ७.१.९

लकड़ी तो मालूम पड़ती है परन्तु, लकड़ीमें जो आग है वह नहीं मालूम पड़ती है। लकड़ीकी लम्बाई-चौड़ाई-गोलाई हम सब देखते हैं— आमकी लकड़ी है कि बबूलकी लकड़ी है कि पीपलकी लकड़ी है यह भी देखते हैं, पर भीतरकी आग नहीं देख पाते। ऐसे ही, जो सबके भीतर रहकर सबको जीवन-दान कर रहा है, सबको स्फुरित कर रहा है और जीवन-दान कर रहा है, सबको स्फुरित कर रहा है और सबको प्रिय बना रहा है, उस वस्तुको, उस परमात्माको नहीं देख पाते हैं। तो, उसको कब देख पायेंगे? जब अपने-आपमें ही उसको देखेंगे। तो—

विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः।

जब कवि लोग आत्म-मन्थन करते हैं कि इस शरीरके भीतर प्राण कैसे है, प्राणके भीतर मन कैसे है, मनके भीतर बुद्धि कैसे है, बुद्धिके भीतर आनन्द कैसा है और आनन्दके भीतर अपना आत्मा

देश-काल वस्तुसे अपरिच्छिन्न कैसे है इस तरह जब आत्म-मन्थन करते हैं तब ढूँढने पर अपने-आपमें ही परमात्माका ज्ञान होता है, परमात्माकी प्राप्ति होती है। तो भाई मेरे, इस देहमें ही विराजमान परमात्माका बोध प्राप्त करना है तो 'आत्म-मन्थन' करना होगा। कौन करता है मन्थन? जो आत्मदर्शी हैं और जो इन्द्रियोंसे परेकी वस्तुको ढूँढना चाहते हैं। और, कब पाते हैं? अन्ततः—अन्ततक। यह नहीं कि पहले जहर निकला तो समुद्र-मन्थन छोड़ कर भाग गये। भागे नहीं, मन्थन करते रहे। फिर कौस्तुभ-मणि निकली, लक्ष्मी निकली, अमृत निकला और और भी कितने-कितने रत्न निकले। ऐसे ही हमें भी आत्म-मन्थन करना होगा।

हमारे मनोवैज्ञानिक लोग पता लगाने चले कि देखें अपने भीतर क्या भरा है? बोले कि हमारे अन्तःकरणमें सब कूड़ा-कर्कट भरा है, मलिन वासनाएँ भरी हैं। तो, मेरे भाई तुमने अभी-अभी शुरू किया है यह समुद्र-मन्थन और यह शुरू-शुरूका जहर निकला है, बादमें तो इसमेंसे हीरे-ही-हीरे निकलेंगे। अभी तुमको कोयला दिख रहा है उसमें सो जो हीरा निकलेगा वह नहीं दिखता। ऐसे ही अन्तःकरण केवल मलिन वासनाओंसे ही नहीं भरा हुआ है, उसमें सद्वासनाएँ भी हैं, सद्भाव भी है। लेकिन, तुम सद्भाव भी नहीं हो, तुम उस सद्भावके साक्षी हो। सद्भाव कभी जागता है, कभी सो जाता है। पर, सद्भाव सोवे कि जागे तुम हमेशा रहते हो।

सपने मिट-मिट जाते हैं, जीवन नहीं मिटता है।

तुम साक्षी हो। अच्छा, साक्षी कितना बड़ा होता है, जरा हमको लम्बाई तो बताओ? बोले—जितनी भी लम्बाई-चौड़ाई होगी वह दृश्य होगी, साक्षी नहीं। अच्छा, साक्षीकी उम्र बताओ? बोले—साक्षीकी उम्र नहीं होगी, वह उम्रका साक्षी होगा। अच्छा, साक्षीका वजन बताओ? बोले—साक्षीका वजन नहीं होगा, वह वजनका साक्षी होगा।

तब ऐसी कौन-सी चीज है जो साक्षीको छोटा बना दे? कोई नहीं। क्योंकि वह दिक्-कालावच्छिन्न है-देशका साक्षी है, कालका साक्षी है, वस्तुका साक्षी है और कभी परिवर्तित होने वाला नहीं है।

एक महात्माने मेरे सामने प्रेम-कुटीरमें कहा कि ज्ञानका फल व्यवहार-शुद्धि है। स्वामी प्रेमपुरीजी महाराज भी वहाँ उपस्थित थे। ऐसे बिगड़े महाराज। बोले—सारा व्यवहार अपने स्वरूपके बोधसे है। जो भी वस्तु अनादि होगी और प्रवाह-रूपसे नित्य होगी वह यदि अन्य होगी तो दृश्य होगी, कल्पित होगी और अपने अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होगी।

तो आओ, मन्थन करें उस वस्तुको पहचाननेके लिए। परमात्माको पहचाननेके लिए कि वह तत्त्व है क्या?

आप खानेके लिए गुड़ पहचानते हैं, विवाह करनेके लिए लड़की पहचानते हैं, अपने बैठनेके लिए कुर्सी पहचानते हैं, पर अपने-आपको नहीं पहचानते हैं या गलत पहचानते हैं। इसलिए, जहाँ आप बैठते हैं वहाँसे उठा दिये जाते हैं। एकने महात्मासे कहा कि महात्माजी, हमें तो ईश्वर साकार नजर आता है। महात्मा बोले—हाँ, जहाँ तुम बैठे हो वहाँसे साकार ही दिखता है। फिर एकने कहा कि हमको तो ईश्वर निराकार मालूम पड़ता है। बोले—हाँ जी, जहाँ तुम बैठे हो वहाँसे निराकार ही दिखता है! तीसरे व्यक्तिने कहा—हमको तो परमात्मा निर्विशेष मालूम पड़ता है। बोले—आप जहाँ बैठे हैं वहाँसे वैसा-ही दिखता है।

तो बाबा, जब तक देखने-दिखानेका फर्क बना रहेगा तब तक वह चीज पूरी कैसे होगी? जो दिखेगा सो भी अधूरा, जो देखेगा सो भी अधूरा। जहाँ दोनों एक होंगे, वहाँ पूर्णता आयेगी।

फिर बोले कि अच्छा जी, आओ हम उसमें मिल जाय। देखो, तुम मिलोगे तो फिर अलग हो जाओगे। तो आओ उसको अपनेमें मिला लें। अरे, मिलाओगे तो उसको अलग कर दोगे। तो, जो वस्तु अपना स्वरूप होती है वह न मिलायी जाती है, न अलग की जाती है, उसका

तो जो अज्ञान है वह काट दिया जाता है। पहले विवेक कर लें। 'नेति-नेति' इति ना इति ना, यह नहीं है, यह नहीं है और फिर आकरके वेदान्तने वह गोली मारी 'तत्त्वमसि' वह तो तुम्हीं हो।

तो; मन्थनसे ज्ञान होता है। एक बार यदि आपके सामने आकर ईश्वर खड़ा हो जाय और कहे कि हम ईश्वर हैं हमारे एक बाबूजी थे, बड़े ज्ञानी, किसीने उनको पूछा आपको ईश्वर मिल गया? बोले नहीं मिला है अभी तलाशमें हूँ। कोई साधु-महात्मा थे, उसने बाबूजीने पूछ लिया कि आपको ईश्वर मिला है? उन्होंने कहा कि हाँ, मिला है! बोले—'हमको दिखाओ'। बोले कि अच्छा रातको एकान्तमें दिखायेंगे और रातमें उनको गंगा-किनारे बुलाया। फिर जब उन्होंने पूछा कि ईश्वर कहाँ है? तो उठकर वे खड़े हो गये और बोले कि मैं ईश्वर हूँ। बाबूजी बोले कि देखो यह ढोंग-धतूरा नहीं चलता। हम ईश्वर उसको मानते हैं जो सृष्टि बनाता है, जो सारी सृष्टिका पालन करता है और जो सारी सृष्टिका संहार करता है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, जन्माद्यस्य यतः।

तुम एक साढ़े-तीन हाथके आदमी, हड्डी-मांस-चामके पुतले हमारे सामने खड़े हो। पहले सृष्टिका संहार करो जो दिख रही है, फिर सृष्टि बनाओ और फिर पालन करके हमको दिखाओ। ऐसे गप्प हाँकने और कहनेसे कि मैं ईश्वर हूँ नहीं चलता।

तो, जो लोग शास्त्रीय-संस्कारसे युक्त नहीं हैं वे किसी ऐरे-गैरे नत्थूखैरेको ईश्वर मान बैठते हैं और लोग अपनेको ईश्वर बताकर ठगते भी हैं, ढोंग-धतूरा भी करते हैं। ईश्वरका पहले जो ज्ञान होगा वह प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न-रूपसे ही होगा। अब इसके बाद जब देखोगे कि उसके सिवाय और कुछ नहीं है तो आओ अपनी मौजसे चाहे जिसको ईश्वर मान लें! कवि लोग मन्थन करते हैं।

तो, ईश्वरको पहचाननेका लक्षण क्या है? शक्ल-सूरत नहीं

ईश्वरको पहचाननेके लिए चक्र-गदा-त्रिशूल काफी नहीं है, वह तो सृष्टि-कर्त्ता, सृष्टि-भर्ता, सृष्टि-हर्ता होना चाहिए—सृष्टिके पहले होना चाहिए, सृष्टिके बादमें होना चाहिए, सृष्टि न हो तब भी होना चाहिए। ईश्वरकी पहचान ऐसे थोड़े ही होती है। कि तब? यह सब क्या माया-जाल है? बोले भाई कि जहाँ तुम बैठे हो वहाँसे तीन चीज दिखती है—हड्डी-मांस-चामका शरीर तमोगुणका कार्य, क्रिया रजोगुणका कार्य, और वृत्तिज्ञान-सत्त्वगुणका कार्य। तब इनकी इन उपाधियोंसे तुम दिखायी पड़ते हो, तो ईश्वर कैसा दिखायी पड़ेगा? ईश्वर विराट् दिखायी पड़ेगा। सारी क्रियाके मूलमें और सारे ज्ञानके मूलमें दिखायी पड़ेगा। यह जब तुम उपाधिको स्वीकार करके ईश्वरको देखते हो। जब तुम लाल चश्मा लगाकर देखते हो तब दृश्य भी लाल दिखायी देगा। जब बल्ब पर लाल कागज लगा दोगे तब रोशनी भी लाल हो जायेगी। ऐसे ही जब तुम देहवान होकर देखते हो तब ईश्वर देहवान, जब तुम क्रियावान होकर देखते हो तब ईश्वर क्रियावान; जब तुम ज्ञानवान होकर देखते हो तब ईश्वर ज्ञानवान और जब तुम यह सारी इल्लत—'उपाधि' शब्दके लिए उर्दू-फारसीमें इल्लत अपनेमें-से हटाकर देखोगे तब ईश्वरका साक्षात् दर्शन होगा।

असलमें गुणोंकी उपाधिसे ईश्वरमें पक्षपात मालूम पड़ता है। सत्त्वकी उपाधिसे देवताओंका पक्षपात, रजकी उपाधिसे दैत्योंका पक्षपात और तमकी उपाधिसे यक्ष-राक्षसोंका पक्षपात। परमात्मामें यह सारा-का-सारा पक्षपात और निर्दयता लौकिक दृष्टिसे है, तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं है।

आप लोग तो ज्ञानी पुरुष हैं, बड़े बुद्धिमान हैं, आपने सोना तो जरूर देखा होगा। जरा याद तो करो कि कैसा है? आप तो कङ्गनको पहचानते हैं सोनेको नहीं, आप हारको पहचानते हैं सोनेको नहीं, आप सिल्लीको पहचानते हैं सोनेको नहीं। आप सोनेको पहचानते हैं?

'सोनेको' नहीं पहचानते। यह बताओ कि कङ्कन, हार, सिल्ली-चूरा कुछ भी बननेसे पहले सोना क्या है? निराकार। स्वर्ण-द्रव्य निराकार है, तेजो-द्रव्य निराकार है। अच्छा तो; तुममें और सोनेमें क्या भेद है? सोना दृश्य है, कल्पित है—सोनेके बाहरी नाम-रूपको देखकरके निराकार-रूपसे सोना कल्पित है। तुम्हारी कल्पनामें सोनेका एक रूप है। जो कल्पनावच्छिन्न चैतन्य है वही कल्पित स्वर्णावच्छिन्न चैतन्य है, दोनोंमें कहीं किसी प्रकारका भेद नहीं है। आप सोना हैं, आप हीरा हैं, आप निराकार-साकार हैं, आप क्या नहीं हैं? अच्छा आओ, आपको वह उपाख्यान सुनाते हैं कि—

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा।
प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे॥

भा. ७.१.१२

युधिष्ठिरका यज्ञ हो रहा था। युधिष्ठिर कौन है? बोले—अजातशत्रु। उनका कोई दुश्मन पैदा नहीं हुआ। बोले—कोई तो दुश्मन होगा? बोले—नहीं। देखो शत्रु कहते हैं सताने वालेको। सातनात् शत्रुः—जो सताये वह शत्रु। तो दुनियामें ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ जो युधिष्ठिरके हृदयको सता सके। उनका हृदय धर्मानुष्ठानसे इतना ठोस था। ऐसा नहीं था कि कोई उनकी निन्दा नहीं करता था, कि कोई उनको गाली नहीं देता था। उनको गाली देने वाले तो हजार-हजार लोग थे, लेकिन गाली देकर भी कोई उनके हृदयको पीड़ित नहीं कर सकता था, सता नहीं सकता था। महात्माकी पहचान ही यह है—

'निन्दाचास्य हृदयं नोपहन्याम्'

कोई कितनी भी निन्दा करे अपने दिल पर चोट न लगे। जब तक निन्दा दिल पर चोट पहुँचाती है तब तक समझना कि तुम अपने अन्तःकरणसे भिन्न नहीं हो, अभी तुम्हें अपने साक्षी स्वरूपका बोध नहीं हुआ है। और, कोई कितनी भी निन्दा करे वाणीका वेग तुम्हें

बोलनेके लिए विवश न करे, मनका वेग किसीको सोचनेके लिए विवश न करें, क्रोधका वेग किसीकी हिंसा करनेके लिए विवश न करे, कामका वेग किसीके भोगके लिए विवश न करे। तो निश्चित ही तुम्हें साक्षी स्वरूपका बोध हो गया। अरे, यह सब तो स्वप्न-सृष्टि है। तो, नारायण! युधिष्ठिर महात्मा थे। युधिष्ठिर माने युधिः स्थिरः माने जो युद्धमें स्थिर रहता है, कभी घबड़ाता नहीं, कभी विचलित नहीं होता, हमेशा अपने स्वरूपमें रहता है!

तो, युधिष्ठिरके यहाँ हो रहा था महाक्रतु-महायज्ञ। वहाँ उन्होंने एक आश्चर्य देखा—

दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ।
वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः॥ ७.१.१३

क्या आश्चर्य देखा कि शिशुपाल वहाँ बैठा हुआ था। जैसे एक बुआके युधिष्ठिर आदि वैसे ही दूसरी बुआका लड़का शिशुपाल। उसको अच्छा सिंहासन मिला हुआ था, छत्र भी लगा हुआ था और बड़ा आदर—मान मिला था। लेकिन, जब श्रीकृष्णकी अग्रपूजा होने लगी तब उसके मनमें ईर्ष्याका उदय हो गया, द्वेषका उदय हो गया कि लोग इसको ज्यादा क्यों मानते हैं, इससे ज्यादा प्रेम क्यों करते हैं, इसकी अग्रपूजा क्यों हो रही है? इसीको अमर्ष बोलते हैं। 'अमर्ष' माने मर्षण न कर सकना। किसीकी उन्नतिको सहन न कर सकना। तो शिशुपाल ने जब यह देखा तब अमर्षके मारे उसने भरी सभामें श्रीकृष्णको गाली देना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण सहते रहे। क्यों सहते रहे? क्योंकि उन्होंने इसकी माँको वरदान दे रखा था कि इसकी सौ गाली वे माफ कर देंगे— हुआ यह था कि जन्मके समय शिशुपालके चार हाथ थे, और बचपनमें ही इसकी माँको किसीने बता दिया था कि जिसके सामने आते ही इसके दो हाथ लुप्त हो जायेंगे, उसी व्यक्तिके द्वारा यह मारा जायेगा। तो, श्रीकृष्णके सामने आते ही उसके दो हाथ गायब हो गये, तब माँने

श्रीकृष्णसे यह वरदान माँग लिया। इसलिए श्रीकृष्ण सौ गाली तक इसको माफ करते रहे, करते रहे।

एक बार पण्डित मोतीलाल नेहरूने मालवीयजीसे कहा कि मालवीयजी, आप हमें सौ गाली भी देंगे तंब भी मैं आपको कुछ नहीं कहूँगा। बर्दास्त कर लूँगा। मालवीयजी ने उत्तर दिया कि मोतीलालजी, आप सह लेंगे सो तो ठीक है, पर मैं गाली देकर अपनी जुबान गन्दी क्यों करूँ? गाली जिसको दी जाती है उसको नहीं लगती है, उसके तो ऊपर-ऊपरसे उड़ जाती है! पर, जो गाली देता है उसकी जीभमें जाकर चिपक जाती है। एक महात्माने कहा है कि 'ददतु-ददतु'—दो भाई दो! क्या? गाली। क्यों? जिसके पास धन होता है वह धन दे जाता है, फूल-माला होती है, फूल-माला दे जाता है, तुम्हारे पास गाली है तो तुम गाली ही दे जाओ। हम तो सब लेनेके लिए बैठे हैं।

ददतु-ददतु गालीर्गालीमन्तो भवन्तः।

आप गालीके धनवान हैं। ओ हो! थोड़ी तो दे जाइये! तो श्रीकृष्ण शिशुपालकी गाली सहते रहे, माफ करते रहे और जब सौ गाली पूरी हो गयी तब उन्होंने सोचा कि अब प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी; सो चक्रके द्वारा शिशुपालका सिर काट दिया। इसीको बोलते हैं 'काल-चक्र'। माने परिस्थितिका परिवर्तन; बदल जाती है दुनिया। देखो कालबादेवी रोड पर यदि हम किसीकी जेब काट लें और जब वह हमको मारने लगे तब हम हाथ जोड़कर खड़े हो जाये, चुप लगा लें, तो, सड़क पर जितने चलने वाले लोग होंगे उसीको रोकेंगे, उसीको चार बात सुनायेंगे और यदि वह उनकी बात नहीं मानेगा तो उसीको मारेंगे भी। तो यह काल-चक्र हमेशा भगवान्‌के हाथमें रहता है। सहिष्णुके पक्षमें परिस्थिति होती है, बदला लेने वालेके पक्षमें परिस्थिति कभी नहीं होती। बल्कि उसके विरुद्ध परिस्थिति हो जाती है! तो श्रीकृष्णने काल-चक्रके द्वारा शिशुपालका सिर काट दिया। लेकिन, बड़ा-भारी आश्चर्य हो गया।

ज्योति निकली और वह जाकर श्रीकृष्णमें मिल गयी, श्रीकृष्णके साथ उसका सायुज्य हो गया।

वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः।७.१.१३

नारदजी वहाँ बैठे हुए थे–**'तत्रासीनं सुरऋषि'**।

युधिष्ठिरने आश्चर्य-चकित होकर सब ऋषिमुनियोंके सामने ही उनसे प्रश्न किया कि यह रागी-द्वेषी, लोभी-कामी, असुर-भावापन्न शिशुपाल, यह श्रीकृष्णमें कैसे मिल गया? यह क्या आश्चर्य हो गया महाराज? बड़े-बड़े एकान्तनिष्ठ भक्तोंको जो गति मिलनी दुर्लभ है वह शिशुपालको कैसे मिल गयी? क्योंकि जब बेनने भगवान्‌की निन्दाकी थी तब, उसको तो ब्राह्मणोंने नरकमें डाल दिया था और यह तो जन्मसे ही पापी रहा और इस समय भी श्रीकृष्णकी पूजा देखकर चिढ़ गया और भगवान्‌की निन्दा कर रहा था, बारम्बार उनको गाली दे रहा था, तो इसकी जीभमें तो कोढ़ हो जाना चाहिए था, इसको घोर-अन्धकारमें डालना चाहिए था। और, यह सबके देखते-देखते कैसे भगवान्‌के श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो गया?

पश्यतां सर्वलोकानां लयमीतुरञ्जसा।७.१.१९

यह कैसे हो गया, आप इसका कारण हमें बताइये।

श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितसे कहते हैं कि युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनकरके नारदजीको बड़ा आनन्द हुआ। असलमें प्रश्न सुनकर नाराज वे लोग होते हैं जिनमें प्रश्नका उत्तर देनेकी शक्ति नहीं रहती है। महात्मा लोग तो प्रश्न सुनकर खुश होते हैं; क्योंकि इससे उन्हें भगवद् चर्चा करनेका अवसर मिल जाता है।

श्रीमद्भागवतका ऐसा कहना है कि जिसके मनमें भगवान्‌के सम्बन्धमें प्रश्न नहीं उठता, उसके अन्दर पाप होते हैं जो उसके मनमें प्रश्न उठने नहीं देते। और, वक्ता भगवान्‌के विषयमें जानता है फिर भी बोलता नहीं है, क्यों? उसके पाप उसे बोलने नहीं देते। और श्रोताके

कान हैं तो वह भगवच्चरित्र सुनता क्यों नहीं? बोले—उसके पाप हैं जो उसे सुनने नहीं देते। अब, यदि भगवद्-सम्बन्धी प्रश्न सामने आता है तो प्रश्न करने वालेका भी पाप मिट जाता है, उत्तर देनेवालेका भी पाप मिट जाता है और जो इसको सुनता है उसका पाप भी मिट जाता है। इसलिए, प्रश्न करो तो भगवद्-सम्बन्धी, उत्तर दो तो भगवद् सम्बन्धी। उनकी बेटी ऐसी, उनकी बहू ऐसी, वे ऐसे-यह सब चर्चा करनेसे तो तुम्हारा दिल गन्दा ही तो होता है। जबकि भगवच्चर्चामें प्रत्यक्ष लाभ यह है कि इससे मन शान्त हो जाता है और संसारकी चर्चा छूट जाती है। आप अपने मनको जाँचो, वह किसको अधिक याद करता है? दुश्मनकी याद ज्यादा आती है, दोस्तकी याद ज्यादा आती है? भोगकी याद ज्यादा आती है या पैसेकी याद ज्यादा आती है? माने आपका मन रमता कहाँ है इसका विश्लेषण करो, इसकी जाँच-पड़ताल करो। जैसे रक्तकी जाँच करते हैं कि इसमें कितनी 'शुगर' है, कितना 'हेमोग्लोबीन' है, कितना 'प्रोटीन' है और जैसे मृत शरीरका 'पोस्टमार्टम्' करके पता लगाते हैं कि यह व्यक्ति कैसे मरा, वैसे ही आप अपने मनका 'पोस्टमार्टम्' करो इसमें क्या-क्या भरा है। दूसरेकी जाँच मत करो अपनी जाँच करो। सबसे नजदीक तो तुम्हारा अपना मन है, उसकी जाँच करो।

हाँ तो, युधिष्ठिरका प्रश्न सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए और भरी सभामें ही उन्होंने उत्तर देना प्रारम्भ किया! उत्तर बहुत बढ़िया है, ध्यानसे सुनें। नारदजी कहते हैं कि संसारमें लोग निन्दा सुनकर नाराज होते हैं और तारीफ सुनकर खुश होते हैं; पर क्या आपने कभी सोचा है कि यह निन्दा होती किसकी है, यह तारीफ होती किसकी है? बोले—यह बड़े सुन्दर हैं, बड़े गोरे हैं। यह आपकी प्रशंसा हुई? नहीं, आपके चामकी प्रशंसा हुई। और चामकी बात भी छोड़ो, लोग तो तुम्हारी साड़ी बहुत सुन्दर है कि तुम्हारी कमीज बहुत सुन्दर है यह सुनकर भी बहुत प्रसन्न

होते हैं। अरे बाबा, साड़ी चार दिनमें फट जायेगी, कमीज चार दिन बाद नहीं रहेगी और उसको तुम मेरी-मेरी करके उसकी प्रशंसासे अपनेको प्रशंसित मानते हो कि मेरी प्रशंसा हो रही है? अच्छा, किसीने कहा कि आपके घरमें रसोई बहुत बढ़िया बनती है और आप खुश हो गये। अरे भाई, वह तो आपका रसोईया बढ़िया है, उसकी बनायी रसोई है-आपका क्या है? तो यह एक तरहका अविवेक आपके मनमें भरा हुआ है?

निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम्।
प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम्॥

भा. ७.१.२२

नारदजी कहते हैं कि युधिष्ठिर, यह हमारी निन्दा है, यह हमारी स्तुति है, यह हमारा सत्कार है, यह हमारा दुत्कार है-यह सब तो देहके साथ आत्माको मिला देनेसे अपने आपमें आरोपित हुआ है :

प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम्।

निन्दा-स्तुति, सत्कार-तिरस्कार शरीरके हो रहे हैं कि आत्माके हो रहे हैं? जब तुम शरीरसे एक हो जाते हो तब शरीरके मांस, खून, पीव, हड्डी, मूत्र, विष्ठा, कानसे निकलने वाली खोंट, आँखेसे निकलने वाली कीचड़, नाकसे निकलने वाला बलगम, मुँहसे निकलने वाला थूँक और त्वचासे निकलने वाले बाल इन सबसे एक हो जाते हो और शरीरकी प्रशंसा इन्हींकी तो प्रशंसा है और शरीरकी निन्दा इन्हींकी तो निन्दा है। तो, अपने आपको आप पवित्र रख करके, विविक्त न करके रहते हो। संस्कृतमें 'विविक्त' माने पवित्र होता है। गीतामें आपने पढ़ा होगा **'विविक्त देश सेवित्वं'** एकान्त और पवित्र देशमें बैठो। सबसे पवित्र हैं भगवान्। और सबसे एकान्त है जहाँ भगवान्के सिवाय दूसरेका चिन्तन न हो। कभी विष्णुसहस्रनामका पाठ करते हैं–

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।

अब तुम बैठ गये इस गन्दे शरीरमें और इसको 'मैं' मानने लग

गये। आपलोगोंको पहले भी सुनाया होगा—चौबीस-पच्चीस वर्षके लगभग हो गये यहाँ सुनाते-सुनाते, इसलिए जरूर सुनाया होगा, हमको एक बार किसी ने मारा। हमने यह सह तो लिया, लड़ाई तो नहीं की पर, मनमें दुःख बहुत हुआ। जाकर महात्मासे सब बताया। वे हँस कर बोले—उस समय जहाँ तुम बैठे थे वह पिटने लायक ही जगह थी। वहाँ क्यों बैठे थे तुम? यदि कोई कूड़ेके ढेर पर जाकर बैठ जाय और दूसरा कोई एक टोकरी कूड़ा लाकर वहाँ डाल दे तो उसमें कूड़ा डालने वालेका क्या दोष? जब तुम पनालेमें ही जाकर लेट गये तब किसीने एक बाल्टी गन्दा पानी तुम पर डाल दिया तो उसका क्या दोष? मेरी समझमें बात नहीं आयी। फिर बोले-यह हड्डी, मांस, चामका ढेर—यह कूड़ा, यह पनाला, इसमें जब तुम जाकर बैठ गये तब उसने तुम्हें दो चपत लगाकर बहुत बढ़िया किया कि तुम निकलो यहाँसे, उठो यहाँसे यह कोई बैठनेकी जगह है! उसने तो तुम्हारा बड़ा भला किया कि तुमको गन्दी जगह से उठाकर अपनी आत्मामें, परमात्मामें बैठनेकी प्रेरणा दी। उसकी क्या गलती?

तो, देखनेका यह है कि हम कहाँ बैठे हैं। एक महात्मा बोलते हैं कि—

मं निन्दया यदि जनः परितोषमेति।
नन्व प्रयत्न सुलभो अनुग्रहो मे॥

यदि मेरी निन्दा करके किसीको खुशी हासिल होती है, सुख मिलता है तो उसने तो मेरे किसी प्रयत्नके बिना ही मेरे पर बड़ी कृपा की। कैसे? तो बोले कि बाबा, दूसरेको खुश करनेके लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता है—धन देना पड़ता है, पाँव दबाना पड़ता है, खुशामद करनी पड़ती है और वह हमारे दोषोंको देख-देखकर ही खुश हो रहा है। तो उसने हम पर बड़ी कृपा करी।

एक दूसरे महात्मा कहते थे कि पहले यह तो सोचो कि वह निन्दा

किसकी कर रहा है—शरीरकी या आत्माकी? शरीरकी निन्दा तो हम खुद भी करते हैं कि यह रोग-शोकका खजाना है, इसमें संयोग-वियोग, दुःख-सुख, जन्म-मरण, राग-द्वेष सबके सब रखे हैं। तो ऐसे शरीरकी निन्दा यदि दूसरा भी करता है तो वह तो हमारे स्वरमें ही तो अपना स्वर मिला रहा है। हमारी राय और उसकी राय एक—बहुत बढ़िया। फिर बोले कि यदि आत्माकी निन्दा करता है तो? बोले—जो मेरी आत्मा है वही उसकी आत्मा है। मेरी निन्दा करता है तो अपनी निन्दा करता है। मेरी आत्मा और उसकी आत्मा अलग-अलग थोड़े-ही है? इसमें तो कुछ कहने लायक ही नहीं है। देखो बुद्धि बहुत असंगत विचार करती रहती है। सपनेमें जैसे असंगत दृश्य आते हैं वैसे ही बुद्धिमें असंगत विचार उठते रहते हैं। तो, अपनी बुद्धिमें ही संगति लगानी चाहिए जिससे असंगत विचार नहीं आवें।

अच्छा चलो, आज आपको निन्दाके बारेमें ही थोड़ी-सी बात सुना देते हैं। श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार थे। जब कोई उनके सामने जाकर किसीकी निन्दा करता तब वे उसको भरसक समझानेका प्रयास करते भाई, तुम्हारे समझनेमें गलती हो गयी होगी, उसका दोष नहीं होगा, तुम्हारे देखनेमें भूल हो होगी, उसका दोष नहीं होगा; तुम्हारे सुननेमें भूल हो गयी होगी, तुम अपना ही अनुसन्धान करो, तुम अपना दोष नहीं देखकर उसका दोष देखने क्यों जाते हो? ऐसे-ऐसे कई तरीकेसे समझा-बुझाकर उसको लौटा देते और फिर जिसकी निन्दा की जाती उसको भी बुलाते और उसको समझाते—'देखो भाई, हम जानते हैं कि तुम बिल्कुल निष्पाप हो, निःकलङ्क हो तुम्हारा कोई दोष नहीं है। लेकिन, तुम बनावटमें भी ऐसा कुछ मत दर्शाया करो जिसे देखकर दूसरेका अन्तःकरण अशुद्ध हो जाय! तुम्हारे अन्दर दोष देखेगा तो उसकी बड़ी हानि होगी। इसलिए तुम ऐसे रहो जिससे तुमको देखकर किसीके अन्तःकरणमें दोष न आवे;

उसकी भलाईके लिए तुम अपने अन्दर दोष मत दिखाओ।' श्रीहनुमान प्रसादजी ऐसे समझाया करते थे।

सेठ जयदयालजी थे! उनसे यदि कोई किसीके विषयमें कुछ कह देता तो वे उसको बिल्कुल सच मान लेते थे। वे कहते कि जब यह कह रहा है तब यह बात बिल्कुल सत्य है। फिर जिस पर दोष लगाया गया वह व्यक्ति अपनी चाहे जितनी सफायी दे, उसकी मानते ही नहीं थे। कहते—'जरूर कहीं-न-कहीं उसकी जड़ है उसमें दोष जरूर है तभी लोग चर्चा करते हैं' और उसको डाँटते-फटकारते।

अच्छा, हरिबाबाजी महाराजकी बात भी सुन लो। उनसे यदि कोई किसीकी निन्दा करता तो कहते हट जाओ मेरे सामनेसे। तुम्हारा दिल तो खराब है ही अब हमारा दिल खराब करने आये हो? तुम तो गन्दा खाते हो अब हमको गन्दा खिलाने आये हो? चले जाओ हमारे सामनेसे और तुरन्त उसको हटा देते। कोई कितना भी प्रयास करे, सुनते ही नहीं थे, सुनते ही नहीं थे।

और, श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे यदि कोई किसीकी निन्दा करता तो कहते कि तुम मच्छरकी आवाज क्यों सुनते हो? मक्खीकी आवाज क्यों सुनते हो? हर समय वे ऐसी मस्तीमें रहते,ऐसा हँस देते महाराज कि उनकी हँसीसे सारी निन्दा, सारा दोष आकाशमें उड़ जाता।

इस तरह हम देखते हैं कि जीवनमें एक रहनी होती है। यदि तुम हर समय डण्डा लेकर सबको मारनेके लिए ही दौड़ते रहोगे तो पागल हो न? पागलपनकी यही तो पहचान है! एक पण्डितजी थे, अपने आश्रममें ही रहते थे। उन्होंने एक बार श्रीहरिबाबाजी महाराजको चिट्ठी लिखी कि आपके साथ रहनेवाले फलाँ-फलाँ व्यक्ति गुण्डे हैं, आप इनको निकाल क्यों नहीं देते? श्री हरिबाबाजी महाराजने उनको चिट्ठीका उत्तर दिया—'देखो पण्डितजी, जो कुछ हो

रहा है मालिकके सामने हो रहा है। वह सब देख रहा है और मुस्कुरा रहा है! यदि उसको पसन्द नहीं है तो वह गुण्डोंको स्वयं आज्ञा देदे कि हट जाओ तुम सब यहाँसे। तुम हम मालिकका कानून हाथमें लेनेवाले कौन हैं?'

अच्छा एक आध बात और सुना देते हैं। हमारे एक महात्मा थे, अभी थोड़े दिन पहले ही उनका शरीर पूरा हुआ है! वे एक बार लखनऊ गये। वहाँ उनके बहुत भगत। (महात्मा पहले गृहस्थ थे और उनकी ससुराल लखनऊमें ही थी!) बैठकमें महात्मा बैठे हुए थे कि एक सज्जन आये और बोले कि हम आपसे कुछ बात करना चाहते हैं। बात क्या करनी थी, उन्होंने महात्माजीको गाली देना शुरू किया कि महात्मा होकर ससुरालके गाँवमें क्यों आये? और कोई सौ-पचास दोष उनपर लगा दिये! महात्मा ध्यानसे सुनते रहे, सुनते रहे। जब वे चुप हो गये तब महात्मा बोले—'मैं बड़े ध्यानसे तुम्हारी बात सुन रहा था और एक-एक पर गौर भी करता जा रहा था। जितने दोष तुमने मेरे अन्दर बताये वे सब मुझमें हैं यह मैं जानता हूँ। ध्यानसे मैं इसलिए सुन रहा था कि शायद तुम्हें कोई मेरा ऐसा दोष मालूम हो जो मुझे मालूम नहीं है। पर, तुमको तो अभी मेरे उतने दोष भी नहीं मालूम है जितने मुझे मालूम हैं। मेरे अन्दर तो और भी बहुत दोष हैं।'

बताओ अब, यह भी तो एक दृष्टि है!

एक और महात्मा थे। उनके सामने कोई व्यक्ति आया उनके दोष बतानेके लिए। महात्मा बोले—'मैं तुमको आज्ञा देता हूँ, कि तुम निर्भय होकर मेरे दोषोंका वर्णन करो।' उसने पूछा—'महाराज, आज्ञा क्यों देते हैं?' बोले कि बड़े-बड़े लोग तनख्वाह देकर अपने पास ऐसे-ऐसे आदमी, विदूषक रखते हैं जो तरह-तरहसे उनका मनोरंजन करें, मैं भी तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम मुझे गाली देकर मेरा मनोरंजन करो! अरे...! अब अगर तुम गाली देते हो तो हमारी आज्ञा का पालन करने

वाले हमारे नौकर हो गये न? चुप हो गया बेचारा, नौकर बनकर क्या गाली देना?

तो देखो भाई, इस आत्माको देहमें मिलाये बिना और देहको आत्मामें मिलाये बिना यह जो निन्दा-स्तुतिका प्रभाव है वह शरीर पर नहीं पड़ता है। महात्माओंके ही नहीं पड़ता है और जो साक्षात्-ब्रह्म है, परमात्मा है—विरुद्ध धर्माधिष्ठान भला उसके प्रभाव कैसे पड़ेगा? श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज तो बोलते ईश्वर छोटा भी है, बड़ा भी है, साकार भी है, निराकार भी है, सगुण भी है, निर्गुण भी है, दयालु भी है न्यायकारी भी है, यहाँ भी है, वहाँ भी है, अब भी है तब भी है, विरुद्ध धर्मोंका आश्रय है और वेदान्ती लोग बोलते हैं—अध्यस्त विरुद्ध-धर्माधिष्ठान परस्पर विरुद्ध धर्म उसके अन्दर अध्यस्त होंते हैं, आरोपित होते हैं और वह अधिष्ठान स्वरूप है। कुछ कहेगा नहीं, चाहे कोई कुछ माने, चाहे कोई कुछ कहे, किसीको जबाव देने नहीं आता, किसीको मना करने नहीं आता, किसीकी तारीफ करने नहीं आता, ज्यों-का-त्यों।

पाया कहे सो बावरा, खोया कहे सो कूर।
पाया-खोया कुछ नहीं ज्यों-का-त्यों भरपूर॥
न कुछ हुआ न है कछु न कछु होवनहार।
अनुभव का दीदार है अपना रूप अपार॥

असलमें यह निन्दा-स्तुति जो है यह अज्ञानकी निशानी है। महात्माकी दृष्टिमें तो माथे पर चन्दन लगानेवाला और हाथको फरसेसे काटने वालाः दोनों बराबर हैं। और, जब महात्माकी यह दृष्टि है तब जो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है उसके बारेमें तो कहना ही क्या? यह सारा उफान जो मनमें भरा है यह अविवेकके कारण है।

प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम्॥ ७.१.२२

आत्मा क्या है और प्राकृत क्या है इसका विवेक न होनेके कारण

ही हमारा चित्त बिगड़ता है और जो शरीरका अभिमान कर बैठता है उसीको लगती है चोट और जो शरीरका अभिमानी है वही करता है दूसरे पर चोट। यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह तूँ है यह तेरा है—यह साराका सारा अविवेक मूलक है, इसीसे हिंसा होती है। तो, परमात्माकी ओर देखो—

यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात्प्राणिनां वधः।

(भागवत ७.१.२४)

बध कैसे होता है? जो मनुष्य जहाँ अभिमान करके बैठा है, यदि उसके अभिमानकी वस्तुकी हिंसा कर दी जाय तो उसका वध हो जाता है। एक मनुष्य है, अपनेको बड़ा भारी विद्वान मानता है। अरे भाई, कहते रहो हाँ, हाँ बहुत ठीक है, आपके सरीखा विद्वान कोई नहीं—उनके अभिमानकी रक्षा करनी चाहिए। और, यदि हम शास्त्रार्थ करके उनको विद्यामें, बुद्धिमें पराजित कर दें तो उनकी विद्या-बुद्धिका अभिमान टूट जायेगा और उनको बहुत दुःख होगा तो उनकी हिंसा हो जायेगी और जिनको अपने पाण्डित्यका अभिमान ही नहीं है उनकी हिंसा कभी नहीं होगी।

तो, हिंसा हमेशा ही अभिमानकी होती है और परमात्मामें कोई अभिमान नहीं है। इसलिए, वहाँ हिंसा नहीं होती। वह तो बिल्कुल कैवल्य है।

इसलिए कहना यह है कि आप अपना मन भगवान्‌में लगाओ! धर्ममें पहले यह देखा जाता है कि यह व्यक्ति इसका अधिकारी है या नहीं और फिर यह कि जो वह कर रहा है वह शास्त्रानुसार है या नहीं! धर्मानुष्ठानका फल उसी व्यक्तिको मिलता है जो उसका अधिकारी होता है और जो सारी क्रिया-कलाप शास्त्रीय ढंगसे करता है। और, भगवान्‌की भक्तिके साथ ऐसी कोई शर्त नहीं होती। भगवानकी भक्ति करनेमें यह नहीं देखा जाता है कि 'मैं कैसा हूँ'। पतितसे पतित व्यक्ति

भी भक्ति करनेके अधिकारी हैं। भक्ति करने वाले की योग्यताके अनुसार फल नहीं देती है, जिसकी भक्तिकी जाती है उसकी योग्यताके अनुसार भक्ति फल देती है। भक्ति कर्त्ता-प्रधान नहीं होती है, भाव-प्रधान होती है।

तो धर्म होता है विधिकी प्रधानतासे—शास्त्रमें उस कर्मका विधान है कि नहीं और करनेवाला उसका अधिकारी है कि नहीं—अर्थात् तराजू पर तौल कर धर्मका फल मिलता है और भगवान्‌की भक्तिमें यह नहीं देखा जाता है कि करनेवाला कौन है! एक भङ्गी भी राजाकी भक्ति कर सकता है—उसके दरबारमें झाड़ू लगावेगा, जुहार बोलेगा, एक पण्डित वेद-पाठ कर सकता है और एक वेश्या भी नाच दिखा सकती है। महाराजके दरबारमें उसकी सेवा करनेका अधिकार सबको है। और, सेवा करनेमें यदि कोई गलती हो जाये तो? तो, यदि तन्ख्वाह लेकर सेवा कर रहा है तब तो गलती माफ नहीं होगी। लेकिन, यदि प्रेमसे सेवा कर रहा है तो गलती भी माफ है!

तो भक्ति जो है सो न कर्त्ताकी प्रधानतासे होती है, न कर्मकी प्रधानतासे होती है, न विधिके विधानकी प्रधानतासे होती है और न द्रव्यकी प्रधानतासे होती है। भक्ति होती है उद्देश्यकी प्रधानतासे। और जिसकी भक्तिकी जाती है उसमें उसकी कृपा-ही मुख्य है! वह न देखता है कुसाधन, न देखता सुसाधन, न देखता है असाधन। वही नहीं देखता है कि यह गलत काम कर है, यह भी नहीं देखता कि अच्छा काम कर रहा है। यह नहीं देखता कि इसके पास अच्छा-बुरा कुछ नहीं है। सबकी गति एक है—भगवान्। क्योंकि भक्तिमें सारा-का-सारा भगवान्‌का हाथ है, इसमें जीवका हाथ है ही नहीं, कर्मका हाथ है ही नहीं, विधि-विधानका हाथ है ही नहीं। इसमें तो सारी-की-सारी कृपा उमड़ पड़ती है जिसकी भक्ति होती है उसकी और कभी-कभी बिना सोचे-विचारे भी कृपा उमड़ पड़ती है। कोई भगवान्‌को तीर मारना चाहे और उनपर

निशाना लगा रहा हो और उसी समय कोई वाण आया जिससे उसका धनुष कट गया, वाण कट गया, उसका सिर कट गया और वह गिर गया-मर गया। तो उसकी क्या गति होगी? कि उसको भगवान् मिलेंगे –

'यमिहनिरीक्ष्यहतागताः सरूपम्'। (भागवत १.९.३९)

न उसके हृदयमें भक्ति है, न भाव है भक्तिका, बल्कि वह तो भगवान्को तीर मारना चाहता है, पर फिर भीं भगवान् उसको अपनी गति देते हैं–भगवतमें यह बात बिलकुल स्पष्ट है।

अजामिलने भगवान्का नाम उनका नाम समझकर नहीं लिया था! उसने तो अपने बेटेको पुकारा था। पर चाहे कोई कैसा भी हो– सुसाधन हो, कुसाधन हो अथवा असाधन हो–

दुःसाधन निःसाधन सुसाधनानाम अपि
गति सैषा श्रीपतिलीलाऽनुग्रह नाम्नि।

यह भगवान्की अनुग्रह-लीला है, अनुग्रह-लीला। भक्ति कैसे हो रही है यह बात नहीं, किससे हो रही है यह देखना है। द्वेष किससे है, काम किससे है, क्रोध किससे है, लोभ किससे है, मोह किससे है? अरे भाई, सब भगवान्से ही तो है। अच्छा! भगवान्से है, फिर तो क्या पूछना है? फिर द्वेष नहीं देखना है, फिर कामना नहीं देखनी है, फिर मोह नहीं देखना है–कहाँ है, किसके लिए है, किससे है यह देखना है! यह मत देखो कि मैं क्रोधी और यह क्रोध देखो किस पर क्रोध और वह महाराज इतना समर्थ है कि **'आवेश्य तदधंहित्वा बह्वस्तद्गतिं गताः'**– एक दिन भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। नारदजी समझा रहे हैं–युधिष्ठिर क्यों आश्चर्य करते हो?

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(४)

धर्म और यज्ञानुष्ठान—ये दौनों जीवके बलसे अपना फल देते हैं। इसमें जीव अधिकारी होना चाहिए एक बात,और दूसरी बात है कि कर्म विधि-पूर्वक साङ्गोपाङ्ग होना चाहिए और अपूर्व उत्पन्न होकर जीवके अन्तःकरणमें रहना चाहिए। यह सब होनेके बाद जीवको धर्मका फल प्राप्त होता है। जैसे, यदि आपको यज्ञ करना हो तो आप यज्ञोपवीत आदि संस्कार करवाइये, स्नान कीजिए, सन्ध्या-वन्दन कीजिए और पवित्र होकर यज्ञशालामें बैठिए, विधि-पूर्वक हवन कीजिए, ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिए—फिर आपको समय आने पर धर्मका फल मिलेगा। धर्म-बल जीव-बलकी प्रधानतासे है और भक्ति-बल जो है वह ईश्वरके बलकी प्रधानतासे है। भक्तिमें सब काम ईश्वर करता है। ईश्वर भक्तिकी योग्यता देता है, भक्तिके योग्य बनाता है। भक्ति माँ है। तत्-पदार्थकी प्रधानतासे भक्ति होती है और त्वम्-पदार्थकी प्रधानतासे धर्म होता है। कर्त्ता है प्रधान धर्ममें और भजनीय भगवान् हैं प्रधान भक्तिमें।

तो भक्तिमें जीवकी योग्यता नहीं देखी जाती। पतित-से-पतित, दीन-से-दीन, म्लेच्छ, चाण्डाल, पशु-पक्षी कोई भी हो और यज्ञोपवीत आदि संस्कारकी भी कोई आवश्यकता नहीं, ब्राह्मण-मनुष्यत्व तककी कोई आवश्यकता नहीं—चाहे किसी भी योनिमें हो और कर्म चाहे कुछ भी करता हो, बस उद्देश्य भगवान् हों, भगवान्के लिए कर्म हो। यह बात अच्छी तरह समझ लें—यह कर्म है किसके लिए, यह भाव है किसके लिए, यह सम्बन्ध है किसके साथ, यह प्यार है किससे? इसमें जिसकी भक्ति की जाती है वह क्या है—यह देखना होता है और धर्ममें कौन धर्म कर रहा है—यह देखा जाता है। ये दोनों वेदान्तके सत्य हैं,

वाच्यार्थ है। वाच्यार्थमें ही धर्म होता है और वाच्यार्थके लिए ही भक्ति होती है। करनेवालेकी प्रधानता होती है धर्ममें और जिसके लिए सब कुछ किया जाता है, उसकी प्रधानता होती है भक्तिमें। भक्तिमें फल भगवान् देता है, योग्य बना कर देता है, करा कर देता है, भाव जोड़कर देता है, सम्बन्ध जोड़कर देता है! भागवतमें यह बात आती है—

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्। (१०.१४.३२)

ब्रजवासी लोग योग्य नहीं थे, गाँवके गँवार थे, ग्वाले थे, गाय चराते थे, यज्ञोपवीत आदि संस्कार भी नहीं हुए थे। बस, इन्द्रकी पूजा-भर करते थे, क्योंकि वह वर्षा करता है—ज्ञान भी उनका इतना ही था। तो उनका यह भोलापन देखकर ईश्वरके मनमें आया कि चलो हम इनके दोस्त बन जायँ।

'यन्मितं परमानन्दं'—की व्याख्या श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने ऐसे की कि ईश्वर ललक गया कि ऐसे भोले-भाले लोगोंको तो अपना मित्र बनाना चाहिए। एक बात आपको बताता हूँ कि भोलेपनमें ही ईश्वरका अवतरण होता है।

आप लोगोंने बङ्गालके सी. आर. दास—चितरंजनदासका नाम सुना होगा—हमलोगोंके बचपनमें थे—बडे भारी वैरिष्टर थे, तार्किक थे और जिन्दगी-भर नास्तिक रहे। कभी उन्होंने ईश्वरको नहीं माना। ईश्वर नहीं, स्वर्ग नहीं, नरक नहीं, पाप नहीं, पुण्य नहीं—बस मौज-मजेमें सारी जिन्दगी उन्होंने बितायी। पर, मरनेके कुछ दिन पहले आस्तिक हो गये थे और उसी कालमें उन्होंने बङ्गलामें एक कविता लिखी, जिसका हिन्दी अनुवाद मैं आपको सुनाता हूँ।

चतुराई चेतना सभी चूल्हे में जाय,
बस मेरा मन एक की शरणागति पाय।
आग लगे आचार-विचार के उपचय में,
उस प्रभु का विश्वास सदा दृढ़ रहे हृदय में॥

तो भगवान् चतुराईसे नहीं मिलते हैं, भगवान् सरलतासे मिलते हैं।

निर्मल मन-जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट-छल-छिद्र न भावा॥

ईश्वरकी रिझान भोलेपनकी ओर है! अरे, चालाक व्यक्ति होगा तो रिश्ता जोड़कर कुछ-न-कुछ माँगेगा जरूर। कहेगा—एक बेटा दे जाओ, धन दे जाओ, कुर्सी दिला दो, मकान दिला दो—माँगेगा अवश्य! अभी एक दिन मथुराका कोई कमीश्नर अपने यहाँ आया था। उससे यों ही हल्की-फुल्की हँसी-खेलकी बात होने लगी। मैंने उससे पूछा कि तुम लोगोंसे मिलते क्यों नहीं हो? हर समय बड़प्पनमें ही रहते हो। बोला—'महाराज, यदि मिल लेते हैं अथवा एक दिन किसीसे हँसकर बात कर लेते हैं तो दूसरे दिन, तीसरे दिन किसी-न-किसी चीजका—डीजलका, सीमेन्टका या और कोई परमिट लेनेके लिए हमारे पास आ जाता है। अब वह परमिट देनेका है या नहीं यह तो सोचनेका विषय होता है। इसलिए महाराज, चालाक लोगोंसे दोस्ती करनेमें डर लगता है, भोले-भाले लोग ही दोस्ती करने लायक होते हैं!'

तो, व्रजके भोले-भाले ग्वाल-बालोंसे दोस्ती भगवान्ने स्वयं आकर की। किसी ग्वाल-बालने प्रार्थना नहीं की, व्रत-तप-दान नहीं किया, होम नहीं किया, ध्यान-धारण नहीं की, पुकार नहीं। यशोदा मैया और नन्दबाबाको तो मालूम भी नहीं था कि हमारे घरमें भगवान् आने वाले हैं और भगवान् आ गये, यह है ईश्वर-धर्म भला!

तो, भक्ति जो है, भागवत-धर्म जो है यह जीवके द्वारा किया हुआ धर्म नहीं है, यह भगवान्के द्वारा किया हुआ धर्म है। प्रश्न उठा—वह क्यों दूसरोंके प्रति अपना धर्म प्रकट करता है? यों प्रकट करता है कि अनुग्रह ही उसकी मूर्ति है। कृपा, कृपा, कृपा। भक्तके ऊपर कृपा ही

करता रहता है। और, यह वेदान्तियोंका जो ज्ञान है न, यह न जीव-धर्म है और न ईश्वर-धर्म है, यह तो वस्तु-स्वभाव है। उसमें न पौरुष है और न कृपा है, वह तो ज्यों-का-त्यों है। ज्ञानसे परदा फटता है और मिल जाता है!

तो, वस्तुकी प्रधानतासे ब्रह्मज्ञान है और तत्-पदार्थकी प्रधानतासे भक्ति है और त्वं-पदार्थकी प्रधानतासे धर्म है। इसलिए कैसे भी अपनेको भगवान्‌के साथ जोड़ो। बोले—'हम तो तुमको मारेंगे'—हमने देखा कि एक नन्हा-सा बच्चा घूँसा तानकर अपने बापकी ओर दौड़ा और बोला कि हम तुमको मारेंगे। बाप उसको देखता रहा और मुस्कुराता रहा और जब बच्चा पास आ गया तब दोनों हाथसे पकड़ कर उसको अपनी गोदमें बैठा लिया।

तो बच्चा तो गया था घूँसा मारने और बापने उसको गोदमें बैठाकर प्यार किया और बोला कि बेटा, अपने पिताके साथ ऐसा बर्ताव नहीं किया जाता। तुम तो हमारे प्यारे हो, हमारे दिलके टुकड़े हो। यही बात भगवान्‌की है भला! अब अज्ञानी लोग तो क्या-क्या अपराध करते रहते हैं, यदि ज्ञानी पुरुष उनके अपराधको मानने लगें तो उनका सारा जीवन अपराधमय हो जावेगा। भगवान् किसीका अपराध देखते ही नहीं है, तुम कैसे भी भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ो!

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा।
स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात् कथञ्चिन्नेक्षतेपृथक्॥

भागवत ७.१.२५

इसलिए आप भले ही भगवान्‌के साथ दुश्मनी कर लो।

अच्छा, एक बात और है, आपलोग करना तो मत, पर मैं आपको बता देता हूँ—यदि दुश्मनी किये बिना आपका मन न मानता हो तो किसी सद्य जीवन्मुक्त महात्मासे दुश्मनी कर लीजिए—आपकी

भड़ाँस तो निकल जायेगी—माने आपकी दुश्मनी करनेकी जो उमंग है वह पूरी हो जायेगी और महात्मा आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचायेगा, वह आपको शाप नहीं देगा, बल्कि आशीर्वाद देगा कि इसका भला हो! मैंने पढ़ी थी एक कथा—एक महात्मा नावपर यात्रा कर रहे थे और सिर उनका बिल्कुल मुण्डी था—बिलकुल मुँडा हुआ था! नाव पर कुछ गुण्डे भी बैठे थे! बोले—आ हा-हा-कितना चिकना सिर है, इसपर थोड़ी बालू डालकर देखें। तो अब कोई सिर पर बालू डाले, कोई पानी डाले और कोई ठोंके हाथसे—क्या बढ़िया खोपड़ी है, चिकनी-चिकनी। आकाशवाणी हुई कि महात्माजी यदि आप आज्ञा करो तो यह नाव उलट दें और ये सब गुण्डे डूब जाँय। तो महात्माने कहा कि हे प्रभु, आप नाव उलटना चाहते हो तो क्यों नहीं आप इनकी बुद्धि उलट देते हैं? इनको सद्‌बुद्धि प्राप्त हो जाय, ऐसा कर दो। इसलिए बाबा दुश्मनी भी करनी हो तो महात्मासे करो। यह बात भारवीने लिखी है महात्माके साथ वैर-विरोधका सम्बन्ध भी अच्छा है; क्योंकि उससे कुछ नुकसान पहुँचनेका डर नहीं है!

तो, भगवान्‌से वैर करनेका अर्थ क्या है? भगवान्‌से वैर करोगे तो पूरी ताकतसे करोगे कि थोड़ी ताकतसे करोगे? दुनियाके साथ सम्बन्ध टूट जायेगा भगवान्‌के साथ वैर जोड़नेमें और अगर दुश्मनी हो जायेगी तो भगवान् याद बहुत आयेंगे। निर्वैर-भावसे भजन करो, अच्छे-भावसे भजन करो तब तो कहना ही क्या? संस्कृतमें इसका नाम 'कैमुतिक न्याय' है—यदि तुम सनकादिकी तरह शान्त-भावसे करो, यदि तुम हनुमानादिकी तरह दास्य-भावसे करो, यदि तुम उद्धव आदिके समान सख्य-भावसे करो, यदि तुम यशोदानन्दके समान वात्सल्य-भावसे करो यदि तुम गोपियोंके समान मधुर-भावसे करो तब तो कहना ही क्या? यह तो 'रीझैं तो भी अच्छा, खीझैं तो भी अच्छा' कोई रिश्ता तो हो, कोई रिश्ता तो भगवान्‌से जोड़ो। 'निर्वैरेण भयेन

वा'—अथवा कंसके समान डर जाओ! 'स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात्'—चाहे भक्तिसे भगवान्‌में मन लगाओ चाहे काम-वश होकरके चुम्बन-आलिङ्गन आदिके लिए भगवान्‌में मन लगाओ!

एक बात कह ही देते हैं—यह जो सुख होता है-यह मानसिक होता है। यह सामने कोई मनुष्य चुम्बन-आलिङ्गन करे तब जो सुख होता है वह भी मनमें होता है और मनमें कोई चुम्बन-आलिङ्गन करे तब भी मनमें ही सुख होता है। और जब सुख हमेशा मनमें ही होता है, तब बाहरके सुखकी क्या जरूरत है? भीतर वालेसे ही सुखी हो लो न? अच्छा भाई, भीतर भी किससे करें—इसके लिए एक बात सुनाते हैं आपको! एकदिन गाँवमें बच्चे खेल रहे थे, खा भी रहे थे। खेलते-खेलते बच्चोंने कहा कि आवो मन-ही-मन सत्तू खायें। इसपर दूसरे बच्चोंने कहा कि आवो मन-ही-मन खाना है तो सत्तू क्यों खाते हो, लड्डू खाओ न! मन-ही-मन। क्या सत्तू खानेसे पैसा बच जायेगा और लड्डू खानेमें कुछ ज्यादा लग जायेगा? ऐसे ही जब सारा सुख हमको हमारे मनसे ही मिलता है—मानसिक-चुम्बनसे, मानसिक-आलिङ्गनसे, अपने प्रियके मानसिक-चिन्तनसे ही जब हमारा मन सुखी होता है, तब तुम संसारी मनुष्यको प्रिय बनाकर और उसका चुम्बन-आलिङ्गन करके क्यों सुखी होना चाहते हो? भगवान्‌से सुखी होओ न!

'स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात्'।

भगवतकी टीकामें मैंने इसका अर्थ लिखवाया है—बहुत लड़-भिड़कर। आपलोग देखना। **'कथञ्चिन्नेक्षते पृथक्'**—इसका ऐसा अर्थ टीकाकारोंने लिखा है कि ऐसी भक्ति करो, ऐसा काम जोड़ो कि किसी भी प्रकारसे हम भगवान्‌के सिवाय और किसीको न देखें—यहाँ तक पहुँच जाओ। हम लड़ गये इस बात पर कि नहीं इसका यह अर्थ नहीं है। इसका यह अर्थ है—**स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात मत्तः** और **भगवान् कथञ्चित् पृथक्**

ईक्षते—कैसे भी जाओ भगवान्‌के पास वे तुमको अलग नहीं देखेंगे। तुम उनसे एक हो जाओ—हम तुम एक **कथञ्चिन्नेक्षते पृथक्** भगवान् तुमको अलग नहीं देखेंगे। बोलो—हम माँ तुम बेटे। कि हाँ, हम बेटे तुम्हारे। हम मित्र तुम दुश्मन। हाँ, हम दुश्मन। कोई बात नहीं। हर हालतमें भगवान् उस व्यक्तिको आत्म-स्वरूप ही देखते हैं; किसी हालतमें अपनेसे अलग देखते-ही नहीं हैं। '**कथञ्चिन्नेक्षते पृथक्**'। बेटा यदि माँकी नाकमें अँगुली डाल दे या उसका बाल पकड़ कर खींच ले या उसकी आँखमें चोट लगा दे या दाँतसे उसकी अँगुली काट ले, तो क्या वह उसका बुरा मानती है? बच्चे सब कुछ करते हैं—बच्चेको खिलाते रहो तो कभी-कभी ऐसा मूतते हैं कि मुँहमें ही पड़ जाता है माँके। लेटकर जब मातायें खिलाती हैं बच्चोंको तब ऐसा अक्सर हो जाता है। पर आप जानते हैं न—

पूत का मूत प्रयाग का पानी।

पूतका मूत जो है वह तो प्रयागका गंगाजल है ऐसा मानते हैं। और दूध पीते-पीते बच्चे कभी-कभी अपने सिरसे ऐसा धक्का मारते हैं कि जैसे बछड़ा गायको हुब्बा मार कर दूध निकालना चाहता है—ऐसे बच्चे दूध निकालते हैं। लेकिन, क्या माँ बच्चेको पराया समझकर इसके लिए मारती है? भागवतका कहना है कि नहीं, नहीं मारती है।

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः॥

१०.१४.१२

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवान् जब बालक माँके गर्भमें रहता है तब अपने पाँव पटकता है और माँको इससे बड़ी पीड़ा होती है, पर क्या इसको अपराध मानती है बच्चेका? नाराज होती है बच्चे पर? प्रभु, आप बताओ! हम बोलें कि ईश्वर है या हम बोलें कि ईश्वर नहीं है, चाहे जो कुछ हम तुम्हारे लिए कहें, क्या हम तुम्हारे गर्भसे बाहर हैं? क्या आपकी कोखसे बाहर कुछ है?

बाबा, आप ध्यान देते हैं कि नहीं देते हैं—आप भगवान्‌की साँससे साँस लेते हैं—यह वायु भगवान्‌की साँस है। आप भगवान्‌की आँख-सूर्य-चन्द्रमाकी रोशनीमें देखते हैं, आप उसकी गोदमें बैठे हुए हैं। आप कुछ भी करें, भगवान् अपराध मानते ही नहीं! अरे, आप कैसे भी उसके साथ रिश्ता जोड़ो तो सही! **'कथञ्चिन्नेते पृथक्'** आप देखेंगे कि किसी भी अवस्थामें ईश्वर आपको अपनेसे पृथक् नहीं देखा, तुमको पराया नहीं मानता, तुमको दुश्मन नहीं मानता। ईश्वर तो तुम्हारा ही स्वरूप है!

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात्।

भागवत ७.१.२६

जब किसीसे दुश्मनी हो जाती है तब बार-बार उसीकी याद आती है, इंसान उसीमें तन्मय हो जाता है। दुश्मनीमें तन्मयता अधिक है, प्रेममें उतनी तन्मयता नहीं होती। आप देखो, आपने अपनी तिजोरीमें लाख रुपया लाकर रखा और आप उसको भूल जायेंगे। पर, यदि कोई आपसे ठग कर पाँच रुपया भी ले जायेगा या कोई आपकी जंजीर छीन लेगा या पर्स उठाकर ले जायेगा—आजकल ऐसी घटनाएँ हमको काफी सुननेको मिलती हैं—तब उसकी बहुत याद आती है। कैसे आती है याद? कि दुश्मनीसे? तो आप यह मत समझना कि जब उसके मनमें भाव दुश्मनीका है तब भगवान् उसका भला कैसे करेगा? बोले—भगवान् भाव थोड़े-ही देखता है। भगवान् उसकी नजरसे नहीं देखता है, अपनी नजरसे देखता है!

इसमें एक बात और देखो आप—दुश्मनीसे ही सही, स्मरण किसका हो रहा है? तुम्हारी स्मरणा-वृत्तिका विषय कौन है?

'तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्'

बड़े-बड़े दुश्मन भी-भले ही वैर हो उनके हृदयमें—वे जिसको यादकर रहे हैं वह कौन है? कौन है उनकी स्मृतिमें? वैर बड़ा कि

भगवान् बड़े? एक बारकी बात है—काशीमें शास्त्रार्थ हो रहा था, बड़े-बड़े पण्डित आये हुए थे। गोपीनाथ कविराज थे, राजेश्वर शास्त्री द्राविड थे, पण्डित कमलाकान्त मिश्र थे, नील मेधाचार्य थे—ऐसे कई पण्डित विद्यमान थे और वेदान्तका शास्त्रार्थ था। नील मेधाचार्यने संस्कृतमें कहा कि जीव-ईश्वर यदि एक हो जायेंगे तो जीवके जितने दोष हैं, दुर्गुण हैं, विकार हैं वे सब ईश्वरको प्राप्त हो जायेंगे। इस पर वेदान्ताचार्य श्रीकमलाकान्त मिश्रने कहा कि पहले मिल तो जाने दीजिए। गन्दा नाला गंगाजीमें जब मिलता है तब गंगाजी गन्दा नाला हो जाती हैं या गन्दानाला गंगाजी हो जाता है? अरे भाई, ईश्वरमें भी तो कुछ गुण हैं, कुछ धर्म हैं, कुछ स्वरूप है, कुछ स्वभाव है। जब दोनों एकमें मिलेंगे, एक होंगे तब जबरदस्त कौन है, बलवान कौन है—ईश्वर या जीव? तब ईश्वर-ही-ईश्वर रहेगा बाबू, जीव रहेगा ही नहीं। तो, पहले ईश्वरसे मिलकर देखें तो। मिलते ही तुम्हारे दुष्कर्म, तुम्हारे दुर्भाव, तुम्हारे दुर्विचार सब-के-सब लुप्त हो जायेंगे। इसलिए—

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया॥
कामाद् द्वेवाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः॥

भागवत ७.१.२८-२९

इसलिए, यह नहीं देखना है कि हम कैसे मनको ले जाते हैं उसमें! यह देखना है कि मन जा किसमें रहा है? जब ईश्वरमें मन जा रहा है तो कल्याण होनेमें कोई शङ्का नहीं है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(५)

सम्बन्ध जोड़ो भगवान्‌से! संसारके सम्बन्ध अंतमें दुःखदायी हो जाते हैं। संसारमें जिससे भी प्रेम करोगे वह तुम्हें पराधीन बनावेगा या तुम्हें रुलावेगा—

'प्रियं रोत्स्यति'। (बृहदा. १.४.८)

प्रेममें यह नहीं देखा जाता कि प्रेम करनेवाला कौन है, यह भी नहीं देखा जाता कि रिश्ता क्या जोड़ रहा है, मूल बात यह देखनी चाहिए कि जिससे हम प्रेम कर रहे हैं वह व्यक्ति हीन तो नहीं है। हीनसे प्रेम होनेसे हानिकारक हो जाता है। बिना विश्वासका प्रेम नहीं होता। विश्वास ही प्रेमका बाप है। जिससे प्रेम होगा उसपर विश्वास होगा और उसकी सेवा होगी।

रामायणमें आप देखेंगे कि कैकेयीने मन्थरा पर विश्वास किया और मन्थरा बहुत हीन-वृत्तिकी थी, तो कैकेयीको उसका फल भोगना पड़ा—न बेटा राजा हुआ, न उसका सुहाग रहा। इसलिए हीन-व्यक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिए! दशरथने विश्वास किया कैकेयी पर, स्वयं मर गये! और, और की छोड़ो, स्वयं भगवान् रामने समुद्र पर विश्वास किया कि समुद्र उनको रास्ता दे देगा। हीन-शरणागतिका उदाहरण है यह। नीचकी शरणा ली और नतीजा जो हुआ सो सब जानते हैं। बाजने एक अच्छे राजाकी शरण ली और राजाने उसकी रक्षाके लिए अपने शरीरका मांस तक काट कर दे दिया, परन्तु शरणागतका परित्याग नहीं किया। विभीषणने रामकी शरण ली उनका काम बन गया। सुग्रीवने भगवान् रामकी शरण ली उनका भी काम बन गया। रामायण तो ग्रन्थ ही शरणागतिका है! तो, शरण हमेशा उत्तमकी ही लेनी चाहिए!

उत्तम–सर्वोत्तम सृष्टिमें कौन है–लाजवाब, निरुत्तर, निर्विशेष,–जिससे विशेष और कोई न हो! तो वह हैं एकमात्र भगवान्। जब भगवान्की शरण ली जाती है, भगवान् पर विश्वास किया जाता है तब वह शरणागति निश्चित रूपसे सफल होती है, उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती है! आप यह मत देखिये कि मैं बहुत बड़ा हूँ और भगवान्की भक्ति करता हूँ और दृढ़ निश्चयी हूँ। यह भी मत देखिए कि हम भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ रहे हैं। यह देखिए कि सम्बन्ध भगवान्के साथ जुड़ रहा है। हम चाहे जैसे भी हों–छोटे हों, बड़े हों–भगवान् भगवान् ही हैं, वे हमको अपने अनुरूप बना लेंगे!

तो, भक्ति-शास्त्रकी, भक्ति-सिद्धान्तकी यही विशेषता है कि उसमें करनेवालेकी महिमा नहीं है, जिसकी भक्ति की जाती है उसकी महिमा है। अब कोई हँसी उड़ा दे और कह दे कि यह तो अंध-विश्वास है। तो कैसे अभिमानी, अज्ञानी हो तुम कि अपनेको तो कर्त्ता देखते हो और विश्व-सृष्टिके कर्त्ताको नहीं देखते हो? तुम्हें त्वं-पद वाच्यार्थकी शक्ति पर विश्वास है और तत्-पद वाच्यार्थकी शक्ति पर विश्वास नहीं है? तत्-पद वाच्यार्थ तो हमेशा ही शक्तिशाली होता है और त्वं-पद वाच्यार्थ तो अल्प-शक्ति होता है। जीव अल्पज्ञ होता है और ईश्वर सर्वज्ञ होता है। और जब अल्प और सर्वका अपवाद करके देखते हैं तब तत्त्व एक निकलता है। इसलिए, शरणागति लेनी हो, प्रेम करना हो, भक्ति करनी हो तो भगवान्की करनी चाहिए।

अब यह हुआ कि कौन-सी भक्ति करें? तो, एक बात पर आप ध्यान दें कि एक आदमी भगवान्से दुश्मनी कर रहा है और एक आदमी भगवान्से प्रेम कर रहा है। तो, यहाँ द्वेषके विषय हुए भगवान् और प्रेमके विषय भी हुए भगवान्। अब, भगवान् तो एक ही हैं; तब फिर गड़बड़ होगी क्या? गड़बड़ तो नहीं होगी कुछ, पर

दोनोंके जीवनमें कुछ अन्तर जरूर होगा। अन्तर यह होगा कि जिसके हृदयमें द्वेष होगा वह तबतक जलता रहेगा जबतक द्वेष रहेगा और जिसके हृदयमें प्रेम होगा, उसके हृदयमें जबतक प्रेम रहेगा तबतक उसको रसका अनुभव होता रहेगा और अन्तमें चाहे कोई अपने हृदयमें द्वेष रखे, चाहे कोई प्रेम रक्खे, मिलेंगे उसको भगवान् ही! तो, फर्क जो है, वह जीवन-कालमें ही है। शिशुपाल करता है भगवान्से द्वेष तो हमेशा जलता रहता है, कुढ़ता रहता है, चिढ़ता रहता है, छटपटाता रहता है। लेकिन, अन्तमें भगवान्को प्राप्त कर लेता है। और एक भक्त जो भगवान्से प्रेम करता है वह जिन्दगी-भर भगवान्के साथ खेलता रहता है और उनका लाड़ लड़ाता रहता है। लेकिन, भगवान् यह नहीं देखते हैं कि इसने जीवनमें हमसे राग किया है कि द्वेष? राग करनेवालेका राग उनको सुख देता है, द्वेष करनेवालेका द्वेष उनको दुःख देता है। पर, भगवान् यह देखते हैं, कहते हैं कि आखिर इसने हमारे साथ सम्बन्ध जोड़ा है। भगवान्की महिमा ही यह है कि कोई कैसे भी उनके साथ सम्बन्ध जोड़े, वे उसको मिल जाते हैं!

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापरनुचिन्तया॥ ७.१.२८

देखो, एक कीड़ा होता है उसको दूसरा कीड़ा पकड़ करके कैद कर लेता है और उसके ऊपर माटी डाल देता है। अब वह उससे इतना डर जाता है कि कैद करनेवाले कीड़ेका ही चिन्तन करता रहता है और अन्तमें वही हो जाता है। एक कीड़े तककी यह गति होती है तो जो भगवान्का चिन्तन करेगा उसके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है? भगवान् पर चाहे क्रोध करो चाहे भगवान्से भय करो, अन्तमें भगवान्का सामीप्य प्राप्त होगा।

प्रश्न हुआ कि फिर भगवान्का अवतार क्यों हुआ? भगवान्

आये क्यों? एक बात है—देखो भगवान् सर्वज्ञ हैं, तुम्हारे दिलकी जानते हैं। जो-जो तुम्हारे दिलमें चुरता है—सब जानते हैं और उनके अन्दर तुम्हारे दिलकी बातको पूर्ण करनेकी शक्ति है। कोई जानकार तो होवे; परन्तु पूर्ण करनेकी शक्ति न हो तो जानकारी किस कामकी? पर, वे तुम्हारे दिलकी जानते भी हैं और पूरी करनेकी शक्ति भी उनके अन्दर है और कृपण भी नहीं है और किसीसे डरते भी नहीं हैं। दुनियाके लोग तो डरते हैं। पर, भगवान् डरते नहीं हैं कि हम दे देंगे तो हमारे पास कम हो जायेगा। तो भगवान् सर्वज्ञ हैं, भगवान् सर्वशक्तिमान हैं और भगवान् परम दयालु हैं। वे तुम्हारे मनकी पूरी किये बिना रह नहीं सकते। तो फिर शरण लेने योग्य तो एकमात्र प्रभु ही हैं! तो जब देखा उन्होंने कि संसारके प्राणी हमसे विमुख होकर दुःखी हो रहे हैं तो उन्होंने वेद भेजे, शास्त्र भेजे कि जाओ सबको हमारे सम्मुख करो और बड़े-बड़े सन्त भी भेजे। कहीं अपना संदेश देनेवाला भेज दिया—कहीं अपने इकलौते बेटेको भेज दिया, कहीं—बड़े-बड़े आत्म-रूप सन्त भेज दिये। पर, जब इतनेसे भी जीव भगवान्‌के सम्मुख नहीं हुआ तब वह करुणा-वरुणालय भगवान्—वरुणालय माने समुद्र—वे करुणाके समुद्र भगवान् स्वयं लोगोंका कल्याण करनेके लिए इस संसारमें कूद पड़े—ऐसा है ईश्वर। यदि ईश्वरमें दया नहीं है तो ईश्वर कोई कामका नहीं है। योग-दर्शनमें ईश्वरको गुरु लिखा है—**'स एष पूर्वेषांऽपि गुरु कालेनानवच्छेदात्'** योग-दर्शन पर भी दस-बीस टीका मिलती है। तो इसपर भाष्यकार कहते हैं कि प्रकृतिके अन्दर सत्त्व-रज-तम तीनों गुण रहते हैं। परन्तु; वे पुरुषकी उपाधि बनते हैं। लेकिन जो पुरुषोत्तम है—पुरुषा विशेष ईश्वर—उसको तमोगुण नहीं छूता है, रजोगुण नहीं छूता है, शुद्ध सत्त्व ही उसके साथ जुड़ता है। माने वह परम कारुणिक है, परम दयालु है उसका हृदय हमेशा पिघलता ही रहता है, अपने भक्तोंपर कृपा

करनेके लिए व्याकुल रहता है–'**भक्तानुग्रह कातरं**'।–तो वही करुणा ईश्वरको गुरु बनाकरके सृष्टिमें ले आती है। अपनी करुणासे, अपनी कृपासे ईश्वर आता है। संतके रूपमें आता है, शास्त्रके रूपमें आता है, गुरुके रूपमें आता है, अवतारके रूपमें आता है–स्वयं आता है लोगोंका कल्याण करनेके लिए–

'**नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप**'।

भागवत १०.२९.१४

भगवान्का प्राक्ट्य जो है वह प्राणियोंके कल्याणके लिए है।

जब आ गया भगवान्, तब उसके साथ क्या रिश्ता जोड़ें? कि अरे भाई, वह तुम्हारा कल्याण करनेके लिए आया है, कैसे भी उससे रिश्ता जोड़ो तो।

'**माया मनुज ईश्वरे वैरेण पूतपाप्मानः**'–जो उससे वैर करते हैं उनके पाप भी मिट जाते हैं। जब उसका कर्तृत्व, उसका भोक्तृत्व देखेंगे, उसकी सर्वज्ञता, उसकी सर्वशक्तिमत्ता पर जब दृष्टि जायेगी तब अपनेमें यह सब नहीं है यह अपने आप मालूम पड़ेगा। आपको एक गुर बताते हैं–जीव कहता है कि हे भगवान्! सब अच्छे-अच्छे गुण तुम्हारे अन्दर हैं–अचिन्त्य-कल्याण-गुणगण-निलय हो तुम, सारे सद्गुण तुम्हारे अन्दर हैं। पर, भगवान् क्या भक्तोंकी यह बात मान लेते हैं? नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि गुण तो मेरे अन्दर नहीं हैं, मैं तो निर्गुण हूँ भगतजी! पर, तुमने अपने प्रेमसे, अपनी श्रद्धासे हमको गुणवाला बना दिया है। भगवान् कहते हैं गुण तुम्हारा है; मेरा नहीं और भगत कहते हैं कि हे भगवान्, ये गुण तुम्हारे हैं मेरे नहीं। जो गुण अपना मानेगा वह, गुणका अभिमानी हो जायेगा। जीव गुण अपना माने तो जीव अभिमानी और ईश्वर गुण अपना माने तो ईश्वर अभिमानी। इसलिए इधर जीव कहता है कि हे ईश्वर, गुण हमारे नहीं तुम्हारे और उधर ईश्वर भी यही कहता है कि हे जीव, गुण हमारे नहीं

तुम्हारे। ऐसेमें दोनों हो गये निर्गुण और दोनों निर्गुण हो जानेसे दोनों हो गये एक। गुणको दोनों ही फेंक देते हैं, दोनों स्वीकार नहीं करते हैं।

तो, भगवान् आते हैं लोगोंका कल्याण करनेके लिए। जो उनका चिन्तन करता है—कैसे भी चिन्तन करे—कामसे जैसे कुब्जा, द्वेषसे जैसे शिशुपाल, भयसे जैसे कंस। भागवतमें लिखा है कि कंस ऐसा डरता था, ऐसा डरता था कि—

.....भुञ्जानः पर्यटन् महीम्।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत्॥ १०.२.२४

खाते समय भी जब मुँह चपर-चपर बोलता तो सोचता कि यह भगवान्की आवाज है; जब वह चलता तब अपनी ही परछाँयींको भगवान् समझ बैठता; लेटता तो उसको मालूम पड़ता कि सामने भगवान् खड़े हैं; पेड़का पत्ता खड़खड़ाता तो कहता कि कहीं यह भगवान् न हों। सोचें आप, जब भयसे इतनी तन्मयता हो जाती है तब जो भगवान्से प्रेम करें उनकी तन्मयता कैसी होगी? इसीसे तो कहते हैं कि भयसे, द्वेषसे, स्नेहसे, कामसे, भक्तिसे कैसे भी अपना मन भगवान्में लग जाये तो भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। उसमें यह नहीं देखा जाता कि मन लगानेवालेके अन्दर क्या है।

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाद्यैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्यां वयं विभो॥

भा. ७.१.३०

गोपियोंने कामका सम्बन्ध जोड़ा-बड़े प्यारे हैं; बड़े सुन्दर हैं, गोपीजनबल्लभ हैं। वह तो जब भगवान् बने तब भगवान बन कर ही मिलेंगे, कोई कामी बनकर थोड़े ही मिलेंगे? वे तो जैसे हैं वैसे ही मिलेंगे। और, कंस भयसे, शिशुपाल द्वेषसे, यदुवंशी सम्बन्धसे, पाण्डव स्नेहसे और नारदादि भक्तिसे जुड़े हैं।

हमलोग बेन नहीं है जिसके मन्थनसे निषाद और पृथुकी उत्पत्ति हुई। बेन तो ईश्वरको मानता ही नहीं था। ईश्वरको न मानना दूसरी बात है और ईश्वरको मानकर उसको गाली देना दूसरी बात है। गाली जो देगा वह तो ईश्वरको मानकर ही तो गाली देगा। माने अस्तित्त्व तो पहले ही मान रहा है। अब यह तो ईश्वरकी बात है कि वह गाली देने वालेके साथ कैसा व्यवहार करता है?

हमारे एक महात्मा थे, उनसे एक आदमी कुछ-कुछ माँगता रहता था, वे खुद किसीसे कुछ माँगते नहीं थे, तो उसको दें कैसे? वह कहता—आप माँगकर हमको दो। जैसे कि वृन्दावनमें चोर आते हैं और कहते हैं कि बाबा, यह कम्बल हमको दे दो। बोले—मुझे ठण्ड लग रही है तुमको कैसे दे दूँ? चोर कहते कि यह हमको दे दो, तुमको तो कल दिनमें कोई और दे जायेगा और हमको कोई देगा नहीं और ऐसा बोलकर सामने-सामने उठाकर ले जाते हैं। ऐसे ही उस आदमीने कहा—माँगकर दो! महात्माने कहा—'हम नहीं माँगेंगे'। इसपर उसने उनको मारनेके लिए चाकू चला दिया। भगवान्‌की ऐसी कृपा, उसके हाथसे चाकू गिर पड़ा और महात्माने उस व्यक्तिको दोनों हाथसे पकड़कर अपनी छातीसे लगा लिया और अपने भक्तोंसे बोले कि देखो भाई, इसको अगर कोई कुछ कहेगा या मारे-पिटेगा तो हम यह स्थान छोड़कर हमेशाके लिए यहाँसे चले जायेंगे और फिर कभी यहाँ नहीं आयेंगे। यह तो बड़ा प्यारा है और उसको अपने पास रख लिया। महात्माओंका स्वभाव ऐसा होता है।

हमारे पड़ौसमें एक महात्मा थे वृन्दावनमें, उनको सब काठियाबाबा बोलते थे। काठकी लंगोटी पहनते थे और उनके यहाँ नियम था कि जिस दिन जो भी चीज आवे उसी दिन खत्म कर दी जाय। दूसरे दिनके लिए कुछ नहीं रखें। सैकड़ों साधु उनके साथ रहते थे और उनके अनुयायी भी बहुत थे। एक दिन उनके रसोईयेके

मनमें ख्याल आया कि काठकी लँगोटीके अन्दर ये गिन्नी रखते हैं और इसलिए इसको हर समय कमरमें बाँधे रहते हैं। फिर एक दिन उसने उनको जहर दे दिया कि ये जब मर जायेंगे तब हम यह लँगोटी निकाल कर ले जायेंगे। उसने तो जहर दिया पर वे इतने सिद्ध महापुरुष कि जहर उनको पच गयी। उसको कुछ बोले नहीं, पचा लिया जहरको। फिर दो-चार महीनों के बाद संतोकी सेवा थी, उस दिन उसने दालमें नमक ज्यादा डाल दिया। तब बुलाया रसोईयाको और कहा उससे कि हे रसोईया महाराज, उस दिन तो तुमने हमको जहर दे दिया तो हमने पचा लिया। पर, संतोको तुम इतना अधिक नमक खिलाओगे तो यह कैसे पचेगा उनको? इसलिए अब तुम कृपा करो और जाओ यहाँसे जिस दिन जहर दिया उस दिन नहीं निकाला। जिस दिन नमक ज्यादा डाल दिया संतोंके भोजनमें; उस दिन निकाल दिया।

तो नारायण, भगवान्का क्या स्वभाव है कि उनको मरनेका तो डर नहीं है, ठगे जानेका डर नहीं है, दुःखी होनेका डर नहीं है। कोई भी, किसी तरहसे उनके पास आ जाये तो वे उसका कल्याण ही करते हैं– भगवान् कभी किसीका अमङ्गल नहीं करते हैं। जब साधु पुरुषका यह स्वभाव है–

साधु ते होय न कारज हानि।

साधु कभी किसीका काम नहीं बिगाड़ता है, किसीको नुकसान पहुँचानेका ख्याल साधुके मनमे नहीं आता है। तो जब साधुकी यह स्थिति है तब क्या ईश्वर कभी किसीको नुकसान पहुँचाना, हानि पहुँचाना चाहेगा? यह सम्भव ही नहीं है–इसलिए कहते हैं कि कैसे भी भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ लो।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।

भागवत ७.१.३१

उपाय करो, जप करो, तप करो, व्रत करो, पूजा करो, सत्सङ्ग करो-उपाय चाहे कोई भी हो; लेकिन मन लगना चाहिए भगवान्‌में।

अपने मनको सुला दो। कहाँ सुला दें? कि भगवान्‌में सुला दो। अरे ओ मेरे मन जा भगवान्‌की गोदमें जाकर सो जा और अब कभी वहाँसे उठना नहीं। और, इसके लिए जो उपाय करना पड़े,सब उपाय करना चाहिए। उपाय माने होता है-जो पहले किया जाय और फिर छोड़ दिया जाय। जैसे काँटेमें-से जाना हो तो आप उपाय क़ीजिए। क्या? कि जूता पहन कर जाइये और जब काँटेको पार कर लें तब जूता उतार दीजिये। मन्दिरमें जानेके लिए जूता आपकी मदद करता है। पर, मन्दिरमें प्रवेश करनेके पहले जूतेको छोड़ देना पड़ता है। तो उपाय वह होता है जो भगवान्‌के पास पहुँचनेके लिए पहले तो किया जाय, परन्तु पहुँच जानेके पश्चात् वह उपाय रहे कि न रहे इसकी कोई परवाह नहीं हो। 'उप' माने पास और 'आय' माने जिसको हम पाना चाहते हैं वह।

'उपादायाऽपि ये हेया उपायास्ते प्रकीर्तितः'

जिनको पहले स्वीकार करे और पीछे छोड़ दे उनका नाम होता है उपाय, उसका नाम होता है युक्ति। इसलिए भाई, सरल-से-सरल बात यह है कि अपने आपको भगवान्‌के साथ जोड़ो।

अब युधिष्ठिरके प्रश्नका उत्तर देते हैं नारदजी कि शिशुपाल और दन्तवक्त्र, ये दोनों तुम्हारी माताकी बहनके बेटे हैं। तुम्हारे मौसेरे भाई हैं और **'पार्षद प्रवरौ विष्णोः'** भगवान्‌के पार्षद हैं और ब्राह्मणके श्रापसे यह शिशुपाल शिशुपाल बना हुआ है। सच्चाई तो यह है कि ये जितने जीव हैं ये सब भगवान्‌के अंश ही होते हैं, ये कोई भगवान्‌के विरोधी थोड़े ही होते हैं? यह तो भगवान्‌का भजन करनेमें कुछ भूल-भाल हो जाती है, इसलिए देर लगती है। एक आदमी है जो कहता है कि हे भगवान् हम तुम्हारी माला फेरते हैं। हमारे घरमें तुम लाख

रुपया भेज देना, माने लाख रुपया पानेके लिए वह भगवान् का भजन करता है। लाख रुपया उसके लिए बड़ी चीज है और भगवान्का भजन छोटी चीज है। और एक दूसरा आदमी है जो कहता है कि हे भगवान्, हम आपसे और कुछ नहीं चाहते हैं। लेकिन, हम आपके नामका साढ़े तीन करोड़ जप करते हैं। इसकी कीमत पर आप मिलतो जाओ। इस पर भगवान् कहते हैं कि इसने हमारी कीमत बना दी। अपनी नन्हीं-सी जीभ, उससे करता है कुछ उच्चारण और माँगता है उसकी कीमत। एक सेठ थे बम्बईमें, हम प्रेमकुटीरमें रहते थे, तब उन्होंने मुझसे सचमुच पूछा कि स्वामी जी, हम कितना रुपया खर्च करें तो भगवान् मिल जायेंगे? तो भाई, भगवान् कोई रुपयोंके भूखे नहीं है; उन्होंने ही तो तुमको दिया है तुम उनको क्या दोगे? तो भगवान्की कोई कीमत नहीं होती। जो लोग किसी कीमत पर भगवान्को पाना चाहते हैं, उनमें भी अपने बलकी प्रधानता होती है। इसीसे आचार्य लोग कहते हैं। कि भगवान् ही उपाय हैं और भगवान् ही उपेय हैं। आप तो यही भगवान्से कहो कि हे प्रभु, हमारे पास तो कोई उपाय नहीं है, कोई युक्ति नहीं है, कोई शक्ति नहीं है। आप ही हमारे उपाय हो, आप ही हमारे बल हो, आप ही हमारी शक्ति हो, आप स्वयं हमको मिलो।

हाँ, तो ये जीव सब-के-सब हैं तो भगवान्के। लेकिन, गड़बड़ क्या हो गयी? वैकुण्ठमें भी कभी-कभी गड़बड़ हो जाती है। एक दिन भगवान्के मनमें आया कि हम दिन भर लेटे रहते हैं, शेषजीकी छत्र-छाया रहती है, लक्ष्मीजी पाँव दबाती रहती हैं, कौस्तुभमणि गलेमें रहती है और चारों और दूधका समुद्र है जो बिना किसी नलके इसमें कोई नल-वल नहीं है—सब बीजोंमें वहीं से दूध पहुँचाता रहता है। यह आममें मिठास, अंगूरमें मिठास सब उसी क्षीर-सागरसे आती है और गायमें, बकरीमें जो दूध आता है वह भी वहींसे आता है। हाँ, तो

भगवान्‌के मनमें आया कि कहीं बाहर जाय, व्यायाम-शालामें जाकर कुछ थोड़ी कसरत-वसरत करें, जरा जोर आजमाएँ और जब भगवान्‌के मनमें बात आयी तब वह पूरी होनी चाहिए। भगवान्‌के पार्षद जय-विजय वहीं खड़े थे। जय-विजयको पता लगा उन्होंने सोचा कि हमारे स्वामीके मनमें यह इच्छा हुई है और वे सत्य-संकल्प हैं, उनकी इच्छाको पूरी करने वाला दुनियामें कोई है नहीं, सो हम ही हमारे स्वामीकी यह सेवा करेंगे। भगवान् स्वयं इसके लिए कोई योग करेंगे।

योग तो बना-बनाया था। एक बार पहले क्या हुआ था कि लक्ष्मीजी घूमनेके लिए गयी वैकुण्ठसे बाहर और जब लौटकर अन्दर आने लगीं तब द्वारपाल जय-विजयने उन्हें रोक दिया। अन्दर नहीं घुसने दिया, कह दिया कि इस समय हमारे स्वामी विश्राम कर रहे हैं आप अन्दर नहीं जा सकतीं। खड़ी रहीं लक्ष्मी जी क्या करतीं? फिर जब विष्णु भगवान्‌से मिलीं तब उन्होंने सारी कथा कही। उनसे भगवान्‌ने कहा—चुप, चुप, चुप कोई सुनेगा तो बोलेगा भगवान् कितने स्त्रैण हैं, पत्नीके कहनेसे वैकुण्ठके मालिक अपने सेवकको वैकुण्ठ से निकाल देते हैं—इस तरह हमारी और वैकुण्ठकी बड़ी बदनामी होगी। लक्ष्मीजीने कहा—'मैं ऐसे मानने वाली नहीं हूँ, आपने इनको बहुत सिर चढ़ा रखा है, इनको निकालना ही पड़ेगा।' भगवान्‌ने समझाया—'लक्ष्मी, इस समय तुम शान्त हो जाओ, इनको हम अवश्य निकालेंगे, पर किसी और बहानेसे। जब ये किसी महात्मा या साधु-सन्तका अपराध करेंगे, तब निकालेंगे। क्योंकि संत-महात्मा हमसे बड़े होते हैं और उनके लिए जब हम इनको निकालेंगे तब न हमारी बदनामी होगी और न वैकुण्ठकी बदनामी होगी।' लक्ष्मीजी मान गयीं।

बात ताजा ही थी कि आ गये सनकादि और जय-विजयने गदा

बीचमें लगाकर रोक दिया उनको, अन्दर जाने नहीं दिया। पहले दरवाजे पर किवाड़ी नहीं लगाते थे घरोंमें, पहरेदार तलवार,गदा लेकर खड़े रहते थे। सो वैकुण्ठमें तो किसीका डर ही नहीं कोई चोर नहीं वहाँ दरवाजा क्यों? तो जब सनकादि घुसने लगे अन्दर तब वहाँ खड़े सेवकोंने गदा डाल दी बीचमें कि नहीं जाने देंगे। इससे उनको आ गया क्रोध। क्रोधभी भगवान्की इच्छासे ही आया। और उन्होंने दे दिया जय-विजयको श्राप। अब, लक्ष्मीजी नाराज थीं ही उनके ऊपर और भगवान्जी बहाना ढूँढ ही रहे थे और उनकी इच्छा लड़नेकी थी ही। साथमें यह बात भी थी कि भगवान् संत-महात्माओंका कितना सम्मान करते हैं, उनको कितना मानते हैं, दुनिया यह भी देख ले और लोगोंके कल्याणके लिए भगवान्का संसारमें आना आवश्यक भी है, सब बात एक साथ हो गयी।इसके साथ भगवान्को यह भी दिखाना है कि भगवान् अपने भक्तका कितना पक्षपात करते हैं और यह भी दिखाना है कि वैकुण्ठसे निकाले हुए जो भक्त होते हैं उनके पास भी कितना वैभव, कितना ऐश्वर्य, कितना बल, कितनी शक्ति होती है तो जो वैकुण्ठमें रहते हैं उनके पास क्या नहीं होता होगा?

इस तरह भगवान्ने सनत्कुमारोंको निमित्त बना कर वैकुण्ठसे जय-विजयको निकालनेकी लक्ष्मीकी इच्छा और अपनी लड़नेकी इच्छा पूरी करनेके लिए जय-विजयको मर्त्यलोकमें भेजनेका योग कर दिया। इसके आगेकी कथा अब आपको कल सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(६)

संस्कृतमें एक शब्द है 'विकुण्ठा'। विकुण्ठा माने कुण्ठा-रहित ऐसी तीक्ष्ण, एकाग्र बुद्धि जिसे कहीं भी प्रवेश करनेमें कुण्ठित न होना पड़े।

'दृश्यते त्वग्रया बुद्धया'। भगवान् ऐसी ही विकुण्ठा-बुद्धिमें प्रकट होते हैं और उनका नाम होता है-'वैकुण्ठ'। भगवान्के धामका नाम भी है वैकुण्ठ। धाम और धामी एक ही होते हैं!

तो भगवान्के पास पहुँचनेके लिए जो मार्ग है उसके दो प्रहरी होते हैं—जय और विजय। एक तो इन्द्रियों पर जय हो और दूसरे मनपर विजय हो। जिसके मन और इन्द्रियों पर विजय नहीं है वह कुण्ठा-रहित बुद्धिके द्वारा भी प्रभुको प्राप्त नहीं कर सकता। 'जय' माने इन्द्रियोंको वशमें करना और 'विजय'माने मनपर पूरी तरहसे विजय प्राप्त करना। जय और विजय ये दोनों जब हमारे अनुकूल हो जाते हैं तब हमारा प्रवेश भगवान्के धाममें हो पाता है।

सनत्कुमार आदि वैकुण्ठके बिलकुल पास ही 'सत्यलोक'में रहते थे। पर, वैकुण्ठके इतने पास रहने पर भी ये लोग कभी भगवान्का दर्शन करनेके लिए नहीं जाते थे! महात्माओंको भगवान्का दर्शन करनेके लिए कहीं जानेकी या आँख खोलकर बाहर देखनेकी या कुछ और करनेकी आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि 'नारायण' माने होता ही

यह है कि जो नरके हृदयमें रहे—**'नरस्य इदं नारं हृदयं तदेव अयनं यस्य'**। तो नारायण तो दिन-रात महात्माके हृदयमें रहते ही हैं। तो, इनके मनमें कभी इच्छा ही नहीं होती थी कि कहीं जाकर भगवान्‌का दर्शन करें। ये तो यही जानते-मानते कि भगवान् अपने हृदयमें हैं, अन्तर्यामी हैं, अपना आत्मा ही हैं, उनके लिए कहीं जानेकी क्या जरूरत?

अब भगवान्‌ने देखा कि यदि जय-विजयकी शर्त बनी रहेगी कि बिना इनकी अनुकूलताके भगवान्‌का दर्शन नहीं होता है तो भले कुछ ऋषि-मुनियोंको तो मेरा दर्शन सुलभ हो जाये, परन्तु और लोग जिन्होंने अपनी इन्द्रियों पर जय और मनपर विजय नहीं प्राप्त की है वे बेचारे तो मेरे दर्शनसे वंचित ही रह जायेंगे और मुझे तो दुर्गम नहीं सुगम होना चाहिए, जिससे लोग जान सकें, देख सकें कि भगवान् कैसे होते हैं, भगवान् क्या होते हैं। इसलिए भगवान्‌ने सनकादिके हृदयमें इच्छा उत्पन्न की।

आप कभी भगवान्‌को देखना चाहेंगे? आपके मनमें इच्छाएँ उदय होती हैं? 'इच्छा' माने ख्वाहिश, तमन्ना, आकांक्षा, वासना। तो असलमें आप हैं देखनेवाले और वासनाएँ आपको दीखती हैं। परन्तु, आपके और वासनाके बीचमें एक ऐसी वस्तु रहती है जो वासनाओंको जीवन देती है, प्राण देती है। वह कोई और नहीं है, वह आप ही मायाकी उपाधिसे अन्तर्यामी बनकर, ईश्वर बनकर बैठे हैं। आपके और वासनाके बीचमें परमेश्वरका, अन्तर्यामीका, नारायणका निवास है। इसीसे महात्मा लोग कहीं आते-जाते नहीं हैं—

जब जरा गर्दन झुकायी देख ली तस्वीरे यार।

जब उनकी इच्छा हो, भगवान्‌का दर्शन कर लेते हैं। लेकिन, भगवान्‌के मनमें आया कि ये हमको बाहर देखनेके लिए आवें। सो पहली चोट नारायणने ही मारी कि सनकादिकोंका ध्यान बन्द कर

दिया। तब, सनकादिकोंने सोचा चलो वैकुण्ठमें ही भगवान्‌का दर्शन कर आवें और चल पड़े। सनकादिकोंका यह स्वरूप है कि वे सर्वदा बालककी तरह ही रहते हैं।

अब कोई महात्मा अवधूतकी तरह रहते हैं, कोई समाधिस्थकी तरह और कोई बालककी तरह। ये चारों बालककी तरह रहते हैं। खेलते-कूदते पहुँच गये वैकुण्ठमें। भगवान्‌की ऐसी लीला कि जय-विजय भगवान्‌के नित्य-पार्षद,पर वे भी इनको पहचान नहीं सके। यदि सनकादिके मनमें भगवान्‌ने इच्छा डाली तो जय-विजयके अन्दर भगवान्‌ने अज्ञान डाल दिया।

नारायण, सबसे बड़ा आक्षेप तो भगवान् पर ही जाता है कि इतने बड़े महात्माओंके हृदयमें बाहर भगवान्‌के दर्शनकी इच्छा क्यों उत्पन्न की और जय-विजय मूर्ख क्यों बन गये, उन लोगोंने इन्हें पहचाना क्यों नहीं? इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सब भगवान्‌की लीला है!

जब जय-विजयने सनकादिकोंको यह कहकर रोका कि तुम नंग-धड़ंग बच्चे, तुम लोग भगवान्‌के महलमें प्रवेश नहीं कर सकते, तब सनकादिकोंको क्रोध आगया। यह भी एक आश्चर्य ही है।

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम्।

भा. ७.१.३४

न वहाँ स्थूल शरीर होता है, न वहाँ स्थूल इन्द्रियाँ होती हैं, न वहाँ स्थूल प्राण होते हैं। वहाँ वैकुण्ठमें भी यदि क्रोध आता है तो हद हो गयी। क्रोधकी निवृत्ति फिर कहाँ होगी? वैकुण्ठमें काम नहीं होता, क्रोध नहीं होता, लोभ नहीं होता। वहाँ तो अपने प्रभुके सिवाय दूसरेका स्फुरण ही नहीं होता। फिर भी सनकादिकोंके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो गया। 'क्रोध' माने जो सुखको रोक दे। **'कं रुन्द्धि इति क्रोधः'**। 'कं' माने सुख और 'रोध' माने रोकना। माने हमारे हृदयमें जो आनन्दका झरना बहता है, उसको यह रोक देता है। गीतामें कहा

है कि क्रोध नरकका द्वार है। तो यह बिना भगवत्-प्रेरणाके सम्भव नहीं है, इसमें कुछ-न-कुछ भगवान्‌का हाथ अवश्य है। नहीं तो भगवान्‌के दरबारमें जहाँ सब दिव्य-ही-दिव्य, लौकिक-सृष्टि ही जहाँ नहीं, वहाँ मूर्खताके कारण भेद-बुद्धि आगयी जय-विजयमें और क्रोध आगया सनकादिकोंके हृदयमें।

इधर भगवान्‌की इच्छा हुई कि हम थोड़ा खेल-मेल करें, थोड़ा बाहर निकलें। और बाहर निकलनेके लिए निमित्त लक्ष्मीजीको बनाना ठीक नहीं, महात्माओंको बनाना ठीक और उन्होंने क्रोधमें आकर श्राप दे दिया। असलमें शाप देनेका अधिकार भी सबको नहीं होता है। जो अनुग्रह कर सकता है, वही निग्रह करता है। जिसको जेलसे छोड़नेका हक नहीं है, उसको जेलमें डालनेका भी हक नहीं है। जो नया जीवन दे नहीं सकता, वह फाँसीकी सजा भी नहीं दे सकता। व्यवस्था बिलकुल समान रूपसे होनी चाहिए। तो पहले जो महात्मा लोग शाप देते थे, उनमें निग्रहका सामर्थ्य भी होता था और साथ-ही-साथ अनुग्रहका भी सामर्थ्य होता था कि कृपा करके छोड़ सकें। तो, शाप देनेके पश्चात् सनकादिके मनमें आयी करुणा कि भगवान् तो क्षीर-सागरमें शेष-शैय्या पर हर समय तान दुपट्टा सोये रहते हैं और उनको संसारके प्राणियोंके सुख-दुःखका कुछ पता ही नहीं है। तो इनको भी ले चलो बाहर और दिखलाओ कि आपके राज्यकी क्या स्थिति हो रही है? जैसे कोई राजा हमेशा महलमें ही रहे, कभी बाहर नहीं निकले, अपनी प्रजाको नहीं सम्हाले तो यह उसके लिए कलंककी बात है, वैसे ही प्रभु हमेशा वैकुण्ठमें ही रहें, कभी संसारके जीवोंको न सम्हालें तो यह उनके लिए कलंक है। तो, मालिकको, अपने प्रभुको कलंकसे बचानेके लिए, वैकुण्ठसे बाहर निकालनेके लिए सनकादिने जय-विजयको शाप दे दिया-जाओ तुम दोनों राक्षस हो जाओ, सत्त्व-रज-तममें जाओ। और जब तुम लोग संकटमें पड़ोगे

तब भगवान् तुम्हारी रक्षा करनेके लिए स्वयं जायेंगे। भगवान्का बाना ही यह है कि जब तक भक्तपर कोई सङ्कट नहीं आता भगवान्की नींद टूटती ही नहीं है। अब जय-विजय बोले—'अच्छा बाबाजी, आपने हमको तो शाप दे दिया कि हम असुर हो जायँ और हमारा उद्धार करनेके लिए, आसुर-भावकी निवृत्ति करनेके लिए स्वयं भगवान् हमारे पास आवें और मार-काट करें, पर जरा यह भी तो बताइये कि आप क्या करेंगे? बोले कि हम सबका आनन्द लेंगे। कैसे आनन्द लेंगे? बोले कि हम चारों भाई मिलकर प्रह्लाद हो जायेंगे, विभीषण हो जायेंगे और भगवान्की और भक्तकी तू-तू मैं-मैं देखेंगे, जो दो-दो हाथ होते हैं-भगवान्की वह लीला देखेंगे!

अब आप भगवान्की करुणा देखें—भगवान्के सेवक यदि भगवान्से विमुख हो जाते हैं तब भी भगवान् उनको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने देते, उसकी सारी व्यवस्था स्वयं करते हैं। जय-विजय जब हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष होकर आये तब इनका बड़ा भारी वैभव। अब किसीने जीवनभर सेवा की और चार-पाँच दिन सेवा नहीं की तो इसीसे भगवान् उसकी सेवा भूल जायँ और कहें कि निकल जा, तो ऐसा नहीं। जो कृतज्ञ स्वामी होता है वह अपने सेवककी सेवाको कभी किसी अवस्थामें नहीं भूल सकता। अच्छा भाई, आसुर-भाव आ गया। तो **'हिरण्यकशिपु यस्य'** हिरण्यकशिपुकी सारी व्यवस्था स्वर्ण-प्रधान थी, यहाँ तक कि उसकी सेज भी सोनेकी बनी। और हिरण्याक्ष, जिसकी आँखके सामने सोना-ही-सोना दिखायी पड़े—'हिरण्येअक्षिणी यस्य'। तो हिरण्यकशिपु हुआ भोगी और हिरण्याक्ष हुआ अर्थ-दृष्टि-प्रधान। भगवान् जब भूल गये तब स्वार्थकी वृत्ति आ गयी। और यह भी बात है कि जब आदमी रास्ते पर चलता है तब उसके पाँव कहीं-न-कहीं फिसल जाते हैं। वह अपने स्वरूपको भूल जाता है, भगवान्के स्वरूपको भूल जाता है—असुर बोलते ही उसको हैं। **'असुसरमन्ते इति**

असुरः'—जो अपने देहभावमें मग्न होकर इन्द्रियोंको ही सबकुछ समझने लगते हैं, उनका नाम हो जाता है 'असुर'। तो कभी-कभी भक्त लोग भी महात्माके अपराधसे असुर हो जाते हैं—

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा।
जरई नगर अनाथ कर जैसा॥

तो जब जय-विजयसे संतका अपराध हुआ तो वे असुर-भावको प्राप्त हो गये इन्द्रियाराम हो गये। वे तो काममें, क्रोधमें रम गये। उनके सामने भगवान् नहीं रहे, दुश्मन आ गये। दृष्टिका फिर जाना ही तो असुरत्व है। लेकिन, भगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त नरकमें हो तो मैं नरकमें भी जाकर उसको निकाल कर लाता हूँ, उसकी रक्षा करता हूँ। तीन बार जन्म लिया जय-विजयने और भगवान्ने चार बार जन्म लिया। बराह होकर हिरण्याक्षको मारा, नृसिंह होकर हिरण्यकशिपुको मारा, राम होकर रावण-कुम्भकरणको, कृष्णके रूपमें आकर शिशुपाल-दन्तवक्त्रको मारा।

आप जानते हैं कि पृथिवी पानीमें डूब गयी थी। तो गन्ध-ग्राहक इन्द्रिय है नासिका और पृथिवी है गन्धवती और पृथिवीकी ही रक्षा करनी है, इसलिए ब्रह्माजीकी गन्धेन्द्रिय-नासिकाके द्वारा भगवान्का प्राकट्य हुआ बराहके रूपमें। आपने ध्यान दिया होगा—बराह अपना मुँह हमेशा धरती पर रखते हैं और पृथ्वीके गन्दे-से-गन्दे अंशको भी ग्रहण करते हैं-यह उसका पृथिवीसे प्रेम है। बराह-अवतार लेकर भगवान् ने यह प्रकट कर दिया कि हमारे प्रेमीका जो गन्दा-से-गन्दा रूप है वह भी हमारा भोग्य है और मैं उससे भी तृप्तिका अनुभव करता हूँ। मैं सपनेमें भी अपने प्रेमीको किसी भी अवस्थामें छोड़ता नहीं, छोड़ नहीं सकता। सपनेमें भी रामको विभीषण और सुग्रीवका दोष नहीं दीखता। सारी दुनिया कहे कि सुग्रीव दोषी, विभीषण दोषी। लेकिन, रामचन्द्रको उनके दोषका कभी स्वप्न भी नहीं आया। तो यह जो

प्रभुकी अकारण करुणा बरस रही है, कृपा बरस रही है, उसको दिखानेके लिए यह लीला होती है!

तो नारायण, अपने भक्तकी रक्षा करनेके लिए अब जब नृसिंह बननेका अवसर आया तो भगवान्‌ने देवताओंसे कहा कि हमारे माँ-बाप बन जाओ। पूछा—किस रूपमें आप आयेंगे, देवताके रूपमें या मनुष्यके रूपमें? बोले, कि हम नृसिंहके रूपमें आयेंगे। देवता बोले कि फिर सिंहसे पैदा हो जाओ। सिंहसे पूछा तो सिंहने भी मना कर दिया—आधा नर और आधा सिंह हम ऐसा 'दोगला' नहीं पैदा कर सकते—गाली और दे दी! अन्तमें मनुष्यसे पूछा। मनुष्यने भी मना कर दिया। बोले—ना-बाबा-ना, हम सिंह पैदा नहीं करेंगे; कहीं पैदा होते ही तुम हमको खा जाओ तो! ढूँढने पर भी भगवान्‌को दुनियामें जन्म देनेके लिए माँ-बाप नहीं मिला। हारकर प्रह्लादकी रक्षाके लिए और हिरण्यकशिपुका उद्धार कर उसको फिरसे वैकुण्ठमें लानेके लिए भगवान् एक काठके खम्भेमें-से नृसिंहके रूपमें प्रकट हो गये।

लेकिन उन्होंने अपने भक्त हिरण्यकशिपुको नहीं छोड़ा। देखो, प्रह्लादका कष्ट तो यह था कि सारे असुरोंका उद्धार होय और हिरण्यकशिपुका कष्ट यह था कि वह अपने मालिकको ही भूल गया, अपने मालिकको ही नहीं पहचानता था। मालिकने कहा कि अच्छा बेटा, तुम हमको नहीं पहचानते हो तो क्या हुआ, हम तुमको पहचानते हैं और तुमको हम वहाँसे उठाकर फिर वैकुण्ठमें ले आवेंगे! इसलिए, यह भगवान्‌का नृसिंह-अवतार हुआ।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(७)

जय-विजय भगवान्‌के भक्त थे, पार्षद थे, उनके निकटवर्ती थे और भगवान्‌से अपने भेदका अनुभव करते थे—भगवान् स्वामी हैं और हम सेवक हैं। उनके जीवनमें भगवान्‌की प्रधानता थी, अपना 'मैं' बिलकुल छोटा था। जब उनको शाप हुआ और वे हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु हो गये तब उनमें कुछ परिवर्तन हो गया—उनके जीवनमें जो भगवान्‌की प्रधानता थी वह लुप्त हो गयी और अपना अहं प्रधान हो गया। इसका मतलब यह हुआ कि जीवनमें जबतक भगवान्‌की प्रधानता रहती है व्यक्ति जय-विजय—भक्त रहता है और जहाँ जीवनमें अहंकारकी प्रधानता-अहंभावकी प्रधानता आयी कि व्यक्ति असुर हो जाता है।

भागवतमें लिखा है कि हिरण्यकशिपुको वेदान्तका ज्ञान भूला नहीं था। हिरण्याक्षकी मृत्युके बाद वह अपने परिवारमें ऐसा उपदेश करता है कि कच्चे-बच्चे वेदान्तीको लगेगा कि शुद्ध-वेदान्तका उपदेश करता है—आत्मा असङ्ग है, अजर है, अमर है। इसमें न जन्म है, न जरा है, न मृत्यु है, न पिपासा है, यह बिलकुल अखण्ड है। आदि-आदि पर, इसमें गड़बड़ क्या हो गयी कि उसके 'अहं'की प्रधानता तो बढ़ गयी और पूर्णताका विवेक हुआ नहीं। पूर्णताका बोध होनेके पहले, अद्वितीयताका बोध होनेके पहले अपनेको अजर-अमर-असङ्ग बोलना, अपनेको ईश्वर बोलना-सब आसुरी-सम्पदाके अन्तर्गत है। ऐसा ज्ञान गलत है। आपलोगोंने गीतामें पढ़ा ही होगा, उसमें जहाँ आसुरी-सम्पत्तिका वर्णन है वहाँ यह लिखा है—

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥ गी. १६.१४
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥ गी. १६.१५

मैं ईश्वर हूँ, मैं महाभोक्ता हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं बलवान हूँ, मैं सुखी हूँ। 'मैं-मैं' तो है। परन्तु उस 'मैं'में पूर्णताका बोध नहीं है, परिच्छिन्न 'मैं'में ही ईश्वर भाव हो गया।

एक बार मैं गया था गंगा-किनारे-रामघाट। वहाँ हमारे एक बहुत पुराने मित्र रहते हैं, उन्होंने एक प्रश्न किया! पहले भी जब हमारे साथ रहा करते थे तब पूछा करते थे, तब हम दोनों संन्यासी नहीं थे, अब वे भी संन्यासी हैं। उन्होंने प्रश्न किया कि महाराज, किसीको यदि तत्-पदार्थका विवेक तो न हो और अपने 'अहं' को परिपूर्ण मान ले, तो उसके ज्ञानमें क्या दोष है?

मैंने उनसे कहा कि वह यदि अपनेको परिपूर्ण मानता है तो परिपूर्णका विवेक किया है कि नहीं कि परिपूर्ण होता क्या है? तो पहले परोक्ष-रूपसे पूर्णताका विवेक होना चाहिए और फिर अपरोक्ष-रूपसे आत्माका विवेक होना चाहिए। और, जो परोक्ष-रूपसे पूर्णताका विवेक तो करेगा नहीं और अपनेको पूर्ण कहेगा, तो अज्ञात-पूर्णको अपना आत्मा बताकर मूर्खता करेगा न? पूर्णताका ज्ञान जब हो जायेगा तब ही कोई अपनेको पूर्ण कहेगा! वे बहुत प्रसन्न हुए।

जब तुम एक अज्ञात-वस्तुको अपना 'मैं' मान रहे हो तो अज्ञानको और परिपुष्ट ही तो कर रहे हो। हिरण्यकशिपुने अपने-आपको ऐसा ही 'मैं' मान लिया था, जिसमें तत्-पदार्थकी पूर्णताका जरा-भी विवेक नहीं था। जिसके कारण उसके जीवनमें दोष आ गया और उसने परमात्माको छिपा दिया।

अब आप देखें—देखनेमें तो यही लगता है कि महात्माने शाप

दिया। पर असलमें महात्माने शाप नहीं दिया—महात्मा किसीका अनिष्ट नहीं करते।

'साधुते होई न कारज हानि'

बल्कि उसके अन्दर जो दोष था, उसको निकालनेकी महात्माने एक युक्ति कर दी और केवल युक्ति ही नहीं कर दी, जहाँ-जहाँ जय-विजय जायँ वहाँ-वहाँ सनत्कुमार भी जायँ उनका उद्धार करनेके लिए, उनको परमात्माकी प्राप्ति करानेके लिए। यह है महात्माकी महिमा, यह है महात्माकी करुणा। जीवके कल्याणके लिए आवश्यक होनेपर महात्मा दूसरा जन्म लेनेमें भी नहीं हिचकिचाते। इसीसे हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुके यहाँ सनत्कुमार प्रह्लाद बन कर आये। और वहाँ भी वे इसी प्रयास में लगे हैं कि जल्दी-से-जल्दी इनका कल्याण हो जाये!

अब प्रश्न उठा कि भगवान् अवतार क्यों लेते हैं? इसके दो भाव गीतामें बताये गये हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। ४.८

साधुओंकी रक्षाके लिए अवतार लेते हैं और जो दुष्कृत हैं उनको धो-पोंछकर उज्ज्वल बनानेके लिए भगवान् अवतार लेते हैं।

एक बार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे किसीने प्रश्न किया कि महाराज, हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण-कुम्भकरण जितने पाप करते थे, वे तो दो-दो थे और आज तो जितने लोग हैं उनमें अधिकांश हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण-कुम्भकरण, कंस जैसे हैं आज भगवान् अवतार क्यों नहीं लेते?

बाबाने कहा कि भाई, यह तो तुम ठीक कहते हो कि आज रावण-कंस तो बहुत हो गये हैं, पर दशरथ-कौसल्या, देवकी-वसुदेव कोई नहीं है। भगवान् केवल दुष्टोंकी दुष्टताका संहार करनेके लिए ही अवतार नहीं लेते हैं, भक्तोंका मनोरथ परिपूर्ण करनेके लिए अवतार लेते हैं। उनका मुख्य प्रयोजन तो यही होता है।

तो दो बात हुई—भक्तकी रक्षाके लिए भगवान् अवतार लेते हैं—एक और भक्तका मनोरथ पूर्ण करनके लिए अवतार लेते हैं-दो। देवकी कहती हैं जब तक हमारे बेटे नहीं बन कर आवोगे हमारा मनोरथ पूर्ण नहीं होगा, यशोदा कहती हैं कि जब तक हम गोदमें नहीं खिलावेंगे, अपना दूध नहीं पिलावेंगे तब तक हमारी आकांक्षा पूर्ण नहीं होगी। मैं जन्म-जन्म—अनन्तःकाल तक व्याकुल रहूँगी यदि तुम नन्हेसे बालक बनकर मेरी गोदमें नहीं आओगे, मेरा दूध नहीं पीओगे!

अब भगवान्ने सोचा—इसकी इच्छा तो मेरे लिए है, तो क्या मैं इसकी इच्छाको मिटा दूँ? मैं इसकी इच्छा पूरी करनेमें असमर्थ हूँ? इसकी इच्छा मैं क्यों नहीं पूरी करूँ? फिर बोले—नहीं-नहीं, जब इसकी इतनी इच्छा है और मैं उसको पूर्ण करनेमें समर्थ हूँ, तो मैं इसे अवश्य पूर्ण करूँगा। और, भगवान्ने इनकी इच्छा पूर्ण की!

अब जय-विजयके विषयमें सुन लीजिये। जब जय-विजय असुर हो गये तब उनका आसुर भाव ही छुड़ाया भगवान्ने, उनकी मृत्यु नहीं हुई, उन्होंने आसुर-भावका जो चोला पहन लिया था और उसके साथ इतना एक हो गये थे कि अपने-आपको तो भूल ही गये थे, भगवान्को भी भूल गये थे। तो भगवान्ने उनका वह चोला उतार भर दिया, उनको मारा नहीं।

यह जो लोग शरीरकी मृत्युको मृत्यु मानते हैं वे आध्यात्मिक जगत्से सर्वथा ही अपरिचित हैं। जिनका यह ख्याल है कि पहले हमारा जीवन नहीं था और बादमें भी हमारा जीवन नहीं होगा—यह मनुष्य शरीर हमें फिर नहीं मिलेगा, वे लोग मौतको बहुत भयङ्कर मानते हैं और उससे डरते हैं। और जिनको मालूम है कि जीवन पहले भी था और बादमें भी रहेगा—सुख-दुःखकी परम्परा चलती रहेगी, इसमें हमारा कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं है, वे चैनकी वंशी बजाते हैं। इसको ऐसे समझो—जैसे रात्रिमें जिस कमरेमें, जिस पलंग पर

आप सोते हैं, उसी कमरेमें उसी पलंग पर आप प्रातःकाल जागते हैं, वैसे ही मृत्युके समय आप जिस भावनाके साथ मरते हैं उसी भावनाको लेकर आप जन्मते हैं। तो विचारवानोंके लिए मृत्यु जरा भी भयङ्कर नहीं होती।

और भगवान् किसीको मारते नहीं हैं, किसी जीवका संहार नहीं करते हैं, क्योंकि आत्मा तो भगवान्का स्वरूप है। यदि आत्माकी मृत्यु हो जायेगी तो फिर भगवान् रहें कहाँ? आत्माको मारते नहीं है, असलमें आत्मा पर जो वासनाकी परत-पर-परत काई जम गयी है, उसको धो-पोंछ कर, शुद्ध-साफ कर देते हैं और जीवको शुद्ध स्वरूप प्रदान कर देते हैं। भगवान् मारते नहीं हैं किसीको, क्योंकि, जो कुछ है सब उनका स्वरूप है, उनका अंश है। इसी बातको इस तरहसे समझें—जैसे आपके हाथमें यदि मैल लग जाय, आपके चाममें कोई रोग हो जाय, आपके किसी अङ्गमें विष व्याप्त हो जाये तो आप उस अङ्गको धो-पोंछकर, दवा लगाकर, यहाँ तक कि अङ्गको काटकर भी अपनेको सुरक्षित करते हैं, ऐसे ही इस संसारके जीव जो हैं ये भगवान्के ही अंश हैं—जैसे हमारे नाखून हैं, अङ्गुलियाँ हैं, हाथ-पाँव हैं, रक्तके कीटाणु हैं वैसे ही ये जितने भी जीव संसारमें हैं ये सब विराट् भगवान्के शरीरके अंश रूप हैं। और जब इनमें कोई दोष आ जाता है तब भगवान् उस दोषको मिटा देते हैं और उसको शुद्ध-सुन्दर बना देते हैं। हमारे अवतार हिंसक नहीं होते हैं। कभी-कभी दूसरे लोग आक्षेप करते हैं कि हिन्दुओंके अवतार हिंसक होते हैं। क्योंकि उनके पास धनुष-बाण होता है, चक्र होता है। नहीं-नहीं, उनके पास साबुन होता है और ऑपरेशन करनेका औजार भी होता है, जिससे वे रोगीका अङ्ग काटकर उसको रोगसे मुक्त कर देते हैं, उसको विषैला होनेसे बचा लेते हैं। जो मरनेको आत्माका अन्त मानते हैं, वे तो बिलकुल भौतिकवादी हैं, मूर्ख हैं एक तरहसे।

एक दूसरी बात और आपको सुनाते हैं—संसारके किसी भी

धर्ममें वैदिक सनातन धर्मको छोड़कर ईश्वरका अवतार नहीं माना जाता। ईसाईयोंमें ईश्वरका बेटा आता है, मुसलमानोंके ईश्वरका पैगम्बर आता है—सन्देश लानेवाला। अच्छा, जैनोंमें जो चौबीस तीर्थङ्कर हैं वे अवतार हैं क्या? नहीं, वे अवतार नहीं हैं वे उत्तार हैं। अवतार और उत्तारमें क्या फर्क हैं? 'अवतार' माने जो ईश्वर है वह हमारे ऊपर कृपा करके हमारे पास उतर कर आता है और जो जैनोंके तीर्थङ्कर होते है और बौद्धोंके बोधी-सत्व होते हैं वे पहले जीव होते हैं और साधना करते-करते अनेक जन्मोंमें वीतराग-तीर्थङ्करकी पदवी पर पहुँचते हैं। इस तरह बौद्ध-जैनके जो तीर्थङ्कर हैं वे नीचेसे ऊपर चढ़कर जाते हैं, मुक्त होते हैं और हमारे जो वैदिक सनातन-धर्मके अवतार हैं वे साक्षात् परमेश्वरके प्राकट्य हैं। आपलोगोंको मालूम होगा कि जैन-धर्ममें पाँच बात नहीं मानी जाती। एक-वे वेद नहीं मानते हैं, दो-ईश्वर नहीं मानते हैं, तीन-ब्राह्मण नहीं मानते हैं, चार-होम-रूप यज्ञ नहीं मानते हैं और पाँच गंगा आदि नदियोंमें स्नान करनेसे मनुष्यको पुण्य मिलता है, यह बात नहीं मानते हैं। जैन-धर्मकी ये पाँच विशेषताएँ हैं। वे लोग बड़े गौरवके साथ अपने बड़प्पनके रूपमें इसका निरूपण करते हैं?

इस तरह हम देखते हैं कि अवतार जो है सो वैदिक-सनातन धर्मकी सम्पदा है, गौरवकी वस्तु है। यदि गिरते हुए मनुष्यको उठानेके लिए कोई ऊपरसे न उतरे, अगर पिछड़े हुए मनुष्यको आगे बढ़ानेके लिए सामने न आवे, यदि पतितको पवित्र बनानेके लिए कोई न आवे, यदि ईश्वरसे विमुखको कोई सम्मुख करने वाला न हो, यदि आत्माको अपनेसे एक करनेवाला कोई परमात्मा न हो तो मनुष्यकी गति क्या होगी? जरा सोचिये तो सही।

इसलिए एक ओर तो हिरण्यकशिपु भी भगवान्का अंश है, भगवान्का भक्त है, भगवान्का नित्य-पार्षद है और उसका यहाँसे उद्धार करना है और दूसरी ओर भक्त चाहिए बिना भक्तके भगवान्

कैसे आवेंगे! तो सनत्कुमारने कहा कि अच्छा, कोई और भक्त नहीं है तो हम ही भक्त बन जाते हैं और स्वयं सनत्कुमार ही प्रह्लाद-भक्तके रूपमें प्रकट हुए।

यह कथा स्कन्द-पुराणके काशी-खण्डमें आती है कि सनत्कुमार ही प्रह्लाद हुए थे। शायद कोई पूछे तो हम पहले ही आपको बता देते हैं!

अब देखो 'प्रह्लाद' शब्दका अर्थ। प्रह्लादका अर्थ है—'सर्वोत्तम आनन्द'। 'प्र' माने श्रेष्ठ, सर्वोत्तम और 'ह्लाद' माने आनन्द। तो प्रह्लाद माने सर्वोत्तम-आनन्द, परमानन्द।

'प्रह्लाद' शब्दकी दूसरी व्याख्या है—प्रह्लादयति = प्रह्लाद माने जहाँसे वे निकलते हैं उनकी तन्मयता देखकर, उनकी आँखोसे प्रेमकी किरणें निकलती देखकर, उनके होठों पर प्रेमकी मुस्कान देखकर लोग आनन्दमें मग्न हो जाते हैं—

'प्रह्लादयति आह्लादयति निखिलं जगत् इति प्रह्लादः'

जो सारे जगत्को सुख दे उसका नाम होता है 'प्रह्लाद'।

कोई-कोई प्रह्लाद शब्दका ऐसा अर्थ करते हैं। कि ल और र में भेद नहीं है तो ह्लाद हैं ये। संस्कृतके पण्डित भी प्रह्लाद न बोलकर 'प्रह्लाद' बोलना ज्यादा पसन्द करते हैं। इसका अर्थ होता है जैसे एक सरोवर है—उसको दह बोलते हैं, ह्रद बोलते हैं। तो एक 'ह्रद' है, उसका जल अत्यन्त निर्मल है और लहरा रहा है अपने-आपमें और उसमेंसे ध्वनि भी होती है। इसी तरह प्रह्लादजी एक निर्मल प्रेमके सरोवर हैं और उनमेंसे निरन्तर भगवन्नामकी ध्वनि होती रहती है—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हो!
मुकुन्द माधव गोविन्द कृष्ण, गोविन्द माधव मुकुन्द कृष्ण।

तो प्रह्लादजीके रोम-रोमसे आनन्दकी ऐसी किरणें निकलती हैं कि जहाँ जाते हैं वहाँ भगवान्के नामकी ध्वनि गूँज जाती है, वहाँ

आनन्दकी तन्मात्रा फैल जाती है, और सम्पूर्ण विश्वका आकर्षण उनकी ओर हो जाता है।

अब हिरण्यकशिपु तो गर्भाधान करके चला गया तपस्या करने और जब तक वह त्रिलोक-विजयी होकर घर नहीं लौटा तब तक प्रह्लादजी गर्भमें ही रहे। यह भक्त है। जहाँ रहे जैसी अवस्थामें रहे, भगवान्‌का अनुभव करता रहे। भक्तके लिए क्या अन्दर, क्या बाहर? उसके लिए क्या नरक, क्या स्वर्ग? भक्त तो बोलता है-

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्द चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥

हे प्रभु, मैं स्वर्ग में रहूँ कि नरक में रहूँ, मैं मर्त्यलोकमें रहूँ कि वैकुण्ठमें रहूँ इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। हम हमेशा नरकमें रहें तब भी हमें कोई आपत्ति नहीं है। बस, एक बात है, जहाँ भी रहूँ आपके चरणारविन्दकी स्मृति बनी रहे! चरणारविन्दकी स्मृति बनी रहेगी तो न शरीरकी स्मृति होगी, न दुःखकी स्मृति होगी। क्योंकि स्मृतिका यह नियम है कि दो वस्तुका स्मरण एक साथ नहीं रह सकता। हम दो अँगुलीको भी एक साथ नहीं देख सकते हैं नेत्र-ज्योति दाएँ-बाएँ होकर दोनोंको देखती हैं। तो मन तो दो वस्तुको एक साथ देख ही नहीं सकता। जिनका मन भगवान्‌को देखनेमें लग गया उनको फिर न दुःख दिखता है, न संसार दिखता है, न नरक दिखता है—

नरक-स्वर्ग अपवर्ग समाना।
जँह-तँह दीख धरे धनु-बाना॥

जहाँ हम हैं वहाँ हमको भगवान्‌का दर्शन होता रहे। इसकी कोई परवाह नहीं कि भगवान्‌का रूप क्या है—

असुन्दरः सुन्दर शेखरो वा गुणैर्विहिनो गुणिनां वरो वा।
द्वेषीमयि स्याद् करुणाम्बुधिर्वा कृष्णाः स एवाद्य गतिर्ममास्ति॥

वह चाहे सुन्दर हो चाहे कुरूप हो, चाहे गुणहीन हो, चाहे सर्वश्रेष्ठ

गुणोंसे सम्पन्न हो, वह चाहे हमको दुःख पहुँचावे चाहे सुख पहुँचावे-इससे हमारा कोई मतलब नहीं है, बस उसके सिवाय दूसरा कोई हमारी आँखोंके समान न हो।

गिरे गर्दन ढुलक कर पीत पट पर,
खुली रह जायँ ये आँखें मुकुट पर।
अगर ऐसा हो अन्जाम मेरा
तो तुम्हारा नाम हो और काम मेरा॥

भक्त लोग परिस्थितिको नहीं देखते हैं। देखो, सनत्कुमारकी यह विशेषता है कि वे गर्भमें प्रह्लाद बन कर रह रहे हैं और अपने चेले नारदजीको ही अपना गुरु बना लेते हैं। आपको उपनिषदोंका यदि संस्कार होगा तो आप जानते होंगे कि नारदजी सनत्कुमारकी शरणमें आये और बोले कि मैंने वेदादि सकल-शास्त्रोंका अध्ययन कर लिया है, मैं वेद-शास्त्र तो बहुत जानता हूँ, सब जानता हूँ। परन्तु मेरे शोककी निवृत्ति नहीं हुई। मैं मन्त्रवित् हूँ, ब्रह्मवित् नहीं हूँ, कृपाकर आप हमको इस शोकसे छुड़ाइये। नारदजी सनत्कुमारकी शरणमें गये और सनत्कुमारने उनको आनन्द-भूमा सुख-भूमाकी विद्याका उपदेश किया—छोड़ो शास्त्रको, भगवान्‌का नाम लो और नाम छोड़ो वाणीमें आओ, वाणीसे मनमें आओ और इस तरह उन्हें आत्माका साक्षात्कार कराया—जो अल्प है सो मर्त्य है।

यदल्पं तन्मर्त्यं यो वै भूमा तत्सुखम्।

और अन्तमें सनत्कुमारोंसे नारदने कह दिया कि मैं शोकसे पार हो गया। अब वही नारद जी गुरु और वही सनत्कुमार माताके पेटमें प्रह्लाद। नारदजी उपदेश कर रहे हैं और चेले बनकर सनत्कुमार सुन रहे हैं। प्रह्लाद यह नहीं कहते कि हमारा यह ज्ञान अनादि है और पूर्वजन्मसे है, बल्कि यह कहते हैं कि यह ज्ञान हमको नारदजीने दिया है। आजकल तो जिनको थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जाता है वह अपने गुरुका

नाम लेना पसन्द नहीं करता। हमारा करीब पचासवर्षका यह अनुभव है कि जरा गद्दी मिल गयी, जरा नाम हो गया तो फिर अपने गुरुका नाम नहीं बताते हैं। कहते हैं कि ईश्वर हमारे पास आया था और वह हमको ज्ञान देकर गया है। स्वयं भगवान्‌से हमारा सम्बन्ध है, बीचमें गुरु-रूप दलालकी क्या जरूरत है? या फिर कोई पुराना महात्मा होगा तो उनका नाम लेने लग जायेंगे, गुरुका नाम नहीं लेंगे। लेकिन, जब प्रह्लाद गर्भावस्थामें थे तब नारदने उनको उपदेश किया था, इसलिए वे जन्म लेनेके बाद कहते हैं कि यह ज्ञान मैंने नारदजीसे प्राप्त किया है। यह है सत्पुरुषका स्वभाव।

एक कथा आपने सुनी होगी—जब हिरण्यकशिपु मर गया तब सब दैत्य इकट्ठे हुए। प्रह्लाद राजा था। भगवान्‌ने प्रसाद बनाकर प्रह्लादको गद्दी दी थी। हिरण्यकशिपुकी गद्दी पर ऐसे ही प्रह्लादको बैठा देंगे तो शायद इसका कुछ प्रभाव प्रह्लाद पर पड़े,यह सोचकर तो पहले नृसिंह भगवान् स्वयं हिरण्यकशिपुके सिंहासन पर बैठे, बैठकर उसको प्रसाद बनाया और फिर प्रह्लादजीको प्रसाद-रूपमें दिया। जब प्रह्लाद राजा हुए तब सब दैत्य इकट्ठे हुए और प्रह्लादसे बोले कि देखो, हमारे वंशकी यह रीति है कि यदि कोई राजा पिताको मार डालता है तो राजा होने पर बेटेको उससे बदला लेना चाहिए। तो तुम नारायणसे बदला लो! प्रह्लादने कहा कि कैसे लें बदला? सब दैत्य बुलाये गये। बड़े-शूरवीर, उत्कट-उत्कट दैत्य। आजकल भी देखते ही हैं—भले मानुषसे गुण्डे लोग जोरदार होते ही हैं। सज्जन तो सज्जन ही रहेगा और गुण्डे लोग तो मार-काट सब करते ही हैं। ईश्वर-कृपासे प्रह्लादने कहा ठीक है, जैसी पञ्चोंकी राय। सेना सजी,अस्त्र-शस्त्र आये और करोड़ों-करोड़ोंकी सेना नारायण पर धावा बोलेनेके लिए चल पड़ी। अब नारायणने सोचा कहाँ युद्ध करेंगे! तो बूढ़े ब्राह्मण बनकर प्रह्लादजीके पास आये थर्र-थर्र काँपते हुए। भक्तके सामने भगवान्‌को काँपना भी पड़ता है। प्रह्लादजीने पूछा—महाराज, आपकी

क्या सेवा करें? ब्राह्मण बोले कि हमारी कुटियाके पास एक पेड़ गिर गया है और वह हमसे न काटते बनता है, न हटाते बनता है। सो आप उसको उठवा कर हमारी कुटियाके और पास करवा दीजिये ताकि हम उसकी लकड़ीसे होम भी कर लिया करेंगे और रोटी भी बनाया करेंगे। यह सुनकर प्रह्लादने दस दैत्य भेज दिये, ऐसे बलशाली जो एक-एक पहाड़ उठा लें। पर, उनसे वह पेड़ नहीं उठा! फिर प्रह्लादजी स्वयं जाने लगे। तब ब्राह्मणने पूछा कि आखिर तुम जा कहाँ रहे हो? प्रह्लादजी बोले कि हम नारायण पर विजय प्राप्त करनेके लिए जा रहे हैं। ब्राह्मण बोले कि तुम्हारी सारी सेनासे एक पेड़ तक नहीं उठा, तुम नारायण पर क्या विजय प्राप्त करोगे? प्रह्लादने कहा कि महाराज, आप बिलकुल सत्य कहते हैं और फिर दैत्योंसे कहा कि सब दैत्य बैठ जायँ और ब्राह्मण देवताकी बात सुनें। फिर प्रह्लादने ब्राह्मणसे कहा कि अच्छा महाराज, हम लड़कर नारायणसे विजय नहीं प्राप्त नहीं कर सकते तो आप और कोई उपाय बताओ, लड़ना तो हमको है। क्योंकि हमको अपने बापका बदला लेना है। बदला लेनेकी भावना दैत्योंमें होती है, देवता लोग बदला नहीं लेते हैं। संत महात्मा-सज्जन बदला लेनेका काम नहीं करते हैं, बदला लेनेका काम तो दैत्य ही करते हैं। तो ब्राह्मणने बताया कि एक उपाय है—तुम नारायणका ध्यान करो तो तुमको नारायण पर विजय मिल जायेगी। अब प्रह्लादने बैठकर ध्यान दिया। भावमय तो थे ही, भक्त भी थे, थोड़ी ही देरमें ऐसे तन्मय हुए कि प्रह्लाद खुद नारायण हो गये। चार भुजाधारी-शंख, चक्र, गदा, पद्म, पीताम्बरधारी, मुकुटधारी साक्षात् नारायण! अब दैत्योंने देखा तो उन्होंने सोचा हमारे महाराज तो नारायणका ध्यान करके नारायण हो गये, तो उन्होंने भी नारायणका ध्यान किया। दैत्योंमें एकाग्रता बहुत होती है। सो करोड़ो दैत्य सब-के-सब नारायण हो गये और बोले कि हाँ, अब हम उनको जरूर हरा देंगे; क्योंकि वह एक हैं और हम करोड़ो नारायण हैं। अब देवता लोग घबड़ाये कि हमारी अब क्या गति होगी? वे

सब गये असली नारायणके पास और बोले कि हे नारायण, सब-के-सब दैत्य ही नारायण हो गये, अब क्या होगा? तो गरुड़ पर चढ़कर भगवान् प्रह्लादके पास आये और बोले—'वर माँगो प्रह्लाद'। प्रह्लाद बोले कि मैं यह माँगता हूँ कि जिस ज्ञानसे आप नित्य-नारायण हैं। असली नारायण वह ज्ञान हमको हो जाये। तो नारायणने कहा कि अच्छा, अन्नमय कोषसे लेकरके साक्षी-पर्यन्तका विवेक तुमको उदय हो जाये। अब वे तुरन्त देखने लगे कि मैं अन्नमय नहीं, मैं मनोमय नहीं, मैं प्राणमय नहीं, मैं विज्ञानमय नहीं, मैं आनन्दमय नहीं, मैं तो शुद्ध-साक्षी निराकार, निर्विशेष, निर्धर्मक आत्मा हूँ। सो महाराज, नारायणका ध्यान छूट गया और प्रह्लाद पहलेकी तरह प्रह्लाद हो गये, न चार भुजा रही, न पीताम्बर रहा। अब दैत्योंने जब देखा तो समझ गये इन्होंने ध्यान छोड़ दिया। फिर तो उन्होंने ध्यान छोड़ दिया और सब-के-सब दैत्य हो गये और इधर प्रह्लादके मनमें जाग्रत हुआ विवेक। तत्-पदार्थका विवेक हुआ अपने अन्दर और त्वं-पदार्थका विवेक हुआ जो गरुड़ारूढ़ भगवान् आये थे उनके अन्दर और प्रह्लादको दोनोंकी एकताका बोध हो गया। वे बोले कि भाई, लड़ाई-झगड़ा नहीं करना, राग-द्वेष नहीं करना। तत्त्वज्ञानी का लक्षण ही यह है कि वह किसीसे राग-द्वेष नहीं करता है। लड़ाई वहीं शान्त हो गयी!

आसुरी नारायण सब भाग गये और दैत्य लोग विजयी होकर लौट आये।

यदि किसीको जानकारी चाहिए तो प्रह्लादकी यह कथा 'योग-वाशिष्ठ'में है।

हमारे पुराणोंके अनुसार अब तक सात प्रह्लाद हो चुके हैं और उनकी पृथक्-पृथक् कथा है। अब हम आपको पहले श्रीमद्भागवतके अनुसार प्रह्लाद-चरित्रके प्रसङ्गमें और कोई बातें सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(८)

भगवान्‌के पार्षद हैं जय-विजय। शास्त्रोंका यह कहना है कि जो वैकुण्ठमें जाता है वह मुक्त हो जाता है और मुक्त ही रहता है। वैसे वेदान्तियोंकी मुक्तिमें और भक्तोंकी मुक्तिमें थोड़ा अन्तर होता है। वैसे मुक्ति तो तरह-तरहकी होती है जितने दर्शन हैं उतने ही तरहकी मुक्ति हैं। चार्वाक-दर्शनमें तो सक्र, चंदन, वनिताका जो आलिंगनजन्य सुख है, वही मोक्ष है। इसीको मोक्षसुख मानते हैं। बौद्ध-लोग मुख्य-रूपसे वासना-निवृत्तिको मोक्ष मानते हैं, जैन लोग सिद्ध-शाला पर बैठकर अलोकाकाशमें गमनको मोक्ष मानते हैं, न्याय-वैशेषिक मिथ्या-ज्ञानकी निवृत्तिको मोक्ष मानते हैं, सांख्ययोगी असङ्ग-साक्षी पुरुष का जो प्रकृति-प्राकृतसे सम्बन्ध विच्छेद है उसको मोक्ष मानते हैं; मीमांसक-लोग प्रपञ्च-सम्बन्ध-विनयको मोक्ष मानते हैं, भक्तलोग भगवान्‌के धामका निवासी हो जाना, भगवान्‌की वेश-भूषा धारण करना, भगवान्‌के पास रहना और भगवान्‌से मिल जाना—चार प्रकारका मोक्ष मानते हैं और कोई-कोई पाँच प्रकारका मोक्ष भी मानते हैं। वेदान्तियोंका मोक्ष सबसे निराला है। अभेद-वेदान्तियोंका मोक्ष है कि अविद्याकी निवृत्ति हो जाने पर जो अपना स्वतः सिद्ध आत्म-स्वरूप है, वही मोक्ष है। मोक्ष मिलता नहीं है, है। अज्ञानके कारण ढँक गया है, अज्ञानकी निवृत्ति होने पर दीखने लगता है।

ऐसे मोक्षके सम्बन्धमें और भी बहुतसे मत हैं। मैंने संक्षेपमें आपको बताया है।

तो जय-विजय वैकुण्ठमें रहते हैं, मुक्त हैं। देखना यह है कि वेदान्तियोंकी मुक्तिमें और जय-विजयकी मुक्तिमें क्या फर्क है? वहाँ बन्धन और मोक्ष दोनोंके मालिक भगवान् हैं। इसलिए, वे चाहें तो अजामिल जैसे बद्धको भी मुक्तकर दें और वे चाहें तो जय-विजय जैसे मुक्तको भी फिरसे बद्ध बना सकते हैं। यदि ईश्वर बन्धन और मुक्ति दोनोंके मालिक नहीं हों तो उनकी ईश्वरताकी कट जाती है। काहेके ईश्वर हैं? जब एक बद्धको मुक्त करनेका सामर्थ्य ईश्वरमें नहीं है और एक मुक्तको बद्ध बनानेका सामर्थ्य ईश्वरमें नहीं है तो फिर ईश्वरता कैसी? यह तो उपहासकी बात हो गयी न? एकने हमसे बताया कि महाराज, हमारे पास लाखों, रुपये रखे हैं। सच्ची बात सुना रहा हूँ। लेकिन, हम उसमें-से पाँच रुपया भी किसीको दे नहीं सकते हैं, हमको यह अधिकार नहीं है। अब आप स्वयं बताइये आप उस रुपयेके क्या हुए, मालिक हुए? नहीं, आप मालिक नहीं हुए, आप रुपयेके पहरेदार हुए।

तो जहाँ मुक्ति ईश्वरके अधीन होती है; वहाँ ईश्वरकी ईश्वरता बनी रहती है और मुक्त-पुरुष जीव बना रहता है। तो, ईश्वरका जो यह सर्व-शक्तित्व, समग्र-सामर्थ्य है, उसको प्रकट करनेके लिए जय-विजयको मुक्तसे बद्ध होना पड़ता है, बन्धनमें आना पड़ता है!

तो, ईश्वरसे तो ये हो गये विमुख और मुक्तिका जो इनका अभिमान था वह छूटा नहीं। इससे जीवनमें द्वन्द आ गया कि पूर्णतासे तो पृथक् हो गये और मैं मुक्त हूँ यह अभिमान छूटा नहीं, फँस गये। क्योंकि, जो ऐसा समझता है कि मैं मुक्त हूँ और मेरे सिवाय दूसरे जो संसारी जीव हैं; वे बद्ध हैं; माने अपनेको मुक्त और दूसरोंको बद्ध समझता है वह केवल जबानी जमा-खर्चसे वाचा-मुक्त है, वस्तुतः मुक्त है ही नहीं।

अब एक दृष्टि हिरण्यकशिपुकी ओर डालें। उसको अपने

मुक्तपनेका अभिमान है। ज्ञान नहीं है, अभिमान है—माने समझकरके उसने अपनेको मुक्त नहीं माना, अभिमानसे माना। तो ऐसे मुक्तपनेकी, ऐसी मुक्तिकी क्या दशा हुई जब उसके भाई हिरण्याक्षकी मृत्यु हो गयी तब उसको बड़ा दुःख हुआ। और यदि उसने समझकर अपनेको मुक्त माना होता तो उसे दुःख नहीं होता, क्योंकि ज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि वह संसारसे मिलनेवाले सुखको और संसारसे मिलनेवाले दुःख दोनोंको ही निस्तेज कर देता है। निस्तेज माने ऊपर-ऊपरसे भले ही सुख-दुःख होता रहे, दिलमें उसकी आँच नहीं लगती है, ज्ञानकी यह महिमा है!

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशा.)

जो परमात्माके साथ अपनी एकताका साक्षात्कार कर लेता है, समझ लेता है कि आत्मा शोक-मुक्त है, मोह-मुक्त है—आत्मामें शोक नहीं है, आत्मामें मोह नहीं है, वह परमात्मासे एक है उसको दुःख कहाँसे होगा? यह दर्शन नहीं, अनुदर्शन है। 'अनुदर्शन' है माने आत्मा सचमुच पहलेसे ही शोक-मुक्त है, मोह-मुक्त है—इस बातको वह समझ लेता है। परन्तु, हिरण्यकशिपुको तो बड़ा भारी शोक हुआ और बड़ा भारी ताप हुआ—**'पर्यतप्यद्रुषा शुचा'**। एक तो जिसने उसके भाईको मारा था उसपर आया क्रोध और हृदय शोकसे संतप्त हो गया और हुआ मुक्तिका अभिमान।

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

(बृहदा. ४.४.१२)

हमारे उपनिषद्, पञ्चदशी, वार्त्तिकार आदि बोलते हैं कि यदि मनुष्य यह जान ले कि मैं ब्रह्म हूँ—**'अहं ब्रह्मास्मि'**, **'अयमात्मा ब्रह्म'** तो फिर शरीरके पीछे जलेगा क्यों?—

किं विषयजातं इच्छन्, कस्य भोक्तुः कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्?

क्या चाहकर वह जल रहा है? किसके लिए जल रहा है? किसी इच्छा-पूर्तिके लिए जल रहा है? न आत्मा भोक्ता है और न विषय सच्चा है। जब आत्मा ब्रह्म है तब दुःख काहेका? यदि कोई अपनेको ज्ञानी भी मानता है, मुक्त भी मानता है और सुखी-दुःखी भी होता रहता है तो वह ज्ञानी नहीं है, वह तो पागल है। अपनी मुक्तताका अभिमान भी है और दुःखताका अभिमान भी है, तो पागल ही हुआ न?

इसलिए, हिरण्यकशिपुकी स्थितिका वर्णन यह बतलानेके लिए किया गया कि यदि मुक्तिका अभिमानी ईश्वरसे विमुख है और संसारके सम्बन्धसे बँधा हुआ है तो वह झूठा मुक्त है, सच्चा मुक्त नहीं है, मुक्त तो उसको भगवान् करेंगे—एक ओर यह बात हुई, दूसरी ओर यह बात हुई कि प्रह्लादकी माता कयाधु और हिरण्याक्षकी पत्नी रुषाभानु और हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुकी माता दिति—ये सब रोवें हिरण्याक्षके मर जाने पर। तो हिरण्यकशिपु लगा इन्हें समझाने। स्वयं तो शोक-ग्रस्त है और बदला लेनेकी भावनासे आक्रान्त है और दूसरोंको समझानेके लिए बन गया ब्रह्मज्ञानी। ये जो कच्चे ब्रह्मज्ञानी होते हैं; वे अपने ऊपर जब दुःख पड़े तब तो रोने लगते हैं, और जब दूसरे पर दुःख पड़े तब सुन लो उनसे प्रवचन-पर-प्रवचन। वह वेदान्त झाड़ने लगते हैं कि क्या पूछना? अपने पर दुःख आवे तो छटपटाते हैं, उनको शोक भी है, मोह भी है, क्रोध भी है, द्वेष भी है और, दूसरे पर दुःख पड़ा तो लगे वेदान्त बघारने!

अच्छा, हम कहते हैं कि यदि एक आदमी रो रहा है दुःखसे, तो ज्ञानीजी आप क्यों रोते हैं? थोड़ा उसके साथ मिलकर रो लीजिए! उसके साथ मिलकर रोनेमें आपका ज्ञान बिगड़ जाता है? ज्ञान कोई चिड़िया है कि ताली बजायी और उड़ गया? रोनेसे ज्ञान भाग नहीं जाता है। किसी दुःखीके दुःखको देखकर यदि आप उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हैं तो उसका दुःख कम हो जाता है। आप रोइये उसके साथ, बड़ा मजा आजायेगा।

एक बारकी बात है, मैं बाँकुड़ामें था सेठ जयदयालजीके घरमें। तीन-चार महीने वहाँ रहा। उन्होंने क्या किया था कि अपने छोटे भाईको गोद ले लिया था—दत्तक-पुत्र मोहनलाल नाम था, और उनके एक बेटा था कोई तीन वर्षका, वह मर गया। मैं वहीं था उनके ही घरमें, श्मशान भी गया था। लौटने पर सेठ जयदयालजी खूब रोयें, खूब रोयें कभी छाती पीट कर; तो कभी सिर पीट कर—हाय-हाय, हाय-हाय। अब लोग उनको समझावें—भाई जी आप यह क्या कर रहे हैं; सेठजी आप यह क्या कर रहे हैं—कोई कुछ बोलकर, कोई कुछ बोलकर—कोई आपजी भी बोलते थे—आपजी आप क्या कर रहे हैं? इतने बड़े ज्ञानी होकर, इतने बड़े महापुरुष होकर आप रोवेंगे तो लोग क्या कहेंगे? सब समझावें। पञ्चायत इकट्ठी हुई! अब तो सेठजीने एक शर्त रक्खी कि यदि घरमें कोई नहीं रोवेगा तब तो हमारा रोना भी बन्द हो जावेगा और यदि घरमें कोई भी रोवेगा तो फिर हमारा रोना बन्द नहीं होगा। क्योंकि हमको रोना देखकर रोना आ जाता है। घरमें तय हो गया कि अब कोई नहीं रोवेगा, आप मत रोइये। सबका रोना बन्द हो गया। दो-चार दिन बाद मैंने उनसे पूछा—'सेठजी, बच्चेके मरनेका क्या आपको इतना दुःख हुआ कि आप छाती पीट-पीट कर रोये'? बोले कि नहीं जी, दुःख हमको नहीं हुआ था, पर लोगोंको समझाते-समझाते हम इतने परेशान हो जाते,क्योंकि घरके सब लोग रोते और घंटों तक हमको उनको समझाना पड़ता कि ऐसा तो होता ही है, रोना नहीं चाहिए आदि-आदि। और मैं ऐसे घंटे, आध-घंटे रो लिया तो उस सारी परेशानीसे बच गया। घरमें दूसरा फिर कोई रोया नहीं और सब हमको ही समझाने लगे—सब गुरु हो गये और मैं चेला हो गया।

तो ज्ञानियोंके पास बड़ी-बड़ी युक्ति होती है। स्वयं मैं दुःखी हूँ—यह अभिमान ज्ञानीके हृदयमें कभी नहीं होता है! दुःखकी धारा बह

रही हो, दुःखका समुद्र उमड़ रहा हो, दुःखका तूफान आया हुआ हो, लेकिन ज्ञानी 'मैं दुःखी हूँ'—अभिमान अपने हृदयमें कभी नहीं कर सकता! तो हिरण्यकशिपुको बड़ा भारी अभिमान कि मैं मुक्त हूँ और उधर दिल जले-दुःख हुआ। पर जब दूसरोंको समझाना पड़ा तो बन गया ज्ञानी और बड़ा भारी व्याख्यान दिया उसने। पहली बात तो यह कही कि बदला लो मारनेवालेसे। यह सब देवताओंकी बदमाशी है। उन्होंने षड़यंत्र करके हमारे भाईको मार डाला है। और, यह जो विष्णु है, देखो यह सूअर!—ऐसे कहा। और **'समेनाप्युपधावनैः'** है तो यह सम, समदर्शी। लेकिन, भेंट-पूजा कर-करके सबने इसको अपना पक्षपाती बना लिया। रिश्वत लेने लग गया यह। यह देवताओंसे भेंट-पूजा लेकर उनका पक्षपात करता है और उनका पक्ष लेकर देखो सूअर तक बन जाता है। सूअर तो गन्दा होता है। पर, उसने हमारे भाईको मारा है। सो अब हम आज्ञा देते हैं कि जितने बलवान दैत्य हैं, सब इकट्ठे होकर उस पर चढ़ाई कर दो! और प्रत्येक दैत्यका नाम ले-लेकर उसने पुकारा। किसीको आज्ञा देनी हो तो नाम लेकर पुकार देना चाहिए कि तुम यह काम कर लो। यदि एकके जिम्मे काम नहीं करोगे तो काम नहीं बनेगा। यदि सबके भरोसे छोड़ दोगे कि कोई-न-कोई कर देगा तो 'सौ सयाने एक मत'।

आपने सुना होगा कि एक गाँवमें यह हुआ कि भाई, कल अमुक साधुके यहाँ भण्डारा है, तो गाँवका सब दूध इकट्ठा कर लिया जाय, वहाँ भेजेंगे! अब महाराज, लोग सबेरे अन्धेरेमें ही सोचने लगे कि और सब लोग तो दूध लावेंगे ही, हम चलकर एक लोटा पानी डाल देते हैं। अब सबेरे देखा गया तब पात्रमें पानी-ही-पानी था, दूध था ही नहीं। क्योंकि सभी लोग चालाक। ***'सौ सयाने एक मत'***। पानी लानेमें सब-के-सब एकमत थे। सबकी बुद्धि मिल गयी।

तो नारायण, कोई एक घंटे तक हिरण्यकशिपुने व्याख्यान दिया

होगा—भागवतमें पूरा व्याख्यान है—उसने आत्माका वही स्वरूप समझाया है जो वेदान्तमें प्रसिद्ध है—यही वाचिक-वेदान्ती होते हैं। ये हिरण्यकशिपु जुबानसे वेदान्ती है, सच्चा नहीं। इसमें एक तो थी ईश्वरसे विमुखता और ईश्वरका अज्ञान और दूसरे था अपनी परिच्छिन्नताका अभिमान और मानता था अपनेको मुक्त। तो भाई मेरे, ज्ञानमें अभिमान नहीं होता है। यही अभिमान असुर है—ज्ञानाभिमानका नाम ही असुर होता है और फिर इस असुर-भावसे आक्रान्त होकर कहेंगे कि हम चोरी करेंगे। चोरी करोगे? बोले कि हमको लगती कहाँ है? हम तो मुक्त हैं। हम बदमाशी करेंगे। बदमाशी करोगे? हमको लगती कहाँ है? हम तो मुक्त हैं। तो इस तरहसे जो मुक्तिके अभिमानी होते हैं वे संसारमें अनर्थ फैलाने वाले असुर हैं! ये असुर भावाक्रान्त होकर काममें, क्रोधमें, मोहमें कहीं-न-कहीं फँस जाते हैं।

देखो भाई, एक बात है—हिरण्यकशिपुने समझाते-समझाते भी एक दृष्टान्त बहुत बढ़िया दिया! उसने कहा कि उशीनर देशमें एक राजा था जिसका नाम था सुयज्ञ। दुश्मनसे लड़ाई हुई और वह मारा गया। तब उसके सारे रिश्तेदार-नातेदार इकट्ठे होकर रोने लगे। किसके लिए रोते हैं? तो रोना विवेकसे कभी होता ही नहीं है। जहाँ-जहाँ दुःख है, रोना है वहाँ-वहाँ अविवेक है। अज्ञान नहीं होगा तो दुःख नहीं होगा। वैसे लोग तो इस बातसे नाराज होंगे कि एक तो हमको दुःख हो रहा है और दूसरा तुम हमको अज्ञानी, बेवकूफ बता रहे हो! एक तो हमको मरनेका दुःख है, जानेका दुःख है, दुःखका दुःख है और दूसरा तुम हमको कहते हो कि अज्ञानी हो, बेवकूफ हो। तो नासमझीका नाम ही अज्ञान है। यह तुम्हारी नासमझी ही तुमको दुःख दे रही है। माटीके लिए रोते हो? आत्माके लिए रोते हो? तो आत्मा जो जीनेमें था वही मरनेमें है और माटी

भी जो पहले थी, वही पीछे है! बस, एक बात है कि उस समय आँख देखती थी, कान सुनता था, नाम सूँघती थी, जीभ बोलती थी—अब यह सब नहीं रहा! तो तुम घड़े-के फूटने पर रोते हो कि माटीके नाश पर रोते हो? आकाशके नाश पर रोते हो? तो भाई न आकाशका नाश होता है, न मिट्टीका नाश होता है—घड़ेकी जो शक्ल बनी हुई थी, वह बनी हुई शकल मिट गयी, इसलिए रो रहे हो! सायंकालका समय था। बालकका रूप धारण करके यमराज वहाँ आ गये और बोले—बुढ्ढे लोगो! ऐसे ही बोले कि लोगोंकी उम्र तो बड़ी है, लेकिन ज्ञानमें तुमलोग अभी तक विलकुल बच्चे हो। क्या मूढ़ता है यह जो रो रहे हो? यह जहाँसे आया था, वहाँ चला गया। इस शरीरमें जहाँसे आत्मा आया था—

'यत्रागतंस्तत्तं गतं मनुष्यं'—जहाँसे आया था वहाँ यह मनुष्य चला गया, तुमलोग झूठ-मूठ क्यों रो रहे हो? क्या रोनेसे यह लौट आवेगा? रोनेसे कोई काम नहीं बनेगा; रोनेसे वह लौटेगा नहीं—करोड़ कल्प तक तुम भले ही रोते रहो। और रोनेसे तुम्हारे कर्त्तव्य-कर्ममें भी बाधा पड़ती है!

देखो, दैव जब रक्षा करता है तब रास्तेमें गिरी हुई चीज भी मिल जाती है और दैव यदि रक्षा करनेवाला न हो तो घरमें रखी हुई चीज भी चली जाती है। हमारे एक मित्र हैं, उन्होंने सौ-सौ रुपयेके चार नोट सुरक्षित रखनेके ख्यालसे एक लोहेके डिब्बेमें रखकर धरतीमें गाड़ दिया। अब जब वर्षा हुई तब धरतीकी नमी डिब्बेमें घुसी और नोट पानी हो गये। जब डिब्बा खोला तब नोट नहीं पानी मिला। उन्होंने तो बहुत सुरक्षित रखा था! पर, गल गया। और, मैं गृहस्थ था तबकी बात है—एक बार चार रुपये मैंने बचाकर रखे थे—हरिद्वारसे रेलसे बनारस जानेका किराया चार रुपया लगता था, उसके लिए बचाकर रखा था। तो गंगामें स्नान करने

गया और भूल गया। भूल गया तो गिर गये गंगाजीमें। तो मेरे मनमें आया कि अब भगवान्‌की यह इच्छा है कि हम रेलसे बनारस नहीं जायँ, पैदल ही जायँ। दूसरे दिन वहीं गंगामें फिर स्नान करने गया तो गंगाजी वहाँसे दूर हट गयी थीं। और रुपये बिलकुल वहीं पड़े हुए मिल गये। फिर मैंने सोचा अब भगवान्‌की इच्छा है कि मैं रेलसे ही जाऊँ! तो देखो, गंगाजीमें गिरे हुए रुपये भी वापस आ गये और घरमें रखे हुए रुपये भी चले गये!

एक बहुत ही समझदार और सम्पन्न व्यक्तिने हमको बताया कि उनकी माताजी सौ वर्षकी थीं, उन्होंने उनसे पूछा कि माताजी आपकी क्या सेवा करें? तो उन्होंने कहा कि हमारी यह सेवा करो कि मरते समय डॉक्टर हमारे शरीरको न छूएँ, नाकमें ऑक्सीजन न लगावें; शरीरमें ग्लुकोस न चढ़ावे, इन्जेक्शनसे हमारे शरीरको छेदे नहीं, गन्दी-सन्दी दवाएँ न खिलावे! बस, हमारी यही सेवा करो कि ये डॉक्टर उस समय हमारी दुर्दशा न करें! क्या समझते हो कि यह दुनिया बनी ही रहेगी?

तो नारायण, हिरण्यकशिपुका यह वेदान्त है कि मरे हुएके लिए क्या रोना? यह तो बात हुई अलग परन्तु, हम कभी न मरें—इसके लिए उसने बड़ी भारी तपस्या की यह असुरका वेदान्त है। दूसरेका शरीर मर गया तो मर गया, लेकिन हमारा शरीर मरने न पावे-इसका नाम आसुर-वेदान्त है। अब हम आपको कल सुनावेंगे!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(६)

संसारमें जिसका भी अनुभव होता है वह जड़ है! जो अनुभवका विषय है, उसका नाम है जड़! यह भगवान्‌की माया जड़ता बन कर दिखायी पड़ रही है। बहुत रूखी है, बहुत सूखी है। मायाका रूप है—जड़ता और भक्तिका रूप है—रस। **'रसरूपा भक्तिः'**। —किसी रूखी-सूखी चीजको भी यदि मीठी बनाना हो तो जैसे शक्कर डालकर उसको मीठी बना लेते हैं, वैसे ही भक्ति-रस कर्ममें डालो तो कर्म हो जाये रसीला और योगमें डालो तो योग हो जाये रसीला और ज्ञानमें डालो तो ज्ञान हो जाये रसीला। **'रसरूपा भक्तिः।' 'रसो वै सः'। रसव्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।** भगवान् रस-स्वरूप हैं, शर्बत हैं। 'रस' शब्दका ही बिगड़ा हुआ रूप शर्बत है। रस ही शर्ब हो गया है, रसवत्‌को ही शर्बत बोलते हैं।

तो पहले कर्मकी बात देखो। जो भी शरीर-धारी होगा वह कर्म किये बिना नहीं रह सकता। ये महात्मा लोग जो सब यज्ञ-यागादि रूप धर्म-कर्म छोड़कर जंगलमें जाते हैं, उनको भी भिक्षाटन, स्वाध्याय, अपने शरीरके नित्यकर्म सब करने ही पड़ते हैं।

'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्' (गीता ३.५)

दुनियामें ऐसा कोई भी नहीं है जो एक क्षण भी बिना कर्म किये रह सकता है। नहीं करे तब भी शरीरमें कर्म होता रहता है। खून चलता है, रोएँ बढ़ते हैं, मल-मूत्र जाता है, बाल बढ़ते हैं, साँस चलती है—जीवके साथ कर्म लगा हुआ है। पत्थर भी बढ़ते हैं—मिट्टीके अन्दर, पहाड़ोंमें जो पत्थर होते हैं, वे पहले छोटे होते हैं और धीरे-धीरे मिट्टीसे भोजन लेकर, तरी लेकर बड़े हो जाते हैं; पहले नरम होते हैं फिर कड़े हो जाते हैं। तो बिना कर्मके सृष्टिमें कोई रह नहीं सकता।

अब, जब कर्म होना ही है तब आपको एक बात पर ध्यान देना पड़ेगा कि आपको वह कर्म करनेमें स्वाद आता है कि नहीं? आप कर्मका मजा लेते हैं कि नहीं? उद्विग्न होकर कर्म कर रहे हैं, घबराये हुए कर्म कर रहे हैं? कहीं तश्तरी हाथसे गिर पड़ी, कहीं गिलास गिर पड़ा।

हमलोग जब घरमें कभी बर्तन रखते और कभी खटसे हो जाता तो हमारे पचहत्तर वर्षके बाबा कहते कि बर्तनोंको चोट लगती है बेटा! एक बर्तन दूसरे बर्तनमें रखना हो तो ऐसे रखो कि उसको चोट न लगे; उसको धरतीपर रखना हो तो खटसे मत पटको, धीरेसे उसको रखो। उसको धोओ तो उसको चोट न लगे, पोंछो तो चोट न लगे। सावधान होकर कर्म करना चाहिए। सावधान रहना ही साधना है। यदि आप अपने जीवनमें निरन्तर सावधान रहकर सारा काम करें—बोलनेमें सावधान, पाँव रखनेमें धमाधम न हो, पलंगपर बैठनेसे वह टूट न जाये और ओढ़नेका, बिछानेका चादर जब फटकारने लगें तब किसीकी आँखमें धूल न पड़ जाये। वह फट न जाय, कहीं उलझ न जाय—सावधान! अपने मनको जगाकर रखना। यह साधनाका स्वरूप है और यह साधना निरन्तर होती है।

तो, जिसको अपना काम करनेमें स्वाद नहीं आता वह अरस हो जाता है—अरस। माने उसको रस नहीं आता है और संस्कृत-भाषामें अरसका ही अलस हो जाता है—ल और र में भेद नहीं मानते हैं और 'अलस' शब्दसे ही आलस्य शब्द बनता है। **'अलस्यभावः आलस्यं।'** जिसको अपने नित्य प्रतिके कर्ममें,धर्ममें, रहनीमें, जीवनमें, स्वाद नहीं है वह बादमें आलसी हो जायेगा। याद आनेपर भी कहेगा—फिर कर लेंगे, फिर कर लेंगे और यदि मजा आता रहेगा तो चटपट कर लेगा और मजा नहीं आवेगा तो 'टालवेशन' आ जायेगा, जिन्दगीमें आलस्य आ जायेगा। 'आलस्य' माने याद आनेपर भी अपने कर्त्तव्य-

कर्मको न करना। 'प्रमाद' माने समयपर याद नहीं आना। तो, हमें अपने जीवनके कर्ममें रस घोलनेकी आवश्यकता है, तब हमारा कर्म मजेदार होगा। झाड़ू लगावें स्वाद ले-लेकर—कहीं तिनका रह न जाए, कहीं झाड़ू टूट न जायें, कहीं किसी की आँखमें धूल न पड़ जाय—रस लेकर काम करना चाहिए। यह रस कैसे आता है? बोले—रस तो अपने आत्माका स्वरूप है—**'रसो वै सः' 'आनन्द-रूपं परमं यद् विभाति' 'आनन्दो ब्रह्म इति व्याजनात्'**—विज्ञान यही है कि आनन्द ब्रह्म है। **'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन्'**। जिसने ब्रह्मको, माने सर्वदेश, सर्वकाल, सर्व-वस्तुके अधिष्ठान प्रकाश परब्रह्म परमेश्वरको आनन्द-स्वरूप देख लिया उसके लिए संसारमें कहीं भय नहीं रहता—**'विज्ञानमानंदम् ब्रह्म '**—आनन्द जीवनका एक विज्ञान है।

तो उस अपने आत्माके रूपमें रहनेवाले आनन्दको अपने हृदयमें उतारनेकी कला आनी चाहिए। आपको जीनेकी कला आती है कि नहीं? रोते-रोते जीते हैं, हाय-हाय करके जीते हैं, मरते-मरते जीते हैं; रोगी-दुःखी, शोकी-मोही होकर जीते हैं। क्या आपका जीवन रोते रहनेके लिए, उद्विग्न रहनेके लिए, तड़पते-कलपते रहनेके लिए है? जबकि सारे रसका खजाना आपके पास है। तो, इस आत्म-रसको, भगवत्-रसको हृदयमें उतारनेकी कला आनी चाहिए। यह जीनेकी एक कला है। इस कलाको बोलते हैं—'रस-रूपा'। आत्म-रूपसे भगवत्-रूपसे जो रस है सो तो है ही, जब हृदयमें व्यावहारिक रूपसे वह रस उतरता है तब आप जिसको छूयेंगे वह भी रस-रूप; जिससे बोलेंगे वह भी रस-रूप; जिसको देखेंगे वह भी रस-रूप—अपने रसको ढलकाते-ढलकाते व्यवहार कीजिए। जो खाते हैं उसीकी कै होती है, मनमें जो भरा होता है वही बोलते हैं। तो मनमें एक बहुत बढ़िया वस्तु भर लेना! अपने दिलको शर्बतसे भरकर रखो। और, वह शर्बत क्या है? भगवान्‌की रस-रूपा भक्ति। **'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा'**—जब वही रस हृदयमें उतरता

है तब उसका नाम प्रेम हो जाता है और जब हृदयमें प्रेम आ गया तब आपकी बोली दूसरी हो जायेगी।

नयनं गलदश्रुधारया वचनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणेन् भविष्यति॥

प्यारे, हम लेंगे तुम्हारा नाम! शुरू-शुरूमें यह हमारे प्यारेका नाम है, ऐसा करना पड़ता है, फिर हमारे प्यारेके हजारों नाम हैं, ऐसा होता है और फिर संसारमें जितने भी नाम हैं वे सब हमारे प्यारेके नाम हैं। जब वस्तु दो नहीं है तब नाम अनेक कहाँसे होंगे? सब उसीके नाम हैं। हमलोगोंके गाँवमें लड़केका नाम मँगरू भी रखते हैं, घुरहू भी रखते हैं, यहाँ भी टिंगू-पिंकू रखते हैं। यदि भगवान्‌को पहचान लें तो सारे नाम भगवान्‌के हो जायँ। पर, पहचान लें तब; भगवान्‌को अपने हृदयमें उतार लें तब। वह दिन कब आवेगा हमारे जीवनमें, जब हम लेंगे भगवान्‌का नाम—

कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण; प्यारे कृष्ण, रसीले कृष्ण,
छबीले कृष्ण, रंगीले कृष्ण, रसरूप कृष्ण

जब हम नाम लेंगे श्रीकृष्णका और आँखोंसे प्रेमके आँसू बहने लगेंगे, कण्ठ गद्‌गद हो जायेगा, शरीरमें रोमाञ्च हो जायेगा, जिसकी ओर देख लेंगे वह प्रेमसे भर जायेगा। जब सुनायी पड़ेगा नाम—यदि प्रेम हृदयमें हो तो—

कृष्ण नाम जब तें श्रवण सुन्यो री आलि,
भूलि री भवन हौं तो बावरी भई री॥

व्रजमें ऐसे बोलते हैं कि जबसे अपने प्यारेका नाम कानोंमें पड़ा—***श्रवण सुन्यो री आलि भूलि री भवन***—दुनिया भूल गयी। तो स्मरणमें, श्रवणमें, उच्चारणमें, भाषणमें, दर्शनमें जिसके हृदयमें प्रेमका आविर्भाव हो जाता है, माने अपना आत्म-रस, भगवद्‌रस हृदय हो जाय। भगवान्‌का होना लोगोंके लिए काफी नहीं है।

'अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।'

सारी दुनिया दुःखी हो रही है और भगवान् हृदयमें बैठे टुकर-टुकर देख रहे हैं। कि नहीं, उनको अपने हृदयमें उतार लो और जब उतार लोगे तब देखोगे कि जो भगवान् है वह तुम्हारा भला नहीं करेगा, जो तुम्हारे हृदयमें भगवान् आवेगा वह तुम्हारा भला करेगा। जो ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म है, सामान्य-चेतन—वह किसीका भला नहीं करता, सबका आत्मा है, परन्तु जब तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे वह वृत्यारुढ़ होता है—हमारी वृत्तिमें आता है; तब अज्ञानकी निवृत्ति होकर जीवन मङ्गलमय हो जाता है।

तो, सृष्टिमें जितने साधन हैं सब उसके उपाय हैं। पर, तुम यदि उपायमें ही रह जाओगे, उपायकी प्राप्ति तो हो गयी, उपेयकी प्राप्ति नहीं हुई तो वह साधन अधूरा रहेगा। साधन-ही-साधन हो—आपके पास नाव बहुत हों और पार न जायें, आपके पास छाता हो पर गिरती हुई धूपपर, वर्षापर उसको लगावें नहीं तो वह किस कामका? ऐसे ही साधन जीवनमें उतारनेके लिए होते हैं। हमारे भीतर जो छिपा हुआ आनन्द है, सुख है, ज्ञान है, भगवान है, आत्मा है, उसको व्यावहारिक रूप देनेके लिए ही साधन होते हैं।

भक्ति जिसके हृदयमें होती है उसको भक्त बोलते हैं। तो यह भक्ति हमारे जीवनमें आ जाय। 'भक्ति अस्यास्ति इति भक्तः।' भक्तिमान्‌को बोलते हैं भक्त। प्रह्लाद कौन हैं? भक्त हैं। उनके हृदयमें भक्ति है। उनको यही लगता है कि हम भगवान्‌को देख रहे हैं, हम भगवान्‌की गोदमें बैठे हैं; उनके शरीरमें ताजी हवा लगती है तो मालूम होता है, भगवान्‌की साँस उनको छू रही है, उनको कोई चीज छूती है तो मालूम होता है भगवान् हमारा स्पर्श कर रहे हैं। शान्तिमें बैठते हैं तो भगवान्, व्यवहारमें बैठते हैं तो भगवान्। इसीसे भक्तोंमें मुख्य प्रह्लाद हैं और प्रह्लादमें जो ह्लाद शब्द है—आह्लाद-आह्लादिनी-

परमानन्द वह प्रह्लादके जीवनमें बिलकुल प्रकट है। चाहे परिस्थिति कैसी भी हो—आग हो, पानी हो, पहाड़ हो, अस्त्र हो, शस्त्र हो, भूत-प्रेत हों, प्रह्लाद आनन्दमें मग्न हैं।

भगवान्‌का भक्त कैसा होता है और कितने विरोधमें और कितनी विरुद्ध परिस्थितिमें भी वह अपनेको भगवान्‌के साथ मिलाये रखता है, भगवान्‌के साथ मिला रहता है—यह बात प्रह्लादके जीवनमें देखने लायक है। जिन्होंने प्रह्लादको भालोंसे छिदवाया, हाथियोंसे कुचलवाया, साँपोंसे डँसवाया, समुद्रमें डुबेगा, इतनी विरुद्ध परिस्थितिमें भी प्रह्लादकी मानसिक दशामें कोई अन्तर नहीं पड़ा। हमलोग तो जरा-जरा-सी बातमें झल्ला जाते हैं! विष्णु-पुराणमें ऐसा लिखा है कि हिरण्यकशिपुके कहनेसे शण्डामर्कने प्रह्लाद पर अभिचार-मारण-क्रियाके लिए पुरश्चरण किया और उस पुरश्चरणसे एक कृत्या राक्षसी उत्पन्न हुई और वह प्रह्लाद पर टूट पड़ी; उनको मारनेके लिए। ब्राह्मणका किया हुआ अभिचार और मन्त्रानुष्ठानसे उत्पन्न कृत्या राक्षसी—इनसे बचनेका तो प्रह्लादके पास कोई उपाय नहीं था। वे हाथ जोड़ कर खड़े रहे। पर, भगवान्‌ने उनकी रक्षाके लिए जो सुदर्शन चक्र रखा था, वह दौड़ पड़ा उस कृत्या राक्षसी पर यह जो दूसरेको मारनेके लिए पुरश्चरण होता है, उसका रूप यह होता है कि जिसको मारनेके लिए किया जाय वह यदि न मरे तो जो करनेवाला होता है उसीको वह मार डालता है। तो कृत्या राक्षसी लौटी और शण्डामर्क आदिको उसने मार डाला। प्रह्लादजी दौड़ कर आये कि ये तो मेरे गुरु हैं—आचार्य हैं, इन्हींसे तो मैं विद्या पढ़ता हूँ, ये दोनों ब्राह्मण मर गये। उन्होंने प्रार्थना की भगवान्‌से—'हे प्रभु, जिन्होंने मुझे भालोंसे छिदवाया, साँपोंसे डँसवाया, आगमें जलाया, समुद्रमें डुबोया, पर्वतसे गिरवाया, जिन्होंने कृत्या राक्षसी उत्पन्न करके मेरे लिए मारण का प्रयोग किया—यदि उनके प्रति भी मेरे मनमें किञ्चित् भी द्वेष की उत्पत्ति

न हुई हो, मैंने उनको नुकसान पहुँचानेका स्वप्नमें भी ख्याल न किया हो, हमारे हृदयमें समता बनी रही हो, तो उस हमारी समताके प्रभावसे ये शण्डामर्क जीवित हो जाय। और उसी क्षण वे दोनों मरे हुए पुरोहित जीवित हो गये और प्रह्लादका स्वभाव, प्रह्लादका चमत्कार देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। यह होता है भक्तका हृदय!

चाहे कोई कितना भी अपराध करे, लेकिन भक्तके मनमें कभी उसके प्रति दुर्भाव उत्पन्न होता ही नहीं। यह है प्रह्लादका जीवन। जिस चित्तमें भगवान् रहते हैं, उस चित्तमें यदि द्वेष, क्रोध, हिंसाकी उत्पत्ति हो जाय तो आग लग जायेगी। संस्कृत भाषामें द्वेषको, क्रोधको आश्रयाश बोलते हैं—आश्रयम् अश्नाति। जैसे आग जिस लकड़ीमें रहती है उसीको जलाती है—तो 'आश्रयाश'—क्या है कि आग जिस लकड़ीमें लगी है, जिसमें ही जल रही है; जिसमें रह रही है उसीको जला रही है। वैसे ही हमारे हृदयमें जो द्वेष होता है, जो क्रोध होता है, जो द्रोह होता है वह हमको ही जलाता रहता है! अब हमारा दिल तो हो गया भट्ठी, उसमें जलने लगी आग! सच पूछो तो जिस पुरुषके दिलमें आग लगी हो, वह अपनी पत्नीके साथ हो तो क्या उसको पत्नीका सुख मिलेगा? उसके पास बहुत धन होगा तो क्या बहुत धनके सुखका अनुभव होगा? वह फूलोंकी सेज पर सो रहा हो तो भी क्या उसको फूलोंकी सेजके सुखका अनुभव होगा? जिस दिलमें क्रोधकी, द्वेषकी आग लग गयी, उसका हृदय भट्टी बन गया। भगवान् भी यदि उसमें होंगे तो छिप जायेंगे। उसकी आत्मा शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होगी! बनी रहे! जीवन्मुक्तिका विलक्षण-सुख उसका नष्ट हो जायेगा!

तो भक्तके जीवनकी यही विशेषता है कि उसमें किसीके प्रति कभी भी दुर्भाव नहीं होता। विष्णु-पुराणमें प्रह्लादजीका बड़े ज्ञानीके रूपमें वर्णन है। परन्तु, उनके ज्ञानमें 'तत् और त्वं' दोनों पदार्थोंकी एकताका बोध है, उन्होंने वेद-शास्त्रोंके अनुसार पहले 'तत्' अर्थात्

शब्द-ब्रह्मका विवेक किया है, 'तत्' अर्थात् तुरीय-ब्रह्मका विवेक किया है, 'तत्' अर्थात् नेति-नेतिसे निषेध करनेके बाद जो सर्वाधिष्ठान ब्रह्म है, उसका विवेक किया है और फिर अपने शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्माको इस परब्रह्म परमात्मासे एक किया है, एक जाना है, एक अनुभव किया है।

वर्णन है कि जिस स्थान ऊँचे पहाड़से प्रह्लादको समुद्रमें गिराया और फिर ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थर उनके ऊपर फेंके गये ताकि वे उसमेंसे निकल न सकें, क्योंकि डर था कि कहीं जिन्दा न रह जायँ, तब उस समय भी समुद्रमें पत्थरोंके नीचे दबे बैठे प्रह्लादजी सोचते है दिव्य-पुराणमें है—

सर्वगत्वा वयं तस्य सः ऐवाहम।
मत्तः सर्वं अहं सर्वं मयि सर्वं सनातने॥

अनन्त परमात्मा-सारी लम्बाई-चौड़ाईका पूर्व, उत्तर-दक्षिणका जो कल्पित खण्ड-खण्ड परिच्छेद है इसके अत्यन्ताभावके अधिष्ठान हैं और ये जो कल्पित खण्ड-खण्ड काल है—भूत-भविष्य-वर्तमान—इनकी कल्पनाके अधिष्ठानके रूपमें परमात्मा स्थित है। तो जो इस कल्पना-वृत्ति वाले अन्तःकरणका प्रकाशक है, वही कल्पित देश-काल-वस्तुका भी प्रकाशक है। क्योंकि, ये सब-के-सब कल्पनाके पेटमें हैं! जिस वस्तुको भी अनादि और नित्य माना जाता है हमारे अन्तःकरणमें कल्पित ही होती है। क्योंकि अनादि माने उसकी आदि न पा सकनेके कारण उसके अनादित्वकी कल्पना; जो नित्य है उसका आदि-अन्त न पा सकनेके कारण उसके नित्यत्वकी कल्पना। तो जो हमारे अन्तःकरणका प्रकाशक चैतन्य है वही उस कल्पनाका भी प्रकाशक चैतन्य है, इसलिए **स एवाहें वस्थितः**—मुझमें और उसमें भेद नहीं है, मैं वही हूँ। प्रह्लादजी कहाँ बैठे हैं? कि समुद्रमें, पत्थरोंसे दबे हुए और जो उनका उद्गार निकला—

'मत्तः सर्वं'—मुझसे सब प्रकाशित होता है, 'अहं सर्वं'—मुझसे पृथक् कुछ नहीं है—जो कुछ मालूम पड़ रहा है सो मुझ सर्वाधिष्ठान, स्वंप्रकाश चिद्-वस्तुमें! तो पहाड़ फट गये, समुद्रने प्रह्लादको ऊपर कर दिया, निकल आये प्रह्लाद। आगमें बैठाया गया प्रह्लादको—बुआ लगती थी प्रह्लादकी—उसने अपने भाईसे कहा—भाई, आप बहुत परेशान लगते हैं, हमको वरदान है कि हम आगमें बैठेंगे तब भी नहीं जलेंगे। तो हम प्रह्लादको गोदमें लेकर आगमें बैठ जाते हैं, आप आग लगवा दो, प्रह्लाद जल जायेगा और हम बच जायेंगे। आगमें बैठ गयी लेकर प्रह्लादको! भगवान्‌की महिमा देखो-आग जली, बुआ तो जल गयी और प्रह्लाद बच गये। हिरण्यकशिपुने पूछा—अरे प्रह्लाद, तेरे अन्दर क्या चमत्कार है? प्रह्लाद बोले—

राम नाम जपतां कुतोभेयं सर्वताप रामनैक भेषजम्।
पश्य तात मम गात्र सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायते पुनः॥

पिताजी, जिनके मुखमें राम-नाम है उनके लिए भय कहाँ है? यह तो जितने भी संसारके ताप हैं आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, मनकी उथल-पुथलसे संताप है, बिजली गिरनेसे संताप है, आग लगनेसे संताप है—सारे, संताप शान्त हो जाते हैं भगवान्‌का नाम उच्चारण करनेसे! आप देख लीजिए ना अपनी आँखसे—

पश्य तात मम गात्र सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायते पुनः

पिताजी, भगवान्‌के नामका प्रत्यक्ष चमत्कार देखो कि मेरे शरीरके पास आकर अग्नि भी पानी बन जाता है!

प्रह्लादके जीवनमें ऐसी-ऐसी अद्‌भुत घटनाएँ आती हैं—एक नृसिंह-पुराण है-विष्णु-पुराणसे बहुत बड़ा है—प्रह्लादके जीवनकी एक घटना है—हम आपको प्रोवोचित करते हैं। माने आपके मनमें पुराणोंके श्रवणकी, पढ़नेकी अभिरुचि जाग्रत हो। हमने आजकलकी बहुत सारी कहानियाँ भी पढ़ी हैं। ऐसे बोलना नहीं चाहिए अपने बारेमें,

लेकिन हमने रवीन्द्र-बाबूकी सब-की-सब कहानियाँ पढ़ी हैं, प्रेमचन्दकी पढ़ी हैं, टॉलस्टायकी सब कहानियाँ पढ़ी हैं और आजकल जो छायामें, मायामें कहानियाँ रहती हैं उनके विषयमें भी मैं जानता हूँ! लेकिन पुराणोंमें जैसी मनोवैज्ञानिक और जीवनके सत्यको स्पर्श करने वाली कहानियाँ हैं वैसी कहानी आज कहीं भी देखनेको नहीं मिलती हैं। प्रह्लादके एक पुत्र थे, उनका नाम था विरोचन और देवताओंके गुरु बृहस्पतिके पुत्र थे कच। यह कथा भी पुराणमें है—एक दिन विरोचन और कच-दोनों एक ऐसी जगह पहुँच गये जहाँ एक सुन्दरी युवती कन्या तपस्या कर रही थी! बड़ी सुन्दर थी, स्वस्थ थी और धर्ममें निष्ठा रखनेवाली थी। दोनोंने जाकर उनसे याचना की कि तुम हमारे साथ विवाह कर लो। प्रह्लादके पुत्र विरोचनने कहा कि तुम हमारे साथ विवाह करो, मैं महाराजाधिराज प्रह्लादका पुत्र हूँ, उनका उत्तराधिकारी हूँ और हमारा राज्य भी कैसा है यह देखो! स्वयं भगवान्‌ने प्रह्लादको वर दे दिया है कि हम अपने हाथसे तुम्हारे वंशको कभी नहीं मारेंगे—तो हम निर्भय हैं, मरनेका डर नहीं और हमारे बापकी जो गद्दी है वह गद्दी भी, उसके लिए तुम यह मत समझना कि वह दैत्योंकी गद्दी है! क्योंकि हिरण्यकशिपुको मार कर नृसिंह भगवान्‌ने पहले प्रह्लादको गद्दी पर नहीं बैठाया, स्वयं जाकर बैठ गये और जब स्वयं बैठ गये तब अब वह असुर की गद्दी नहीं रही, असुरका सिंहासन नहीं रहा, भगवान्‌का प्रसाद हो गया और उस भगवान्‌के प्रसादके उत्तराधिकारी हैं प्रह्लाद और मैं प्रह्लादका उत्तराधिकारी विरोचन और मैं सब देवताओंसे श्रेष्ठ हूँ। तुम मेरे साथ विवाह कर लो।

कचने कहा कि मैं देवताओंके गुरु-बृहस्पति—जो सबसे बड़े वेद-शास्त्रके विद्वान् हैं और पवित्र आचरणवाले महात्मा हैं, तत्त्वज्ञानी हैं, उनका पुत्र कच हूँ और मुझसे श्रेष्ठ सृष्टिमें और कोई नहीं है, तुम मेरे साथ विवाह कर लो। उस कन्याका नाम था—केशिनी। 'केशिनी'

माने जिसके केश बहुत सुन्दर और वह बुद्धिमती भी थी। उसने कहा कि देखो हम विवाह करनेके लिए तो तैयार हैं, पर हमारा संकल्प यह है कि जो सर्वश्रेष्ठ हो; उससे हम विवाह करें! तुम दोनों अपनेको श्रेष्ठ बता रहे हो, पर यदि यह निश्चय हो जाय कि तुम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है, तो उसके साथ मैं विवाह कर लूँगी। केवल चमड़ीकी श्रेष्ठता ही श्रेष्ठता नहीं होती, श्रेष्ठता तो सद्‌गुणोंसे होती है, सद्‌भावसे होती है। अब दोनोंमें हो गया विवाद और निर्णायक बनाये गये प्रह्लाद। दोनोंने यह माना कि जो निर्णय प्रह्लाद करेंगे वह दोनोंको मान्य होगा और शर्त लगी यह कि जो श्रेष्ठ होगा उसके साथ विवाह होगा और जो कनिष्ठ होगा उसका सिर काटा जायेगा! जब यह न्याय करनेके लिए प्रह्लादके सामने पहुँचे तब कचको देखकर प्रह्लाद खड़े हो गये-हे ब्राह्मण देवता, विद्वान् बृहस्पतिके पुत्र आओ, सिंहासन पर बैठो। विरोचनने कहा—पिताजी मैं? तब बोले कि मुझसे बृहस्पति श्रेष्ठ हैं और तुमसे कच श्रेष्ठ हैं। विरोचन बोला—हमारा सिर कट जायेगा। यह हम नहीं जानते हैं, हम तो न्याय करते हैं! प्रह्लादजीने न्याय दिया।

जब निर्णय हो गया कि विरोचनका सिर कटेगा और केशिनीके साथ कचका विवाह होगा, तब उन्होंने विरोचनकी गर्दन पकड़ी और उसको ले जाकर कचके पाँवों पर डाल दिया और कहा कि देखो, मैं यह अपना बेटा तुमको समर्पित करता हूँ, तुम चाहे इसका सिर काट दो चाहे इसको जिन्दा रखो। और, कचने कहा कि तुम इतने न्याय-निष्ठ, इतने धर्म-निष्ठ, अपने पुत्रका भी पक्षपात नहीं करनेवाले! यदि तुम्हारा पुत्र इस प्रसङ्गमें मर जायेगा तो संसारमें फिर कोई धर्म नहीं करेगा, न्याय नहीं करेगा, न्याय-निष्ठ नहीं होगा। तो हमेशा धर्मकी, न्यायकी रक्षा हो इसलिए मैं तुम्हारे पुत्रको जीवन-दान देता हूँ। ऐसे न्याय-निष्ठ थे भक्त प्रह्लाद!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१०)

यह जितना शास्त्र-विस्तार है, यह ब्रह्मके लिए नहीं है कि ब्रह्म शास्त्र पढ़ेगा तो विद्वान् हो जायेगा। यह ईश्वरके लिए भी नहीं है कि ईश्वर शास्त्र पढ़ेगा तो उसका ज्ञान बढ़ जायगा। यह माया प्रकृतिके लिए भी नहीं है। ये तो बिना शास्त्र पढ़े ही इतनी निपुण है कि क्या पूछना? तो शास्त्र जितना भी है वह मनुष्यके जीवनके लिए होता है। शास्त्रका एक मात्र अधिकारी मनुष्य होता है। पशु-पक्षी इसके अधिकारी नहीं होते—वे आपकी पोथी नहीं पढ़ेंगे—खा जायेंगे, चाट जायेंगे या फाड़ देंगे-शास्त्रका अधिकारी केवल मनुष्य होता है।

तो जब हम शास्त्र पढ़ते या सुनते हैं तब उसमें यह अनुसन्धान जरूर होना चाहिए कि इससे मनुष्य-जीवनको क्या लाभ होता है। असलमें शास्त्र मनुष्य-जीवनको सर्वोत्कृष्ट स्थितिमें पहुँचा देनेके लिए ही होते हैं क्योंकि इस विश्व सृष्टिमें मनुष्यसे बड़ी और कोई चीज नहीं है।

न मानुषात् श्रेष्ठतरं किञ्चित्।

मनुष्यसे श्रेष्ठ सृष्टिमें और कोई वस्तु नहीं है। वेदमें तो लिखा है कि यह जो मनुष्यका हाथ है या साक्षात् भगवान् है—ऋग्वेद्में एक कथा है—एक व्यक्ति मर गये थे, ऋषि आये, देखा मुर्दा पड़ा है, ते अपना हाथ मुर्दे पर फिराने लगे! किसीने कहा कि मुर्दे पर अपना हाथ फिराते हो, इससे क्या होगा? तो मन्त्र है—

'अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे हस्तो भगवत्तरः'।

यह मेरा हाथ भगवान् है; यह मेरा हाथ भगवान्‌से बढ़कर है। औरोंके पास तो हाथ ही नहीं है। चिड़ियाके पास हाथ कहाँ है? गाय-बैल, ऊँट, गधे, घोड़े-हाथीके पास हाथ कहाँ है? हाथ तो मनुष्यकी एक खास विशेषता है। यह अपने कर्मके द्वारा भगवान्‌की सेवा करता है।

इसमें-एक प्रणाली यह है कि हम पहले अपने मनको बाहरसे भीतर ले आवें और छोटा-से-छोटा बनाकर परमात्मासे मिला दें। तब परमात्माकी शक्ति हमारे जीवनमें उतर आवेगी; हमारा सम्मिश्रण हो जायेगा परमात्माके साथ और भगवत्-शक्ति हमारे जीवनमें प्रकट हो जायेगी। हमारे एक महात्मा थे वृन्दावनमें, तो उनसे एक सत्सङ्गीने पूछा कि भगवान्‌के टेलीफोनका नम्बर क्या है? उन्होंने उत्तर दिया कि उनका नम्बर 'शून्य' है। खाली कर दो अपना दिल और उनका नम्बर मिल जायेगा। अपने दिलको संसारकी भावनाओंसे खाली कर दो और वह परमात्मासे मिल जायेगा! यह आध्यात्मिक-प्रणाली है अन्तःकरण-शुद्ध करनेकी। इसको निवृत्ति-प्रधान भी बोलते हैं। जाना नहीं है लौटना है, अपने आपमें आ जाओ! तो लोभ भी दूसरेका होता है, क्रोध भी दूसरेपर आता है, मोह भी दूसरे पर होता है, काम भी दूसरे पर होता है, जब तुम अपने आपमें लौट आओगे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा! और, भगवान् तो वहाँ रहते ही हैं—**'हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'** फिर टेलीफोन भी नहीं करना पड़ेगा, तुम्हारे घरमें ही तुमको मिल जायेंगे! हैं तुम्हारे घरमें ही, तुम पहचानते नहीं हो। देखो—एकनाथजीके घरमें भगवान् चौदह वर्ष तक रहे—उनके बर्त्तन माँजते थे, उनके पाँव दबाते थे, कपड़े धोते थे—घरमें थे, पर कोई पहचानता नहीं था। तो, एक प्रणाली यह है कि अन्तःकरणको निर्दोष करनेके लिए हम बाहरसे लौट कर अपने हृदयमें आकर बैठ जाँय।

एक दूसरी प्रणाली और देखें—इसका गुर आप नोट कर लें—हम वेदान्तकी बात नहीं करते हैं, न भक्तिकी बात करते हैं! जो वस्तु सर्वदेशमें, सर्वकालमें, सर्वरूपमें रहती है वह भीतर ही मिले, यह नियम नहीं बनाया जा सकता। वह बाहर भी मिल सकती है। और, वह बाहर ही मिले भीतर नहीं मिले—यह नियम भी नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि, वह भीतर भी मिल सकती है। तो, जो वस्तु परिपूर्ण होती है, सर्वत्र होती है—वह प्रवृत्तिसे भी मिल सकती है, वह निवृत्तिसे भी मिल सकती है। यह तो साम्प्रदायिक धारणाएँ होती हैं कि वह तो भीतर ही मिलेगा अथवा बाहर ही मिलेगा—अन्तर्यामी, बहिर्यामी। ईश्वरके बारेमें यह बात लागू नहीं होती है! इसका गुर यही है कि जो भीतर है वही बाहर है, जो बाहर है वही भीतर है। आपने वेदका मन्त्र पढ़ा ही होगा—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इहनानेव पश्यति॥

(कठो० २.१.१०)

जो वहाँ है वही यहाँ है और जो यहाँ है वही वहाँ है। तो यहाँ भी मिल सकता है, वहाँ भी मिल सकता है। यहाँ और वहाँमें कोई फर्क नहीं है! परमात्मा माने अमर जीवन—आप कभी मरेंगे नहीं; परमात्मा माने सर्व-विषयक अखण्ड-ज्ञान—परिपूर्ण ज्ञान; परमात्मा माने परिपूर्ण आनन्द—नित्य-प्राप्त आनन्द—वह आपको मिलेगा, आप आइये तो!

तो, एक प्रणाली है—निवृत्ति-प्रधान! उसमें मोह-ममता, लोभ, अहंकार, क्रोध—सब—जैसे साँपके शरीरसे केंचुल छूट कर गिर पड़ती है वैसे ही ये सब गिर पड़ते हैं!

दूसरी प्रणाली है—सर्व-रूपमें परमात्माका अनुभव। सर्वरूपमें जो आवे। उद्धवजीने गोपियोंसे कहा कि तुम श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए

प्रार्थना करो—किसी देवताका ध्यान कर लो या योगाभ्यास कर लो, या तुम ईश्वरका भजन करो, तो तुमको तुम्हारे प्यारे मिल जायेंगे! गोपियोंने कहा कि उद्धवजी, तुम क्या बोलते हो?—

ऊधौ मन न भये दस-बीस।
एक हुतौ जो गयो श्याम-सङ्ग, को आराधे ईश॥

देखो, कृष्ण मथुरामें हैं तो गोपीका मन मथुरामें जाकर कृष्णाका अनुध्यान कर रहा है। उद्धवजीने कहा कि अच्छा, हृदयमें ही ध्यान करो, मथुरा नहीं ये हैं वे, यहीं हैं—यहीं ध्यान करो। बोली—किसका ध्यान करें? कि ईश्वरका, वे कृष्णको बुला देंगे! बोलीं—

हिय में रह्यो नाहिन ठौर।
नन्द-नन्दन अछत, कैसे आनिए उर और॥

हमारे हृदयमें उद्धवजी जगह नहीं है, श्याम-सुन्दर उसमें पहलेसे ही भरे हुए हैं, अब हम उसमें दूसरे ईश्वरको लाकर कहाँसे बैठावें?

उद्धव फिर बोले—कृष्णके वियोगमें तुम बहुत दुःखी हो रही हो गोपियों!

बोलीं—कौन कहता है वियोग है? यह देखो श्याम! यह देखो श्याम! यह देखो श्याम! सब श्याम-ही-श्याम है!

तो प्रवृत्ति भी ईश्वरकी प्राप्तिका साधन है। जब सर्व परमेश्वर है—यह भाव हृदयमें आवेगा। ये वेदान्ती लोग जो भावको भाव कहकर उड़ाते हैं—भाव कोई पाप है कि करनेसे आदमी नीच हो जायेगा? किस शास्त्रमें लिखा है कि भाव पाप है? अच्छा, जिस अन्तःकरणमें भाव होता है उसी अन्तःकरणमें तुम्हारी प्रमा होती है कि नहीं? प्रमा भी अन्तःकरणकी एक स्थिति है-भले एक क्षणके लिए। लेकिन, अन्तःकरणमें प्रमा हुए बिना तत्त्वका साक्षात्कार तो नहीं हो सकता न? यह प्रतिपादन करनेवाले आपके जो मौसमी लोग हैं—मौसमी

आचार्य आपलोग मौसमी आचार्यका मतलब न समझते हों तो हम इसे बता देते हैं। 'मौसमी आचार्य' माने मेंढ़क—बरसातके दिनोंमें ये बहुत आवाज करते हैं—टर्र-टर्र मन्त्र बोलते हैं। माने उनके मौसम आते हैं और बीत जाते हैं। तो सच्चा जो वेदान्त है—वेद-वेदान्त, उपनिषद्—हमारे शङ्कराचार्य आदि आचार्योंके द्वारा वर्णित—वह वेदान्त जब हृदयमें आता है—जिज्ञासुके अन्तःकरणमें जब महावाक्य-जन्य प्रमा उदय होती है तब वह अन्तःकरणमें उदित प्रमा ही अज्ञानको दूर करती है और तभी परमात्माका साक्षात्कार होता है और भाव भी उसी अन्तःकरणमें होता है।

तो देखो, हमारे जीवनके दोषोंको, दुर्गुणोंको, दुर्भावोंको मिटानेके लिए चाहिए—भगवान्‌की भावना। भागवतमें ऐसे बताया कि यज्ञ करनेसे जो अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, उपासना करनेसे जो होती है, योग करनेसे जो होती है उसके लिए कुछ-न-कुछ क्रिया करनी पड़ती है। यज्ञ करोगे तो यज्ञशालामें जाकर कैद होना पड़ेगा और योग करोगे तो भीतर कैद होना पड़ेगा और उपासना करोगे तो मन्दिरमें जाना पड़ेगा। तो हम एक ऐसी भावना तुमको बताते हैं कि न यज्ञशालाके अन्दर प्रवेश करना पड़े, न आँख मूँद कर समाधि लगानी पड़े, न मन्दिरमें जाना पड़े। जो भी तुम्हारे सामने आवे—भागवतके ग्यारहवें स्कन्धका श्लोक है—

सर्वभूतेषु मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥ ११.२९.१४

जो भी तुम्हारे सामने आवे—पशु-पक्षी-मनुष्य-देवता—भाव करो—यह भगवान् है! उसके हाड़-मांस-चामको मत देखो, उसकी शकल-सूरतको मत देखो, उसकी जात-पाँत मत देखो! उसके मनकी कैसी बनावट है अच्छी कि बुरी—यह भी मत देखो! क्या देखो कि इसमें तो भगवान् बैठ कर आये हैं! एक चींटीमें भी वही, मच्छरमें भी वही,

जुँएमें भी वही, मनुष्यमें भी वही, पशुमें भी वही! माने वह कहाँ है, कहाँ नहीं है—इस बातका ध्यान मत रखो, तुम्हारे हृदयमें बस भगवत्-भाव बना रहे।

देर नहीं लगेगी। फिर तुम किसीसे स्पर्धा नहीं करोगे कि यह हमारी बराबरी कैसे करता है। किसीके गुणमें दोष नहीं निकालोगे; किसीका तिरस्कार नहीं करोगे; किसी वस्तुके कारण अहङ्कार नहीं होगा और तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा। अब इसमें न यज्ञशाला है, न भीतरका योग है, न मंदिरकी उपासना है। यहाँ तो एक भाव है—**'सर्वभूतेषु मद्भावं'** ऐसी पैनी नजर जो हड्डी-मांसके भीतर, अन्तःकरणके भीतर, जीवके भी भीतर जो चित्त रहता है—हमारी आँख, हमारी बुद्धि उस प्रभुको देखने लगे। तो जैसे निवृत्तिसे हृदयमें परमात्माका अनुभव होता है वैसे ही प्रवृत्तिसे भी परमात्माका अनुभव हो सकता है।

'प्रवृत्तिर्नोपयुक्ता चेन्निवृत्तिः क्वोपयुज्यते'

पंचदशीमें विद्यारण्य स्वामीने वेदान्तके ग्रन्थमें यह लिखा है कि अच्छा, प्रवृत्तिसे कोई लाभ नहीं है तो निवृत्तिसे क्या लाभ है? कि—

'बोधहेतुर्निवृत्तिश्चेद्बुभुत्सामां तथेतरा'

निवृत्तिसे बोध होता है तो प्रवृत्तिसे जिज्ञासा होती है और जहाँ सम्यक् बोध होता है वहाँ निवृत्ति और प्रवृत्ति समान हो जाती है! फिर यह समता कहाँ आवेगी? तो अन्तःकरणमें ही प्रवृत्ति है, अन्तःकरणमें ही निवृत्ति है, अन्तःकरणमें ही दोनोंका उपमर्दन है और अन्तःकरणमें ही समता है। तो, यदि शास्त्र पढ़करके, वेदान्त श्रवण कर करके, सत्सङ्ग करके आपके अन्तःकरणमें परिवर्तन नहीं होता है—वही काम, वही क्रोध, वही लोभ, वही मोह, वही विषाद तब उससे क्या लाभ—**'तत्र को मोहः,'-'एकत्वे तत्वतः'** एकत्वमें क्या शोक है क्या मोह है? जिस व्यक्तिको एकत्वका साक्षात्कार हुआ है उस व्यक्तिमें शोक-मोह

नहीं होता। यदि आप करोड़-करोड़ ग्रन्थ पढ़ें, करोड़-करोड़ सत्सङ्ग करें, जप करें, तप करें, व्रत करें और यह न देंखे कि हमारे अन्तःकरणमें कितनी पवित्रता–अपवित्रता भर रही है! यदि आपने साधन किया है, सत्सङ्ग किया है, श्रवण किया है, मनन किया है तो आपके हृदयमें वह पवित्रता आनी चाहिए जिसमें शोक, मोह, भय, दुःख-दारिद्रय सब-के-सब निवृत्त हो जाते हैं!

एक गरीब था, रोज जो कुछ मिलता उसको खर्च कर देता! ऐसे ही वृन्दावनमें भी एक महात्मा थे, उनके पास सौ-दो सौ साधु रहते थे। लेकिन, एक-दिनकी भीख एक दिनमें खर्च कर देते थे दूसरे दिनके लिए नहीं रखते थे। ऐसे ही एक गरीब भीख माँगता था। एकदिन उसके पास रात तक दो पैसा खर्च नहीं हुआ। उसने बाँधकर रख लिया–अच्छे काममें लगावेंगे। दूसरे दिन सामनेवाले भिखारीसे पूछा–क्या करें? उसने हँसी उड़ायी। औरोंसे पूछा तो किसीने कह दिया कि पण्डितजीके पास जाओ! पण्डितजीके पास गया तो बोले कि पहले दो रुपया हमारी फीस दो तब बतावेंगे। अब उस बेचारेके पास तो दो ही पैसे थे, लौट आया। फिर किसीने कह दिया कि किसी गरीबको दे दो! अब वह लोगोंसे पूछने लगा कि गरीब कौन है? स्वयं गरीब था, पर लोगोंसे पूछने लगा कि गरीब कौन है, गरीब कौन है? एक दिन देखा कि बड़ी भारी सेना चली जा रही हैं। पता लगा कि एक राजा दूसरे राजा पर आक्रमण करने जा रहा है। क्यों आक्रमण करने जा रहा है? पता लगा कि जिस राज्य पर आक्रमण करने जा रहा है वह बड़ा धनी है, वहाँ उसको जीतकर हीरा-मोती-जवाहरात आदि लूट कर ले आवेगा। अच्छा! गरीब होगा, तभी तो धनके लिए दूसरों पर आक्रमण करेगा, दूसरोंका खून करेगा। तो चलें पैसा इसको ही दे दें। और, ऐसा सोचकर जहाँसे सेना निकल रही थी वहाँ जाकर बैठ गया रास्तेमें और जब राजाकी सवारी आयी तब उसने झटसे जाकर दो

पैसेकी नजर उनके सामने रख दी। अब उनको तो आजतक किसीने दो पैसा दिया ही नहीं था। बोले—यह क्या मजाक है? बोला—हमको बहुत दिनोंसे एक गरीबकी खोज थी महाराज, आज मिल गया। बोले—अरे, हम गरीब हैं? बोले—जब तुम धनके लिए दूसरोंपर आक्रमण करने जा रहे हो, सैकड़ों आदमियोंको मारोगे, लाखोंको हानि पहुँचाओगे तो तुमको धनका लालच है तभी न? तो तुमसे अधिक गरीब मुझे और कौन मिलेगा? जो धनके लिए बेईमानी करता है, चोरी करता है, दूसरोंकी जेब काटता है, दूसरोंको नुकसान पहुँचाता है उसका नाम गरीब है, जिसके पास कुछ नहीं है वह गरीब नहीं है। भर्तहरिका श्लोक है—

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशालाः।
मनसि परितुष्टः को अर्थवान् को दरिद्रः॥

जिसके मनमें तृष्णा भरी है वह दरिद्र है और जिसके मनमें तृष्णा नहीं है उसके लिए धनी और गरीबमें कोई फर्क नहीं है।

पर यह तृष्णा मिटेगी कैसे? कि जब श्रीकृष्णके लिए तुम्हारी तृष्णा होगी और जब श्रीकृष्ण तुम्हारी तृष्णा करेंगे और तुम देखोगे कि हम कर्त्ता हैं तो सब कर्त्ता हैं और हम अकर्त्ता हैं तो सब अकर्त्ता हैं, हमारे हृदयमें भगवान् हैं तो सबमें भगवान् हैं, हमारे हृदयमें समता है तो सबमें समता है।

'तृष्णा' माने संस्कृतमें प्यास होता है। जैसे पानी पीनेकी प्रबल व्याकुलता हृदयमें आती है वैसे ही संसारकी वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए जब प्रबल व्याकुलता अपने हृदयमें आती है तब उसको 'तृषा' कहते हैं, 'तर्ष' कहते हैं, 'तृष्णा' कहते हैं। 'तृक्' भी कहते हैं। यह है बाहरकी वस्तुके लिए तीव्र व्याकुलता-केवल लालसा नहीं। लालसासे बढ़कर उत्कण्ठा है और उत्कण्ठासे बढ़कर व्याकुलता है। तो जब हम व्याकुल हो जाते हैं कि यह चीज हमको खानेके लिए चाहिए ही, हमको

कामकी पूर्ति चाहिए ही, हमको धनकी प्राप्ति चाहिए ही, और सबके लड़के पीछे रह जायें। हमारे पास सिफारिश लेकर आते हैं लोग और जिनके लड़कोंके अच्छे नम्बर होते हैं वे नहीं आते हैं जिनके बच्चोंके नम्बर कम होते हैं वे लोग आते हैं और मुझसे कहते हैं कि महाराज, आप सिफारिश कर दो हमारा लड़का ले लिया जाय। अरे भाई, इसके बीचमें जो सौ लड़कोंके ऊपर तुम्हारे लड़केका नाम रखा जायेगा तो उन सौ लड़कोंके साथ अन्याय होगा कि नहीं होगा? सौ लड़के जो आगे जानेके लिए अच्छे नम्बर लेकर बैठे हैं उनको पीछे रखकर तुम्हारे लड़केको कम नम्बर मिलने पर भी ऊपर कैसे बैठावें—अन्याय होगा? तुम्हारे लड़केका पक्षपात क्यों हो? इसका नाम है मोह, जो हमारी बुद्धिको अन्यायकी ओर ले जाता है, इसका नाम है काम—हमको वह स्त्री, वह पुरुष मिलना ही चाहिए—जो कुछ भी हो जाये, हमारा दुश्मन मरना ही चाहिए चाहे वह कितना भी न्यायके पथपर हो।

तो, यह जो तृष्णा है हमारी बुद्धिमें, यह हमें कहींका नहीं रहने देती। और कहो कि तृष्णा कभी बुझ जायेगी। तो—**'अन्तो नास्ति पीपासयाः'**—इस प्यासका कभी अन्त नहीं होता, एक मिले दो चाहिए, दो मिले चार चाहिए, चार मिले आठ चाहिए, बिलकुल बढ़ती, बिलकुल बढ़ती ही जाती है।

राजनीतिज्ञ कहते हैं कि भाई, संविधानके विरुद्ध आचरण मत करो, धर्मात्मा लोग कहते हैं कि धर्मके विरुद्ध आचरण मत करो, योगी लोग कहते हैं कि 'तृष्णा'का निरोध कर दो और भक्तोंका कहना बड़ा प्यारा, बड़ा मधुर है। भक्त लोग कहते हैं कि यह तृष्णा भगवान्‌के साथ जोड़ दो—

कामिहि नारी पियारी जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहिं मोहि राम॥

क्योंकि तृष्णा तो रहेगी तुम्हारे दिलमें, अनादि-कालसे प्रकृतिकी धारामें तृष्णा बह रही है, यह किसीके मारे मरी नहीं है। अब तक संन्यासी विरक्तोंने इसकी बड़ी निन्दा की, न यह संन्यासियोंके मारे मरी और लोभी लोगोंने इसको पूरी करनेकी बहुत कोशिश की। इसको हम आप लोगोंसे ज्यादा समझते हैं और गृहस्थोंके पूरी किये यह पूरी हुई नहीं। आजतक किसी भी देवताकी तृष्णा पूरी नहीं हुई—ब्रह्मा, विष्णु, महेश-किसीकी नहीं। तो इस तृष्णाका जो मुँह है वह भगवान्‌की ओर फेर दो। हम किसके प्यासे हैं? कि भगवान्‌के प्यासे हैं। वह परम-दयालु है, सर्वज्ञ है, सर्व-शक्तिमान है, हमारे हृदयमें बैठा हुआ निराकार—वह मुरली-मनोहार, पीताम्बरधारी, राधारमण, मन्द-मन्द मुस्कानवाला, प्रेमभरी चितवनवाला वह हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए व्याकुल-कातर है, उस प्रभुकी तृष्णासे अपनी बुद्धिको भर लो। लालचसे लड़ो मत, लालचको पूरा मत करो, लालचको मिटाओ मत। लड़कीको एकके साथ जोड़ दो—ब्याह कर दो उसका। ब्याह न करने पर भी पागल होनेका डर है और अनेकसे मुहब्बत हो जाने पर भी भ्रष्ट हो जानेका डर है। इसलिए, एकके साथ उसको जोड़ो—

ऐसे वर को के वरुँ जो जन्मै और मर जाय।
वर वरिये गोपालू जू, म्हारौ चुड़लो अमर हो जाय॥

अपनी तृष्णा जोड़ो भगवान्‌के साथ!

महात्माका स्वरूप क्या है? बोले कि कृष्ण-कृष्ण। महात्माका एक नाम ही है—'कृष्ण-तृष्णा'। श्रीशंकराचार्य भगवान् बोलते हैं हमारे मनमें कोई तृष्णा नहीं है—

भगवती तव तीरे नीर मात्ता सनोहं,
विगत सकल तृष्णाः - कृष्ण माराधंयामि।
सकल कलुष भङ्गे स्वर्ग सोपान सङ्गे,
तरल तरल तरङ्गे देवि गंगे प्रसीद॥

हे गंगा मैया, हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारे किनारे केवल पानी पीकर मैं तपस्या कर रहा हूँ, संसारकी कोई तृष्णा नहीं है, अब हमारे अन्दर तृष्णा है तो केवल कृष्ण तृष्णा है। कृष्ण-विषया-तृष्णा—केवल कृष्णकी प्राप्तिकी प्यास है मेरे हृदयमें और कोई प्यास नहीं है।

बोले कि नहीं—

कृष्णस्य तृष्णैव मूर्तिमतिः।

जब भगवान्‌के मनमें प्यास लगी कि मैं खाऊँ, मैं पीऊँ तो उनको कौन मिले दूसरा? तो उनकी प्यास महात्मा बनकर सामने आये। भगवान्‌के हृदयमें अपने भक्तसे मिलनेकी जो प्यास है, वह महात्माका रूप है और महात्माके मनमें जो भगवान्‌से मिलनेकी प्यास है, वह प्यास ही महात्माका रूप है। इसलिए वृन्दावनमें जब राधारानीका वर्णन करते हैं तब कहते हैं कि—

प्यास ही को रूप मानो प्यारीजू को रूप है

श्रीराधारानीका स्वरूप क्या है? प्यास!

तो जो तृष्णा हमारी बुद्धिको भ्रष्ट करके कामान्ध बनाती है, क्रोधान्ध बनाती है, मोहान्ध बनाती है उस तृष्णाको ही यदि हम पकड़कर भगवान् श्रीकृष्णके प्रेम-समुद्रमें डुबो दें तो उस तृष्णाका ऐसा रसायन बन जाता है—तृष्णा ऐसी रसीली बन जाती है कि उसमें सच्ची बुद्धि, सच्चा-ज्ञान, सच्चा रस उदय हो जाता है। भक्त प्रह्लादका जीवन इसका प्रमाण है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(११)

श्रीमद्भागवतमें कहा है कि इतने गुण प्रह्लादमें थे, इतने सद्गुण प्रह्लादमें थे कि किसी एक व्यक्तिको जब सर्वगुणोंका खजाना बताना होता, देवता जो कि दैत्योंके परम-शत्रु हैं, देवताओंकी सभामें जब कभी चर्चा होती कि संसारमें सद्गुण सम्पन्न कौन है तो निःसंकोच प्रह्लादका नाम लिया जाता था। सद्गुणके धनीको तौलना होता तो दूसरी ओर प्रह्लाद रखे जाते थे। 'प्रतिमान प्रकुर्वन्ति।'—कोई वजनदार होवे तो ऐसा होवे, कोई सद्गुणी होवे तो ऐसा होवे। तो भक्त माने आवल-बावल नहीं होता। भक्त माने अपने प्यारेको जैसे अच्छा लगे वैसा बनना। अपने मनका बनकर रहना—यह भक्तकी पहचान नहीं है। मीराका पद, आपने सुना ही होगा—

जाँ भेषाँ म्हारा साईं रीझै सोइ भेष धरूँगी।

मीरा कहती है कि जिस भेषके धारणसे मेरा स्वामी रीझेगा वही भेष मैं धारण करूँगी।

अब भगवान्‌के गुणोंका भी विचार करना आवश्यक हो जाता है—वे किन गुणोंको पसन्द करते हैं। प्रह्लादका वर्णन है भागवतमें—

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक्।
दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः॥

भा. ७.४.३३

प्रह्लादजी कैसे थे? कि चाहे कितना बड़ा भी दुःख आ जाय, उनके चित्तमें उद्वेग नहीं होता था। और, संसारमें किसी वस्तुकी चाहे कितनी भी प्रशंसा हो, कितनी भी निन्दा हो—चाहे वह स्वर्गकी वस्तु

हो, चाहे मर्त्यलोककी वस्तु हो—कितनी भी प्रशंसा सुननेमें आवे कि यह वस्तु बहुत अच्छी, यह वस्तु बहुत अच्छी, लेकिन प्रह्लादके मनमें उस वस्तुके लिए स्पृहा उत्पन्न नहीं होती। और संसारके जो गुण हैं—सात्त्विक-राजस-तामस गुण—उनको वे सच्चा नहीं समझते थे। संसारकी स्थितियाँ बदल जाती हैं। जो हमारे पिताके मित्र थे वे हमारे शत्रु हो गये और जो हमारे पिताके शत्रु थे वे हमारी रक्षा करनेके लिए तैयार हो गये। संसारमें कोई शत्रु-मित्र नहीं होता; वह तो अपने-अपने स्वार्थके लिए संसारके लोग कभी किसीकी प्रशंसा करते हैं, कभी किसीकी निन्दा करते हैं। संसारकी बातोंमें उड़ जाना—यह सत्पुरुषका लक्षण नहीं है। हम लोगोंके गाँवमें अवसरवादी मौकापरस्त बोलते थे—***'जैसी बहे बयार, पीठ पुनि तैसी कीजे।'*** जिधरसे तेज हवा आती हो, उधर अपनी पीठ कर देनी चाहिए। हवाके साथ बहना चाहिए। सत्पुरुष एक ऐसी स्थितिमें होता है कि जैसे समुद्रमें चाहे ज्वार आये कि भाटा, चट्टान अपनी जगह पर रहती है; कितनी भी तेज हवा बहे पहाड़ अपनी जगह पर रहता है; बादल कितना भी बरसे, समुद्र बढ़ता नहीं है। ऐसे ही जब मनुष्य अपनेको भगवान्‌के साथ जोड़ लेता है, वह अचल हो जाता है, अविचल हो जाता है, क्योंकि भगवान् अचल है, अविचल है। तो, भक्तकी पहचान क्या है?

'नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु' दुःखकी परिस्थितियोंमें अद्विग्न न हो, चित्तमें उद्वेग न हो और **'श्रुतेषुदृष्टेषु निःस्पृहः'**—जो कुछ सुननेमें आता है, देखनेमें आता है उसमें स्पृहा न हो। हमारे साईं थे वृन्दावनमें, उनसे लोगोंने कहा कि साईं कश्मीरके दृश्य बड़े ही सुन्दर हैं—ऐसे पहाड़ हैं, ऐसे झरने हैं, ऐसे वन हैं, ऐसे बाग हैं, चलो देख आयें। साईंने कहा कि जब मैं अपनी आँख बन्द करता हूँ और जब मुझे चित्तमें बैकुण्ठका दर्शन होने लगता है—वह दिव्य सरोवर और वह दिव्य निःश्रेयस वन, वह पारिजात-वृक्ष, वह शीतल, मन्द-सुगन्ध-

वायु, वह सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष, भगवान्‌के भक्त—उस समय हमको जिस रसका अनुभव होता है वह दृश्य, वह रस कश्मीर जानेसे क्या हमको दिखेगा? तो, जो मनमें ही हमको इतनी दिव्य झाँकी दिखायी पड़ रही है, वह हमारा यार जब हमारे दिलमें ही बैठा है तो हमको इधर-उधर भटकनेकी क्या जरूरत है?

तो भाई, जो भगवान्‌का भक्त होता है वह भगवान्‌की अचलता धारण कर लेता है। एक बात आपको अनुभव करनेके लिए सुनाता हूँ—आप ऐसा ध्यान करो कि हमारे हृदयमें एक महात्मा बैठे हैं और वे भगवान्‌में ऐसे स्थित हो गये हैं कि उनकी पलक भी नहीं हिलती, उनकी साँस भी नहीं चलती—उनके शरीरमें किसी भी तरहका कोई कम्पन नहीं होता। वे हमारे हृदयमें सीधे बैठे हैं-उनका सिर झुका नहीं है, पीठकी रीढ़ टेढ़ी नहीं है, वे झूमते नहीं हैं—हमारे हृदयमें सीधे बैठे हैं। आप पाँच मिनट करके देख लो, दस मिनट करके देख लो—जबतक उस महात्माका ध्यान आपके हृदयमें बना रहेगा, तबतक आपका शरीर भी हिलेगा नहीं। जबतक आप अचल शरीरवाले महात्माका ध्यान करेंगे, तबतक आपका शरीर भी अचल हो जायेगा। यह तो संसारकी वस्तुओंको हम बहुत महत्त्वपूर्ण समझकर मनसे उनकी ओर दौड़ते हैं, भागते हैं और भगवान् बैठे-बैठे, टुकुर-टुकुर देखते रह जाते हैं।

तो भक्तके जीवनमें एक अचलता, एक स्थिरता, एक दृढ़-निष्ठाका उदय होना चाहिए—दुःख आवे तो हमको न हिला सके और सुख आवे तो हमको अपनी ओर खींच न सके। दुःख आता है तो हिलाता है और सुख आता है तो अपनी ओर खींचता है और उस समय हमारी आत्मा, हमारे हृदयमें रहनेवाले परमात्मा जहाँ-के-तहाँ एक अनाथ बच्चेकी तरह ऐसे देखते रह जाता है कि जैसे उसका कोई भक्त न हो। हमारे हृदयका आत्मा ऐसे रह जाता है कि मन, इन्द्रियाँ

और बुद्धि ये सब हमारे साथ नहीं हैं, संसारके विषयोंके साथ हैं। ये हमारे सुखके लिए काम नहीं करती हैं, अपनी प्रियतामें ही भटक गयी हैं। बेवकूफका नाम भक्त नहीं है, निकम्मेका नाम भक्त नहीं है। **'अनपेक्षः शुचिर्दक्षः'** भक्तको अपने काममें अत्यन्त दक्ष होना चाहिए। जब भक्त अपने काममें निपुण होता है, तब वह भगवान्‌की सेवामें भी निपुण हो जाता है। श्रीमद्‌भागवतमें एक श्लोक है—

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं, वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु सम्पदः॥

भा. ४.२१.४४

सबके ऊपर कृपा कीजिए, सबको कुछ दीजिए और किसीसे कर्मसे, मनसे, वाणीसे द्रोह मत कीजिए—हमारे जीवनकी सबसे बड़ी सम्पत्ति, सबसे बड़ा धन यह है। इसका नाम 'शील' है—शीलधनं। एक बाद याद रखिए—अगर कभी किसीका कुछ भला आप कर सको तो कर दो पर उसको याद मत रक्खो कि मैंने इसका यह उपकार किया था। बल्कि, उसपर ध्यान ही नहीं जाना चाहिए कि मैंने एक दिन इनको पाँच रुपया दिया था। और, यदि आपको कभी कोई पाँच पैसा दे दे—एक पैसा भी दे दे, मीठा बोल ले आपसे, प्यार-भरी नजरसे आपको देख ले, तो उसको जिन्दगी-भर याद रक्खो। मनुष्यके जीवनमें यदि कृतज्ञता नहीं है तो वह पशु हो जाता है।

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं।

कभी-कभी अपनी बुद्धि कुछ काम नहीं देती, तो बड़ोंका आश्रय लो। बड़ोंका सहारा लेनेका मतलब यह नहीं है कि उनसे खूब उपदेश सुना करो। उनके जीवनकी ओर देखो, उसको पढ़ो कि जब उनके ऊपर कोई कष्ट आता है तब वे कैसे रहते हैं, जब उनके जीवनमें सुख आता है तब वे कैसे रहते हैं। सुखके जानेपर रोते हैं कि नहीं, दुःखके आनेपर घबड़ाते हैं कि नहीं। यह तो पढ़नेकी चीज है, बिना उपदेशके ही तुम यह सीख सकते हो। जब उनके अनुकूल परिस्थिति होती है

तब कैसे रहते हैं और जब उनके प्रतिकूल परिस्थिति होती है तब कैसे रहते हैं—तुम्हारे आँख होनी चाहिए, तुममें अक्कल होनी चाहिए। शत्रु आते हैं घरमें तब उनके साथ कैसे बरतते हैं, मित्रके साथ कैसे बरतते हैं। मित्रके आनेपर उसकी सेवा-सुश्रुषामें मगन नहीं हो जाते—बल्कि मित्रकी तो उपेक्षा भी कर दी जाय तब भी मित्र उसको प्रेम ही समझेगा और शत्रुकी उपेक्षा कर दी जायेगी तो शत्रुता और बढ़ जायेगी और इससे बहुत नुकसान हो जायेगा। उसके हृदयमें यदि शत्रुता बढ़ जायेगी तो उससे बहुत बड़ी हानि हो जायेगी। तो मित्रसे भी अधिक आदर शत्रुका करना चाहिए, ताकि उसके हृदयसे शत्रुता मिट जाय और अपनी उदारता तो उसी समय प्रकट होती है। तो जब वयोवृद्धके पास होंगे, विद्यावृद्धके पास रहोगे तो तुम्हें अनेक संकटोंसे बचनेकी विद्या, युक्ति अपने-आप ही आ जायेगी। तो गुणायन हो, शीलधन हो और चित्तमें कृतज्ञता हो और वृद्धोंका आश्रय हो।

जब 'ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी'का राज्य था, भारतवर्षमें तब उस समय कैसे-कैसे मुकदमे अंग्रेजोंकी अदालतमें आते थे और उसके लिए हमारे काशीके और कलकत्ताके विद्वानोंकी राय लेते थे कि इस मुकदमेमें हमको क्या करना चाहिए? तो इसकी एक पुस्तक छपी हुई थी और मैंने वह पुस्तक पढ़ी थी, भिन्न-भिन्न तरहके मुकदमेंकी चर्चा थी। उसको पढ़नेसे बहुत शिक्षा मिली। कैसे टेढ़े-मेढ़े मुकदमें आते हैं, कैसे टेढ़ी-मेढ़ी बहस होती है, कैसे फैसले होते हैं और जब अपने जीवनमें भी वैसी समस्याएँ आती हैं तब उनका ध्यान आ जाता है। हमारे महापुरुषोंके जीवनमें भी कामका अवसर आया है—सारी परिस्थितियाँ काम के अनुकूल बन गयीं; सारी परिस्थितियाँ हिंसाके अनुकूल बन गयी, सारी परिस्थितियाँ क्रोध-बेईमानीके अनुकूल बन गयीं और महात्माओंने उन परिस्थितियोंको कैसे पार किया—यह बात जब हम अपनी आँखसे देखते हैं, तो समयपर हमें वह सहायक होगी।

आप लोगोंको अच्छा नहीं लगेगा—बम्बई है न यह! यहाँ लोग अश्लील काम कर सकते हैं पर अश्लील बात सुन नहीं सकते—ऐसा हमको किसीने बताया, पर हम कह ही देते हैं—हमारे एक महात्मा थे, ग्यारह वर्ष तक उन्होंने सूर्यका दर्शन नहीं किया, कहीं गुफामें रहकर योगाभ्यासके द्वारा समाधि लगाकर रहे। मध्यप्रदेशमें 'कटनी'के पास कोई गाँव है, वहाँकी गुफामें रहते थे। जब वे सिद्ध हो गये तब उनके गुरुने कहा कि अब जहाँ तुम्हारी मर्जी हो वहाँ जाओ। वे पंजाब गये। वहाँ एक तालाबके किनारे बैठ गये। धीरे-धीरे लोग आने लगे और निमन्त्रण दे-देकर भोजन करानेको अपने घर ले जाने लगे। एक दिन एक स्त्री आयी, उसने कहा कि महाराज, आप दोपहरके समय हमारे यहाँ भोजन कीजिये, घर बता दिया। महात्मा गये, देखा घरमें कोई नहीं था, केवल वही स्त्री थी। महात्माने पूछा—तुम्हारे घरमें क्या कोई और व्यक्ति नहीं है। बोली हैं—पति हैं, वे ऑफिस गये हैं, बेटा है वह स्कूल गया है। अकेली हूँ घरमें इस समय और बड़े प्रेमसे उसने उनको भोजन कराया। भोजन जब कर चुके तब बोली कि बाहर धूप बहुत है इस समय आप कहाँ जायेंगे, यहीं विश्राम कर लीजिये। महात्मा जब लेट गये तब वह आकर उनके बगलमें बैठ गयी और ऐसा दुर्भाव उसने प्रकट किया कि महात्मा बेचारे काँप गये। अब उसने कहा कि देखो यदि तुम हमारी इच्छा पूरी नहीं करोगे तो हमारे पास पिस्तौल है हम तुमको मार डालेंगे और लोगोंमें हल्ला कर देंगे कि ये हमारे साथ बलात्कार करना चाहते थे इसलिए हमने इनको मार दिया। तो तुमको जो मैं कहूँगी वह करना पड़ेगा। वे सन्न रह गये, पर भगवान्‌का स्मरण करके तुरन्त बोले कि ठीक है, जो तुम कहोगी सो हम करेंगे और हँसने लगे। फिर बोले कि हमको बड़ी प्यास लगी है। बोली—अभी पानी ले

आती हूँ और जब वह पानी लाने चली गयी तब महात्माने दरवाजेकी देहलीपर बैठकर टट्टी कर दी—गन्दा काम किया न—और थोड़ी टट्टी उठाकर अपने शरीरपर लगा ली। अब जब वह पानी लेकर लौटी तो दरवाजेपर जैसे ही पाँव रखा तो टट्टी पर पड़ा—तबियत घिनघिना गयी और मुँह उठाकर उनकी ओर देखा तो सब जगह टट्टी लगी है। 'हाय' निकली मुँहसे और पानीका गिलास गिर पड़ा हाथसे। अब महात्मा बोले कि अब तुम चिल्लाओ और बुलाओ लोगोंको कि ये हमारे साथ बलात्कार करना चाहते थे। सच्ची घटना है, स्वयं उन्होंने अपने मुँहसे बोलकर हमको सुनायी थी। हम उनका सत्सङ्ग करने जाया करते थे। उस स्त्रीने तुरन्त घरका दरवाजा खोल दिया और कहा कि अब आप जल्दीसे यहाँसे चले जाइये और महात्मा वहाँसे निकल गये। महात्माओंके जीवनमें तरह-तरहके प्रसङ्ग आते हैं। और सुनिये—

हमारे पितामह थे, उनके एक शिष्य थे जो बहुत ही गरीब थे और उनके घरके लोगोंने किसी कारणसे उनको कह दिया कि अब तुम घरसे चले जाओ। आसनसोल गये और वहाँसे फिर कलकत्ता चले गये और वहाँ ऐसा उनका प्रारब्ध जागृत हुआ कि वर्षोंमें ही उन्होंने लाखों रुपये कमा लिये। यह बात हमारे जन्मसे पहलेकी है। जब उनके पास लाखों रुपये हो गये—उनके पुत्र हैं अभी जो हमारे शिष्य हैं और उनके भी पुत्र हैं जो हमारे पुत्रके शिष्य हैं—माने परम्परागत शिष्य हैं—जब लाखों रुपये की कमायी हुई तब उन्होंने हमारे पितामहके सामने चाँदीके दस हजार सिक्के लाकर रख दिये—महाराज, यह आपके लिए हैं। तो, हमारे बाबाने उनमें-से दस रुपये निकाल लिये और बोले कि हमारा हिस्सा सिर्फ इतना ही है, हम इससे ज्यादा नहीं लेंगे। नहीं लिया। और फिर उनके पास सैकड़ों एकड़ भूमि हो गयी, लाखों रुपयोंका उन्होंने काम किया। उनको

सबकुछ ऐसा था जैसे सब हमारा ही हो। केवल दस हजार रुपयोंका त्याग हमारे पितामह ने किया और उनका सारा परिवार हमारा हो गया। कभी आपलोगोंको आसनसोल जानेका काम पड़े तो देखेंगे सारा मोहल्ला उनका है और उनका नाम पण्डित रामरिखलाल पाण्डे है—राजगाँवपुरमें जब मुझसे जयदयालजी डालमियाने श्रीमद्भागवत करवायी थी तब वहाँ पन्द्रह दिन आकर उन्होंने भी श्रवण किया था। कलकत्ते भी जब मैं जाता हूँ तब वे हमेशा आते हैं मेरे पास। तो एकबार मनमें त्यागकी वृत्तिका आना बहुत बड़ा कल्याण है, बहुत बड़ा मंगल है।

तो महात्मा लोग लोभकी परिस्थितिमें कैसे रहते हैं, कामकी परिस्थितिमें कैसे रहते हैं, क्रोधकी परिस्थिति में कैसे रहते हैं—यह सब देखनेसे बहुत सीखनेको मिलता है।

एक ब्राह्मण श्री उड़िया बाबाजी महाराजके पास आता था, उसने बाबासे कहा कि किसीसे हमको दो सौ रुपया दिलवा दो, हमको बहुत जरूरत है। बाबाने कहा कि देखो भाई, हम तो किसीसे कहते नहीं कि हमको पाँच रुपया दे दो या इनको दो सौ रुपया दे दो—हमने जीवनमें कभी किसीसे कहा नहीं, माँगा नहीं। यदि कोई सेठ, कोई धनी व्यक्ति आकर हमसे पूछेगा कि हम इस ब्राह्मणको दो सौ रुपया दे दें क्या, तो हम उसको बता सकते हैं कि हाँ, तुम इनको रुपया दे दो। अब वह इतना सुनते ही क्रोधमें आ गया और चाकू उठाकर बाबाकी नाकपर ही उसने चाकू मार दिया। नाक कटी तो नहीं, पर छिल गयी और दो-तीन दिन पट्टी लगानी पड़ी, फिर ठीक हो गयी। लेकिन उसको बाबाके भक्तोंने पकड़ लिया और मारनेको तैयार बाबाके सैकड़ों भक्त! तो बाबाने दोनों हाथोंसे पकड़कर उस आदमीको अपनी छातीसे लगा लिया और ले जाकर उसको अपनी कुटियामें रखा और कह दिया लोगोंसे कि यदि कोई इसको गाली देगा या मारेगा तो मैं यह देश

छोड़कर चला जाऊँगा और कभी लौटकर नहीं आऊँगा। सब शान्त हो गये। यह वृन्दावनकी बात है—तो विषम परिस्थितियोंमें महात्मा लोग कैसे रहते हैं यह यदि उनके सम्पर्कमें रहो तो उपदेश सुने बिना ही बहुत कुछ सीखनेको मिलेगा। यह नहीं कि जो ज्यादा उपदेश करे वही बहुत बड़ा महात्मा। तो,

वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनुसम्पदः।

प्रह्लादजीके जीवनकी यह विशेषता थी कि वे बड़े-बूढ़ोंके सामने बिलकुल उनके सेवकके समान रहते थे। मित्रोंके साथ भाईकी तरह रहते थे, छोटोंको पिताका स्नेह देते थे। तो भक्त माने निकम्मा नहीं, भक्त माने बेवकूफ नहीं, भक्त माने सद्गुणोंका खजाना। प्रह्लाद ऐसे ही थे। भारविने कहा है कि किसानके घरमें बीज होता है, उसका वह पालन-पोषण करता है, जब वर्षा होती है, जब खेत बोने लायक होता है तब उसको बोता है। तो जैसे शरद-ऋतु आने पर किसानको अपने बीजका फल खेतमें मिलता है, वैसे ही जो विवेकके जलसे अपने कर्त्तव्यके बीजको पहलेसे सींचकर रखता है, समय पर उसका पालन करता है, उसके जीवनमें उस कर्त्तव्यका दृष्ट-फल मिलता-ही-मिलता है। यह मत समझना कि धर्मका फल उसके मरनेके बाद मिलता है। हमारे वेदान्ती स्पष्ट-रूपसे मानते हैं कि अन्तःकरण-शुद्धि इसी जीवनमें होती है, वह कर्मका दृष्ट फल है और जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख इसी जीवनमें मिलता है और वह भी दृष्ट-फल है। हम मरनेके बादके लिए कोई बात आपसे नहीं कहते हैं, इसी जीवनमें आपका जीवन मङ्गलमय हो जाय इसके लिए आपको यह सुनाते हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१२)

भागवतमें यह वर्णन आया कि जब ब्रह्माजीने सृष्टि की तो प्रजाको बसानेके लिए उन्हें धरती नहीं मिली। धरती नहीं मिली तो उन्हें चिन्ता हुई। भगवान्‌का ध्यान किया और जब भगवान्‌का ध्यान किया तब उनकी नासिकासे बराह भगवान् प्रकट हुए। बराहने समुद्रमें जाकर पृथिवीका उद्धार किया और और हिरण्याक्षको मार दिया। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनों भाई-भाई थे और एकसाथ पैदा हुए थे और इनके माता-पिता थे दिति और कश्यप।

अब आपके ध्यानमें यह बात आनी चाहिए कि धरती तो थी ही नहीं, वह तो समुद्रमें डूबी हुई थी और दिति और कश्यप थे, उनका आश्रम भी था और उनके हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक पुत्र भी पैदा हुए। तो ये सबलोग कहाँ रहे? वैसे यह भी है कि इनके जन्मके समय पृथिवीपर बड़े-बड़े अपशकुन होने लगे—भूकम्प भी आने लगे और वराह भगवान् जब प्रकट हुये तब पृथिवी थी नहीं और वराह भगवान्‌से ही कल्प प्रारम्भ होता है—यह कल्पादिकी कथा है—श्वेत वाराह कल्प एवं विष्णु-वाराह कल्प। वराह भगवान्‌के अवतारसे दो कल्प हुआ करते हैं। आजकल श्वेत वाराह-कल्प चल रहा है। इसका अर्थ यह है कि श्वेत-वाराह-कल्प के पूर्व-कल्पमें और उस कल्पके सत्युगमें कश्यप और दिति हुए थे और उनके पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए और वे तपस्या करनेके लिए समुद्रमें प्रविष्ट हुए थे और उनकी आयु कोई छोटी नहीं थी—उन्होंने प्रलय-पर्यन्त तपस्या की थी। भगवान्‌के पार्षद होनेके कारण कालने भी उनके शरीरपर आक्रमण नहीं किया और वरदान भी था कि इनको मारेंगे भगवान् ही। तो बड़ी लम्बी तपस्या उन्होंने की। अब जब ब्रह्माजीका सृष्टि करनेका समय आया और धरती नहीं मिली तो वाराह भगवान प्रकट हुए।

अब यह देखो कि ब्रह्माजीकी नाकसे वराह भगवान् क्यों प्रकट हुये? क्योंकि, पृथिवीकी एक ही पहचान है—गन्ध। जहाँ-जहाँ पृथिवीका अंश होगा वहाँ-वहाँ गन्ध आती है और जहाँ पृथिवीका अंश नहीं होगा वहाँ गन्ध आवेगी ही नहीं। पानीमें भी जो गंन्ध होती है वह मृत्तिकाके संयोगसे ही होती है, फूलमें गन्ध है, धुएँमें गन्ध है तो ये सब पृथिवीके मिट्टीके संयोगसे ही है, पृथिवीका विशेष गुण है गन्ध और उस गन्धको ग्रहण करने वाला ज्ञान कहाँ रहता है नाकमें! तो नाक हुई अध्यात्म और पृथिवी हुई अधिभूत। अब अधिदैव रूपसे जो बराह है; वे नासिकासे प्रकट होकर ही—अध्यात्मसे प्रकट होकर ही अधिभूतकी रक्षा करते हैं। हमारे पुराण जो हैं, ये केवल कहानीके रूपमें नहीं हैं। प्रत्येक कथामें एक आध्यात्मिक-दृष्टि होती है, एक आधिदैविक-दृष्टि होती है और एक आधिभौतिक दृष्टि होती है।

इस तरह हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु पूर्वकालमें पैदा हुए और प्रलय-कालमें उन्होंने तपस्या की और उत्तर-कल्पमें माने, श्वेत-वाराह कल्पके प्रारम्भमें हिरण्याक्ष मारा गया और हिरण्यकशिपु रह गया। पूर्वकल्पमें ही हिरण्यकशिपुका विवाह कयाधुके साथ-प्रह्लादकी माँके साथ हुआ था। लेकिन जब ये तपस्याके लिए चले गये तो नारदजीके आश्रममें कयाधु रहीं। और, यदि शास्त्रकी दृष्टिसे देखें तो हजारों वर्ष तक, लाखों वर्षतक प्रह्लादकी माता हिरण्यकशिपुसे अलग रहीं। अब वर्णन यह आता है कि जब हिरण्यकशिपु और प्रह्लादका द्वन्द हुआ तो प्रह्लादकी अवस्था थी सिर्फ पाँच वर्ष की। प्रश्न उठा—प्रह्लाद केवल पाँच वर्षके कैसे हुए? जब हिरण्यकशिपुका जन्म हुआ पूर्वकल्पमें और उसने तपस्या की प्रलयके समय और श्वेत-वाराहकल्पके प्रारम्भमें हिरण्याक्षका वध और उसके बाद हिरण्यकशिपुकी दोहरी तपस्या और दोहरी तपस्या बहुत बड़ी—इतनी बड़ी तपस्या कि ब्रह्माजीने अपने मुँहसे कहा कि ऐसी तपस्या करनेवाला सृष्टिमें कभी कोई हुआ नहीं, है नहीं

और न होगा। तुम्हारी अनुपम तपस्या है, तुम जो माँगो सो मिलेगा। और, उसको जो वरदान मिला आप सब लोग जानते हैं। उसकी मृत्यु किस समय होगी? न दिनमें, न रातमें; कहाँ होगी? कि न बाहर न भीतर। किसके द्वारा होगी? कि ब्रह्माजीके द्वारा बनाया गया जो भी होगा उससे नहीं होगी। तो देश, काल, व्यक्ति सबको काट दिया। उसने अपनी ऐसी युक्ति लगायी कि किसीके द्वारा भी उसकी मृत्यु नहीं होगी और जब देवताओंको जीतकर वह राजसिंहासन पर बैठा तो उसके राज्यका ऐसा वर्णन है कि सारी प्रजाको यह शक्ति प्राप्त हो गयी कि जब उसको हीरा-मोती चाहे तो पहाड़-नदी दे देते थे, अन्न चाहे तो धरती दे देती थी और दूध-दही चाहे तो नदियाँ दे देती थीं और जब चाहें कि तेज हवा चले तो तेज हवा चलने लगती—वायु देवता नियन्त्रणमें रहते थे। ऐसा विचित्र उसका राज्य था—आकाशमें-से देवताओंकी दिव्य वस्तुओंकी वर्षा हुआ करती थी और यदि किसीके मनमें होता कि हम सिनेमा देखें तो ऐसा लिखा है—**'नानाश्चर्यपदं नभः'** आकाशकी ओर देखनेसे वह दिखायी पड़ जाता था और ब्रह्माजी भी आकर उससे पूजा लेते नहीं थे। रावणसे तो पूजा लेनेके लिए आया करते थे—हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु दैत्य थे, इनमें अधिक बल था; रावण-कुम्भकरण राक्षस थे और शिशुपाल-दन्तवक्त्र मनुष्य थे—तो हिरण्यकशिपुके दरबारमें नारदजी, ब्रह्माजी, शिवजी सब आकर हिरण्यकशिपुकी स्तुति करते थे; अप्सराएँ स्वर्गमें नहीं रहती थीं हिरण्यकशिपुके दरबारमें रहती थीं और ये सारे तत्त्व जो हैं—उसके अनुसार कार्य करते थे। अग्निको आज्ञा हो कि अब जलाओ, तब जलाते थे, वायुको आज्ञा हो कि अब चलो तब चले, समुद्रको आज्ञा हो कि अब ज्वार आवे तब आवे। पञ्चतत्त्वोंपर अपना कब्जा करके हिरण्यकशिपु बैठा हुआ था और बड़े-बड़े ब्रह्मादि देवता उसकी स्तुति करते थे, इन्द्रादि देवता तो उसके यहाँ पानी भरनेका काम करते थे—इतना प्रभावशाली था।

अब आपको दो बात इस प्रसङ्गमें सुनाते हैं। इस कथामें एक बात तो है वैराग्यकी, एक बात है भक्ति की। साधारणरूपसे लोग केवल कहानीकी तरह इसको पढ़ लेते हैं। आप देखें इसमें भक्तिकी बात क्या है कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु होनेके पहले ये दोनों भगवान्‌के दरबारी-भक्त थे, द्वारपाल थे, पार्षद थे। भगवान्‌के पार्षद जो होते हैं वे कभी भगवान्‌की भेष-भूषा धारण करते हैं, कभी भगवान्‌के समीप रहकर उनकी सेवा करते हैं, कभी उनकी वनमाला बन जाते हैं, कभी उनके पीनेके लिए जल बन जाते हैं। क्योंकि, सेवकके मनमें यह रुचि रहती है कि मैं सब प्रकारकी सेवा अपने स्वामीकी करूँ। देखो, प्रेम कैसे बढ़ता है? विश्वाससे। और, प्रेम देता क्या है? सेवा! पति-पत्नीमें, माँ-बेटेमें, भाई-भाईमें एक दूसरे पर जब विश्वास होगा तब प्रेम होगा। विश्वाससे होता है प्रेम और जिससे प्रेम होता है उसको सुख पहुँचानेकी वृत्ति अपने मनमें बनी रहती है। विश्वासका बेटा है प्रेम और प्रेमकी सहधर्मिणी है सेवा। तो जो बैकुण्ठमें भगवान्‌का पार्षद् होता है वह जरूरत पड़ने पर वैकुण्ठका नागरिक होता है—सभा जब जुड़ती है तब पार्षद सभाका मेम्बर होता है, जरूरत पड़ती है तब द्वारपाल होता है, कभी वह पंखा भी झलता है, कभी पानी भी पिलाता है और कभी स्वामीकी पानी पीनेकी रुचि होती है तो वह स्वयं पानी बनकर स्वामीके पेटमें चला जाता है—इसको, सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य। और, कभी भेज देते हैं कि जाओ तुम अमुक काम कर आओ! तो कर आता है यह है सार्ष्टि! राज्यपाल बना देते हैं कभी।

तो जो पार्षद् होते हैं भगवान्‌के, उनको ईश्वरेच्छासे कभी वहाँसे च्युत भी होना पड़ता है। अद्‌भुत माया है। वेदान्तकी मुक्तिमें और भक्तकी मुक्तिमें यह फर्क है।

कर्मसे जो मुक्ति होती है जैसा कि आर्य समाजके प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्दजी मानते हैं। माने कर्मकी तौल होती है कि इतना कर्म किया,

इतना धर्म किया, इतना द्रव्य उसमें लगाया, इतना यज्ञ किया, इतना हवन किया और इतनी सेवा की। कर्मसे जो मुक्ति मिलती है उसकी तो गिनती होती है कि इतने वर्ष तक वह मुक्त रहेगा—पच्चीस हजार वर्ष तक वह मुक्त रहेगा और फिर उसका नाम भी स्वामी दयानन्दजीने मुक्ति रखा है। तो कर्मसे मुक्ति होगी तो फिर लौटकर आना पड़ेगा। और, भक्तिसे जब मुक्ति होगी तो ईश्वरकी जो अधीनता है, वह नहीं छूटेगी। ईश्वर चाहे तो बद्धको मुक्त बना दे—अजामिलको भी मुक्त कर दे और उसकी मौज हो तो जय-विजय जैसे पार्षदको भी फिर बद्ध बना दे। यदि ईश्वरकी ईश्वरता न चले—भक्त एकबार मुक्त हो जानेके बाद यदि ईश्वरकी इच्छाके अधीन न रहे तो ईश्वरकी ईश्वरता भी चली जाती है और भक्ति भी चली जाती है। इसलिए, ईश्वरका आधिपत्य भक्तकी मुक्तिमें भी होता है।

तो, यह ईश्वरका सामर्थ्य प्रकट हुआ कि उन्होंने नित्य-मुक्त जय-विजयको फिरसे बद्ध बना दिया। अब एक भक्तिकी बात यहाँ क्या प्रकट होती है कि यदि कदाचित् कोई वैकुण्ठसे भ्रष्ट हो जाये, भ्रष्ट होगा तो कैसे? कि सन्तके अपराधसे होगा—वहाँ लक्ष्मीजीके अपराधसे कोई भ्रष्ट नहीं होता, संतके अपराधसे होता है। तो जब कोई भक्त संतका अपराध करते हैं और वैकुण्ठसे भ्रष्ट होते हैं तो भगवान् कहते हैं कि एक फायदा इनसे उठाना चाहिए, एक काम इनसे लेना चाहिए। क्या फायदा? कि जरा वैकुण्ठमें कितना वैभव है, कितनी शक्ति है, कितना सामर्थ्य है—इस बातको दुनियाके लोग जानें। यह तो ऐसे है, जैसे किसीको देश निकाला दिया गया हो, निर्वासनकी सजा दी गयी हो। जब किसीको भगवान् वैकुण्ठसे निर्वासित करते हैं, निकाल देते हैं तो उस निकाले हुएके साथ कितना वैभव, कितना ऐश्वर्य रहता है कि धरती उसकी आज्ञा मानती है, जल उसकी आज्ञा मानता है, अग्नि उसकी आज्ञा मानता है, वायु उसकी आज्ञा मानता है, आकाश उसकी आज्ञा मानता है, और संसारकी समस्त वस्तुएँ उसकी आज्ञामें रहती

हैं—जिसको वैकुण्ठसे देश निकाला दिया गया है उसकी यह स्थिति है। तो भाई, जो वैकुण्ठमें प्रेमसे रहते होंगे उनके पास कितना वैभव होगा? तो आओ हम लोग भी भगवान्का नाम लेकरके एक बार वैकुण्ठकी सैर कर आवें। तो वैकुण्ठमें जानेकी रुचि मनुष्यके मनमें पैदा होती है कि जहाँसे गिराये हुएका यह ऐश्वर्य है, यह वैभव है, यह शक्ति है तो वहाँके रहनेवालोंका कितना होगा! आओ भाई, हम भी भगवान्के पास चलकर देखें—माने इससे भक्तिकी प्रेरणा मिलेगी।

अब तीसरी बात देखो—हिरण्यकशिपुके जीवनसे वैराग्यकी बहुत बड़ी प्रेरणा मिलती है। जिसकी आयु कल्पोंकी—आपलोग कल्पके बारेमें जानते ही होंगे कि कितना बड़ा होता है—करीब चवालीस लाख वर्षकी एक चतुर्युगी होती है—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चारों मिलाकर चवालीस लाख वर्षसे कुछ ज्यादा ही होते होंगे, कम नहीं होते और ऐसी इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है और चौदह मन्वन्तरका ब्रह्माका एक दिन होता है और इस एक दिनके हिसाबसे ब्रह्माकी सौ वर्षकी आयु होती है। तो आप देखो, जिसकी कल्पोंकी आयु और जिसके सामने स्तुति करनेवाले ब्रह्मा, नारद जहाँ बाजा-बजाकर गाना सुनाया करते थे, इन्द्र जहाँ पानी भरते थे—ऐसे हिरण्यकशिपुका भी अन्त हो गया, नाश हो गया। तो जो लोग सृष्टिमें समझते हैं कि हम बहुत बड़े ऐश्वर्यशाली हो जायेंगे, वैभवशाली हो जायेंगे, हमारा राज्य हो जायेगा—उनकी आस्था कहाँ है? जब हिरण्यकशिपु नहीं रहा, जब हिरण्याक्ष नहीं रहा, जब रावण-कुम्भकरण नहीं रहे—जब बड़े-बड़े देव-दानव नहीं रहे तब तुम जो सोचते हो कि हम चोरी करके, बेईमानी करके, छल-कपट करके अपने पास धन इकट्ठा कर लें और हमारे पास यह धन हमेशा बना रहेगा, हमारी जवानी हमेशा बनी रहेगी, हमारा यश हमेशा बना रहेगा, हम मरेंगे नहीं—ऐसा जो सोचते हो वह कितना गलत है।

तो हिरण्यकशिपुका चरित्र हमको भगवान्‌की भक्ति देता है वह संसारसे वैराग्य देता है और वह यह शिक्षा भी देता है कि हमें संतक अपराध कभी नहीं करना चाहिए।

अब एक प्रश्न और है कि प्रह्लाद और प्रह्लादकी माता कयाधु इतने दिनों तक कहाँ रहे? तो नारदजी ले गये उनको अपने आश्रममें। देवता लोग तो कयाधुको मार डालना चाहते थे। परन्तु, बीचमें आगये नारदजी और उन्होंने कहा कि तुम लोग इस गर्भवती स्त्रीको लेकर कहाँ जा रहे हो? देवताओंने कहा कि इसके पेटमें बच्चा है और जब वह पैदा होगा तो फिर हम लोगोंको सतावेगा, इसलिए हमलोग इसको मार डालना चाहते हैं। पर इसे हम गर्भमें नहीं मारेंगे। क्योंकि, गर्भमें बच्चेको मारना 'भ्रूण-हत्या' नामक दोष होता है और इसकी गिनती महापापमें होती है। तो जब बच्चा पैदा होगा तब हम उसको मार डालेंगे। इसपर नारदजीने कहा कि यह तुम लोगोंके मारे मरेगा नहीं, यह तो भगवान्‌का बड़ा भारी भक्त होगा। जिस प्राणीपर भगवान्‌के अनुग्रहका प्राग्‌भाव होता है—माने जिस मनुष्य पर आगे भगवान्‌की कृपा होनेवाली होती है—अभी हुई नहीं है, होगी—उसका भी कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। तो, प्रह्लाद पर आगे भगवान्‌की कृपा होनेवाली है और जब आगे रक्षा करनेके लिए भगवान् आनेवाले हैं तब पहले उसको कौन मार सकता है? देवताओंने जब यह सुना तो कयाधुकी परिक्रमा करके अपने लोकमें चले गये और कयाधुको नारदजी अपने आश्रममें ले आये। अब नारदजीकी ऐसी सेवा की कयाधुने कि उसको यह वरदान मिल गया कि जबतक उसकी इच्छा नहीं होगी तबतक बच्चा पेटसे बाहर नहीं आवेगा—'इच्छा-प्रसूति'—पहले ऐसी औषधियाँ होती थीं, ऐसे यन्त्र होते थे—पुराणोंमें इनका वर्णन है और वह बिलकुल वैज्ञानिक है, ठीक है। इच्छाके अनुसार पहले काम करते थे और आजकल शरीर पर ऐसी 'बैटरी' लगा देते हैं कि वह 'स्पर्श'से काम करती है, ऐसी बैटरी भी बनी

है जो आवाजसे चालू होती है—'गो' कहनेसे 'बैटरी' चालू हो जाती है और पहले जिनकी 'इच्छा-शक्ति' बड़ी प्रबल होती, संतान भी इच्छाके अनुसार होती थी कि कब होवे—इच्छा-प्रसूति और हमारी सन्तानका अभ्युदय होवे, उसकी उन्नति होवे।

अब कयाधु तो रहने लगी नारदजीके आश्रममें और हिरण्यकशिपुने करी तपस्या और ब्रह्माजीसे मिला उसे वरदान और वह हो गया सम्पूर्ण-विश्वका सम्राट्। अपनी पत्नीका उसको कुछ ख्याल ही नहीं रहा, भूल गया उसको कि हमारी पत्नी इतने वर्ष तक जीवित हो सकती है और उसको गर्भ भी हो सकता है। अब नारदजी एक दिन आ पहुँचे उसके दरबारमें और पूछ लिया उससे कि सरकार, आपकी पत्नी हमारे आश्रममें रहती है, कभी आपको उसकी याद आती है? बोला—ऐं, अभी तक वह जिन्दा है? फिर आई क्यों नहीं हमारे पास? नारदजी बोले—'आयेगी कैसे? जब आप उसको आदरसे बुलावेंगे तब न आयेगी? इसका नाम अभिमान नहीं है हो! पतिके प्रेमकी यह भी एक बात है। रूठना उससे होता है जो मनावे और जिसपर मनानेका विश्वास न हो तो उससे रूठना नहीं चाहिए। पहलेसे ही सोच-समझ लेना चाहिए कि कहीं कह न दे कि जा पड़ी रह, मत आ-तो उससे नहीं रूठना चाहिए। हिरण्यकशिपु जाकर आदरके साथ कयाधुको घर ले आया और जब घरमें आ गयीं, तब प्रह्लादका जन्म हुआ।

यह संतकी कृपा थी कि माताके पेटमें प्रह्लाद बढ़े नहीं, सीमित ही रहे; परन्तु उनकी बुद्धि बढ़ती गयी, क्योंकि उनको सत्संग सुननेको मिलता था। माताकी बुद्धि तो अनेक कामोंमें लगी रहती। जिसकी बुद्धि हजार तरफ जाती है उसकी बुद्धि एक दिशामें प्रौढ़ नहीं होती है। जिसकी बुद्धिके लिए दिशा जितनी कम होती है, उसकी बुद्धि उतनी अधिक प्रबल होती है। जब हम वेदान्तका चिन्तन करते हैं और संसारकी चिन्ता छोड़ देते हैं तो वेदान्तमें हमारी बुद्धि प्रवेश करती है

और जब हम वेदान्तका चिन्तन छोड़ देते हैं और संसारका चिन्तन करने लगते हैं तो संसारकी हजारों चीजोंमें हमारी बुद्धि बिखर जाती है और कमजोर हो जाती है भला! तो कयाधु अपने पतिकी भी चिन्ता करे, ससुरालकी भी चिन्ता करे, मायकेकी भी चिन्ता करे, हाय-हाय, क्या हो गया इतने दिन हो गये कुछ समाचार नहीं। माने वह सत्संग तो करे, पर उसको सब भूल जाये और प्रह्लादजी महाराज गर्भमें बैठे-बैठे जो सत्संग करते वह उनको दृढ़ हो गया और गर्भमें ही जैसे वामदेवजीको ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया था—'अहं मनुर्भवम्सूर्यश्च'—इसी प्रकार यद्यपि प्रह्लादजी (सनत्कुमार)को ज्ञान तो पहलेसे ही था, परन्तु गर्भमें आनेसे जो प्रतिबन्ध आया था वह नारदजीके उपदेशसे कि ये सनत्कुमारजी हमारे गुरुजी हैं, गर्भमें आगये हैं—सनत्कुमार होनेका उपदेश ही सनत्कुमारको नारदजीने दिया और वे गर्भमें ही प्रतिबद्ध हो गये, उनको ज्ञान हो गया। फिर इतने वर्षोंके बाद, बल्कि कल्पान्तरोंके बाद जाकर प्रह्लादजीका जन्म हुआ और प्रह्लादजी भगवान्के परम कृपा-पात्र!

एक बात आप देखेंगे-प्रह्लादको बेटा हुआ विरोचन तो प्रह्लादजीने राज्य छोड़ दिया—जाओ बेटा, राज्य करो। फिर पौत्र हुआ—बलि। बलिके समयमें तो समुद्र-मन्थन हुआ, बड़ा भारी यज्ञ हुआ, पर प्रह्लादजी अलग रहे बलिके पास नहीं आये। लेकिन जब वामन भगवान्ने बाँधकरके पटक दिया बलिको—जब पौत्र सङ्कटमें पड़ गया, तब आये। जबतक सुखी है—राज्य करता है विरोचन, कोई बात नहीं, त्रिलोकीका राज्य करता है बलि कोई बात नहीं। परन्तु, जब सङ्कटमें पड़ा पौत्र-बलि, तब प्रह्लादजी आकर भगवान् वामनके सामने खड़े हो गये—बड़ी कृपा करी प्रभु, आपने इसे अपना समझा!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१३)

देवता और दैत्य दोनों एक ही पिताकी सन्तान हैं। कश्यप हैं पिता और माता दो हैं दिति और अदिति। अदितिके पुत्र हैं देवता और दितिके पुत्र हैं—दैत्य। परमात्मा तो एक ही है। हम लोगोंके यहाँ एक ही खेतमें गन्ना और लाल-मिर्च दोनों बो देते हैं—एक ही मिट्टी होती है एक ही खाद, एक ही पानी और मिर्च होता है तिक्त-तीता और गन्ना होता है मीठा। खेत एक, पानी एक, खाद एक, वायु एक, मिट्टी एक, सिंचाई एक—लेकिन दोनों दो तरहके गुणवाले होते हैं।

तो कश्यप जो हैं ये परमात्मा हैं। निरुक्तमें 'कश्यप'का शब्दका अर्थ ऐसे दिया गया है—'कश्यप कस्मात्'? कश्यपको कश्यप क्यों कहते हैं? 'यतः पश्यति' पश्यक एव कश्यपो भवति—जो देखता है, द्रष्टा है, साक्षी है। तो 'पश्यक'को ही 'कश्यप' कहते हैं। पश्यक माने द्रष्टा, साक्षी, परमात्माको ही कश्यप कहा है। उनकी पत्नी हैं अनेक। जैसी पत्नी वैसी सन्तान। सन्तानपर माताका प्रभाव सबसे अधिक होता है। क्योंकि, नौ महीना तो पेटमें रखती है, फिर दूध पिलाती है, पालन-पोषण करती है। इस तरह संतानके जीवनमें जो विशेषता आती है—जो खास बात आती है वह माताके जीवनकी बहुत अधिक आती है।

तो दितिका अर्थ होता है—जो काट दे और क्षीण हो जाय। दो अव खण्डने धातुसे दिति शब्द बनता है जो टुकड़ा-टुकड़ा कर दे और दीङ्क्षयेसे भी 'दिति' शब्द बनता है। जो खण्ड-खण्ड बनावे और बादमें

मिट जाये उसका नाम दिति। और, 'न द्यति न क्षयति इति अदिति'—जिसका कभी क्षय न हो और जो टुकड़े-टुकड़े न करे, अखण्ड कर दे, वह अदिति। जो खण्ड करे सो दिति और जो अखण्ड करे—टुकड़े हुएको मिला दे, सो अदिति। तो अदिति होती है देवताकी माता, और दिति होती है दैत्योंकी माता। दैत्य और देवता दोनोंमें काम होता है, दोनोंमें लोभ भी होता है और दोनोंमें क्रोध भी होता है—ऐसा नहीं है कि दोनोंमें कोई दूधसे धुले हों। एक ही बापकी संतान हैं। इनमें दैत्य बड़े हैं और देवता छोटे हैं। इसका अभिप्राय यह है कि हमारे जीवनमें जो दैत्याकार-वृत्तियाँ हैं ये पहले स्वयं उदय होती हैं और फिर उनको शान्त करनेके लिए, उनको मिटानेके लिए देवता-वृत्तियोंको अपने जीवनमें लाना पड़ता है। माने जो दुर्वृत्तियाँ हैं, जीवनमें पहले अपने आप आजाती हैं—देखा-देखी आजाती हैं, बिना सोचे-बिचारे आजाती हैं—ये सब दितिके, अज्ञानके, अविद्याके वंशकी हैं। अविद्या ही टुकड़े-टुकड़े करती है और अन्तमें नष्ट भी अविद्या ही होती है। तो अविद्या माने जो हम बिना सोचे बिना बिचारे अपने जीवनमें जो दुर्गुण, दुर्भाव, दुश्चरित्रता देखा-देखी बिना समझे धारण कर लेते हैं वह दितिकी सन्तान हैं, दैत्य हैं और सोच-विचारकर जो हम अपने जीवनमें सद्गुण सद्वृत्ति धारण करते हैं वह अदितिके वंशके हैं, हमें हमारे लक्ष्य तक पहुँचनेवाले हैं। पर दोष तो दोनोंमें ही आते हैं।

तो हिरण्यकशिपुका जो वर्णन किया है—'हिरण्यं कशिपुर्यस्य' कशिपुर् माने शैय्या पलंग—सोनेकी शैय्या पर सोनेवाला। अविद्याने परमात्माको आवृत्त कर दिया। जानते ही हैं आप-रोज पाठ करते होंगे यहाँ—'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्' सत्यके मुँहपर ढक्कन कहाँसे आया? कि इस हिरण्यमय पात्रसे। 'हितं भवति रमणीयं च भवति'—एक ऐसी वस्तु है यह कि चाहे तो हम इससे धर्म करें, दान करें, व्रत करें—अपना हित-साधन कर लें और चाहें तो रम लें, मजा ले

लें, भोग-मौज करें। तो अर्थ और काम दोनोंकी सिद्धि होती है धर्मसे। अब हिरण्यकशिपु जो है सो अर्थ-वृत्ति है और भोगी है—उसकी नजर है बिलकुल पैसेपर और भोग-रागमें संलग्न है। अब उसको मिल गया ब्रह्माजीका वरदान। ब्रह्माजी माने हमारे ब्रह्माण्डके अन्तःकरणसे उपहित चैतन्य है। ब्रह्मा माने जड़ नहीं, ब्रह्मा माने चैतन्य। परन्तु, जो समष्टि-प्रकृतिके सूक्ष्म-रूपसे उपहित होता है उसको 'हिरण्यगर्भ' बोलते हैं और जो सूक्ष्म-ब्रह्माण्डसे उपहित होता है, उसको 'ब्रह्मा' बोलते हैं—उनका मिल गया वरदान।

देखो, ब्रह्मा अधिदैव हैं और हमारा अन्तःकरण अध्यात्म है। हमारे अन्तःकरणने क्या किया कि हमारी अर्थ-दृष्टि और भोगदृष्टिको सहायता दी, वरदान दे दिया, उसके ऊपर अनुग्रह कर दिया—हाँ बेटा, अब तुम भोगो, सोनेके पलंग पर पर सोओ, धन इकट्ठा करो। तो अर्थ और कामकी प्रधानता हो गयी हिरण्यकशिपुके जीवनमें। लेकिन, संसारका भोग भोगनेसे क्या कभी किसीको तृप्ति हुई है? ब्रह्मा आवें उसके पास, रुद्र आवें, नारद आवें—बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि आ-आकरके हिरण्यकशिपुके सामने उसकी स्तुति करते थे और यदि कोई होम करे संसारमें—'इन्द्राय स्वाहाः' तो इन्द्र विचारे तो देवता बनकर खड़े रहें कहीं और हिरण्यकशिपु वह आहुति बीचमें ही लेकर खा जाता था। वरुण, कुबेर, इन्द्र, अग्नि—सब-के-सब भूखे। संसारका सारा भोग उसने अपने काबूमें कर लिया, सारा अर्थ अपने काबूमें कर लिया। परन्तु, भागवतका कहना है कि—

नातृप्यदजितेन्द्रियः। (७.४.१९) हिरण्यकशिपुको विषय-भोगसे तृप्ति नहीं हुई। समस्त ब्रह्माण्डका भोग हिरण्यकशिपुको प्राप्त था, क्योंकि ब्रह्माजीने कहा कि अब हम रिटायर्ड होते हैं बाबा—बच्चे कबतक पैदा करते रहेंगे? संसारका धन और भोग तुम सम्हालो। दे दिया सब अपने बेटेको। लेकिन-हिरण्यकशिपुको तृप्ति हुई क्या? बोले—नहीं,

हमको केवल बापकी ही सम्पत्तिसे सन्तोष नहीं है, हमको तो बाप-के-बाप वाली सम्पत्ति भी चाहिए। विष्णु भगवान्‌को भी हम काबूमें करके रखेंगे। क्या होता है विष्णु?

क्यों तृप्ति नहीं हुई, इसका कारण बताया। 'नातृप्यदजितेन्द्रियः'—क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें नहीं थीं। असलमें हम भोगको वशमें नहीं कर सकते, अर्थको भी वशमें नहीं कर सकते। वशमें करनेका मतलब यह नहीं कि दुनियाका सारा धन हमारे हाथमें आजाये या दुनियाका सारा भोग हमको मिल जाये। वशमें तो वह चीजकी जाती है जो अपने पास होती है। तो, जबतक हमारी इन्द्रियाँ हमारे वशमें नहीं होंगी—यह अद्‌भुत है—इन्द्र भले ही दैत्यके वशमें हो जाये इन्द्रियाँ दैत्यके वशमें नहीं हो सकती। आपको मीमांसा शास्त्रका सिद्धान्त क्या सुनावें जरा टेढ़ा पड़ेगा! हम लोग जो यज्ञ-कर्म करते हैं उसमें देवता प्रधान नहीं होता है, देवता केवल अङ्ग होता है, प्रधान होता है कर्म और कर्म ही फल देता है। देवताका तो केवल अनुग्रह ही होता है—फल तो अपना कर्म ही देता है। इसको आप ऐसे समझिये कि आप कोई अच्छा काम करें और सरकार उससे प्रसन्न हो जाये, तो यदि वह आपका अच्छा काम बना रहेगा तो सरकार बदलने पर भी आपका वह अच्छा काम रहेगा और फल देगा। लेकिन, अच्छा काम न हो और कोई मिनिस्टर आप पर खुश हो? पहलेकी बात है एक सेठको एक मिनिस्टरने पाँच हजार एकड़ जमीन दे दी, थोड़े दिनोंमें मिनिस्ट्री बदल गयी। बदल गयी तो दूसरी मिनिस्ट्रीने कैन्सिल कर दिया। पहले मिनिस्टरने जो देनेको कहा था सो नहीं दिया। बात यह है कि हर मनवन्तरमें देवता बदलते हैं—इन्द्र देवता प्रत्येक मन्वन्तरमें बदलते हैं। लेकिन, हमारे कर्मका फल यदि एक मन्वन्तरमें न मिले तो कल्पमें मिलेगा, कल्पमें नहीं मिलेगा तो महाकल्पमें मिलेगा—कर्म बना रहेगा तो वह अपना फल देगा और

देवता—देवता तो मिनिस्टर है—शामको मिनिस्टर हुआ सुबह बदल गया। विवाह हुआ, रातको पति-पत्नी दोनों मिले, दोनोंमें लड़ाई हुई, तीसरे-पहर तलाक हो गया—मौलवीके सामने और फिर मेल-जोल हो गया तो चौथे-पहर फिर दुबारा शादी हो गयी। तो देवता लोग भी मरते-जीते रहते हैं। इसलिए, फलदाता देवता नहीं होते हैं, फल-दाता अपना कर्म होता है।

तो जो हमको ये इन्द्रियाँ मिलती हैं, हाथमें कर्म करनेकी शक्ति, पाँवमें चलनेकी शक्ति, जीभमें बोलनेकी शक्ति—इनमें देवताका अनुग्रह होनेपर नहीं बोलते हैं। हाथका देवता इन्द्र है जरूर, परन्तु सारी इन्द्रियाँ इन्द्रके द्वारा माने कर्माराध्य देवताके द्वारा बनायी हुई हैं, इसके लिए 'इन्द्र सृष्टं, इन्द्र-दत्तं इन्द्र-जुष्टं इन्द्रियम्'—इन्द्रियको इन्द्रिय क्यों कहते हैं? क्योंकि ये कर्मसे बनी हैं और कर्मने हमें ये इन्द्रियाँ दी हैं और कर्म ही इन्हें जीवित रखता है। यदि कर्म नहीं हो तो हमारी इन्द्रियाँ जीवित नहीं होंगी—इसलिए इन्द्रियोंको 'इन्द्रिय' कहते हैं। यह पूर्व-मीमांसाका सिद्धान्त है कि कर्म ही प्रधान होता है, देवता प्रधान नहीं होता। कर्मके बिना देवता कुछ दे ही नहीं सकता।

तो, ये जो इन्द्रियाँ हैं, ये दैत्यके शरीरमें भी रहती हैं और देवताके शरीरमें भी रहती हैं और मनुष्यके शरीरमें भी रहती हैं। परन्तु, इन इन्द्रियोंको यदि कोई दैत्य चाहे कि हम वशमें कर लें तो नहीं कर सकता और देवता भी नहीं कर सकता। देवता भोग-प्रधान होते हैं और कर्म वहाँ होता नहीं। परन्तु, मनुष्य शरीरमें इन्द्रियोंको वशमें किया जा सकता है। दैत्य हिंसा-प्रधान होते हैं, देवता भोग-प्रधान होते हैं और मनुष्य कर्म-प्रधान होते हैं। तो, यह जो मनुष्य-शरीर है यह स्वर्गमें रहनेके लिए नहीं है इसको करने दो—यह कर्म करनेके लिए है। इसमें जो भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करना चाहे वह नया कर्म करके अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर सकता है।

तो **'नातृप्यदजितेन्द्रियः'**—यह जो हिरण्यकशिपु है इसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं थीं, इसलिए इसको तृप्ति नहीं हुई। उसके पास शरीर था—बहुत स्थायी शरीर था—दीर्घजीवी और उसके पास भोग भी थे और उनको वह भोगता भी था, परन्तु तृप्ति नहीं थी—

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्यते॥

(भागवत ९.१९.१३)

संसारमें जितना सोना है—हिरण्यं, जितनी मोटर-हाथी-घोड़े हैं, जितनी स्त्रियाँ हैं, यदि एक ही व्यक्तिको सब-का-सब दे दिया जाये तब भी उस मनुष्यकी तृप्ति नहीं होती है। **'न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्यते'**—कामने जिनके मनको घायल कर दिया है, चोट पहुँचा दी है, वह तो छटपटा रहा है, कामकी आगमें जल रहा है, उसके ऊपर बूँद-बूँद विषयोंको डालनेसे तृप्ति कहाँसे होगी? इसीसे बताया कि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(भागवत ९.१९.१४)

यह श्लोक महाभारतमें, मनुस्मृतिमें, विष्णु-पुराणमें सर्वत्र आता है। यदि कोई चाहे कि हम इन्द्रियोंको भोग दे करके उनको तृप्त कर लेंगे, तो ये इन्द्रियाँ—कामनाएँ कभी तृप्त नहीं होंगी। क्योंकि आगमें आहुति डालते रहनेसे आग बुझती नहीं है और-और बढ़ती जाती है। इसी प्रकार कामनासे भी कभी तृप्ति नहीं होती। तो हिरण्यकशिपुके साथ भी ऐसा ही हुआ—वह भोग करता जाये और उसकी अतृप्ति बढ़ती जाय। तब उसके जीवनमें क्या हुआ कि—

'दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः'—दृप्त हो गया। जब इतना ऐश्वर्य मिला, इतना वैराग्य मिला, ऐसे देवता लोग हाथ जोड़ने लगे और नारदादि उसकी स्तुति करने लगे, ब्रह्मादि आकर उसकी सभामें खड़े होने

लगे—जिन्होंने वरदान दिया था उसको, जब वे ही सभामें खड़े होने लगे तब 'दृप्तस्य'—उसको अभिमान हो गया। इसमें वेदका कहना है कि—

'हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्मं अतिक्रामति।'

जो संसारके भोगको प्राप्त करके दृप्त हो जाता है—माने फूल जाता है—तो धर्मका अतिक्रमण करने लगता है। हर्ष होता है तो आदमी फूलता है और जब शोक होता है तो आदमी सूखता है—ये दोनों रोग हैं। हर्षमें फूल जाना रोग है—और विषादमें सूख जाना रोग है। इसीसे गीतामें श्रीकृष्णने भक्तका लक्षण बताया—

'यो न हृष्यति न द्वेष्टि'—कि भक्तके जीवनमें न हर्ष है न विषाद है। तो 'हृष्टो दृप्यति'—जब आदमी विषय-भोग प्राप्त होनेसे, कुर्सी प्राप्त होनेसे, ऐश्वर्य प्राप्त कर करके, ममत्वका घेरा बढ़ाकरके खुश होता है तब उसको दर्प हो जाता है। यह 'दर्पण' शब्द इसी 'दर्प' शब्दसे बना है। अब तो हम जानते नहीं है कैसे होता है, पर गाँवमें हमने देखा था कि आदमी दर्पणमें देखकरके अपनी मूँछ सुधारते थे और उसके कोनेको ऐंठ करके ऊँचा करते थे—अब तो मूँछका ही मोक्ष हो गया, समस्या ही नहीं रही। मिर्जापुरमें तो यहाँ तक होता कभी-कभी कि सामनेसे कोई मूँछ ऐंठता हुआ आ रहा है और दूसरी ओरसे भी कोई आ रहा है तो वह बोलता—अच्छा, हमको देखकर तुम मूँछ ऐंठते हो? बोले—नहीं-नहीं स्वाभाविक ही कर रहा हूँ। कि नहीं, तुम हमको मूँछ दिखा रहे हो—ले डंडा और सिर फोड़ दे। इसको क्या बोलते हैं? कि 'दर्पण'—'दृप्यति अनेन इति दर्पण'—जिससे मनुष्यके मनमें अभिमानका उदय होवे उसका नाम है दर्पण। हम बड़े सुन्दर हैं, हमारे बाल बड़े सुन्दर हैं, आँख बड़ी सुन्दर हैं, नाक बड़ी सुन्दर है, होठ बड़े सुन्दर हैं—जो मनुष्यके मनमें अभिमान दे उसको बोलते हैं 'दर्पण'।

अच्छा, तो क्या हुआ कि हिरण्यकशिपुका अभिमान बहुत बढ़ गया और सभी लोक उसके कारण दुःखी हो गये। देवता भी परेशान। अन्तमें सब मिलकर भगवान्‌के पास गये और उनसे अपना कष्ट सुनाया। सब कुछ सुनकर भगवान्‌ने कहा कि—

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥

(भागवत, ७.४.२७)

हिरण्यकशिपु इस समय नष्ट करने योग्य नहीं है। तो कब होगा? जब यह वेदसे, गायसे, देवतासे, ब्राह्मणसे, धर्मसे, और साधुसे और मुझसे विद्वेष करने लगेगा, तब इसका विनाश अवश्यम्भावी है, थोड़ी देर प्रतीक्षा करो, इसके घरमें भगवान्‌का भक्त आनेवाला है। पहले इसने संतका-सनत्कुमारका अपराध किया था तब असुर योनिमें आगया। अब यहाँ इसका विनाश तब होगा जब यह प्रह्लादका विरोध करेगा।

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा।
जरहिं नगर अनाथ कर जैसा॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानि।
कर कल्याण अखिल कै हानि॥

देखो, तुम लोग हमारी शरणमें आये और हम झट तुम्हारी ओरसे चलकर उससे लड़ पड़ें, यह ठीक नहीं है। जब यह किसी साधुसे, संतसे विद्वेष करेगा तब हम इसका नाश करेंगे। 'हनिष्येऽपिवरोर्जितम्' ब्रह्माजीने वर दिया है तो क्या, हम इसको मार डालेंगे, तुम लोग कोई चिन्ता मत करो।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१४)

साधन जितने भी होते हैं, अपने हृदयको पवित्र करनेके लिए होते हैं। यदि आपका साधन -ज्ञान, ध्यान, योग, धर्म—आपके हृदयको पवित्र न करे तो आपके जीवनमें परिश्रम हुआ, साधन नहीं हुआ। साधन कोई भी हो, उससे हमारे हृदयमें पवित्रता आनी चाहिए।

तो पहली बात यह है कि आप सत्सङ्ग कीजिये—

प्रथम भगति संतन कर सङ्गा।
दूजी रति मम कथा प्रसङ्गा॥

जब सत्सङ्ग मिलता है तब भगवान्‌की कथा सुननेको मिलती है। और जब भगवान्‌की कथा सुनते हैं, उनके चरित्र सुनते हैं, उनके अनुपम-अद्वितीय गुणोंके बारेमें सुनते हैं, उनकी लीलाके पराक्रमोंके बारेमें सुनते हैं, तब हृदयमें हर्ष होता है। ऐसा हर्ष जैसा एक युवक और एक युवा युवतीके मिलनमें होता है; जैसा हर्ष धनकी प्राप्तिमें होता है, जैसा हर्ष गौरव-वैभव प्राप्त करनेसे होता है। ऐसा हर्ष जब भगवान्‌की कथा सुननेसे हमें होने लगे—शरीरमें रोमाञ्च हो जाय, आँखोंसे आँसू बहने लगे, कण्ठ गद्‌गद हो जाय, तब जीवन सफल हो जाय।

देखो, संसारमें किन-किन बातोंके लिए नहीं रोते हैं—बेटेके लिए रोते हैं, बेटीके लिए रोते हैं, धनके लिए रोते हैं, इज्जतके लिए रोते हैं, शरीरमें रोग हो जाता है तो रोते हैं—रोते-ही-रोते तो हैं। पर यदि यह रोना भगवान्‌के लिए आ जाय—प्रेमसे आवे, चाहे संयोग-वियोगसे आवे—बस आ जाय, तो जीवन धन्य-धन्य हो जाय।

सोचो आप—जब गाली देनेका मन होता है तब कितनी तेज आवाजसे गाली देते हैं और नौकर पर जब चिल्लाते हैं तब—पूछो ही मत और बच्चेको डाँटते हैं तब कितनी जोरसे डाँटते हैं, केवल भगवान्‌का नाम लेनेके लिए ही शक्ति नहीं रहती है? कहाँ चली जाती है वह शक्ति? अरे, खुलकर भगवान्‌के लिए उद्‌गान करो। पुकारो भगवान्‌को—कृष्ण, गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे मुरारे। आनन्दमें आकर इस तरह नाचने लगो जैसे किसी भूत-प्रेतका आवेश तुममें हो गया हो—कभी हँस रहे हैं, कभी रो रहे हैं।

एक लीलाकी बात सुना देते हैं आपको। एक दिनकी बात है श्रीकृष्ण सूर्यास्तके समय किसी गोपीके घरमें घुस गये। अन्धेरा था, सासकी आँख जरा कमजोर थी, गोपी रसोईमें थी, किसीने उनको घुसते नहीं देखा। अन्दर जाकर छिप गये। उसी समय गोपीने सब्जी छौंकी, तो जो मिर्चकी गन्ध निकली और श्रीकृष्णकी नाकमें पहुँची तो श्रीकृष्णको जोरसे खाँसी आ गयी। खाँसी सुनी तो सासने दरवाजेपर-से ही पुकारा—कौन है घरमें और लठिया लेकर चली पकड़ने। अब आगे भागें त्रिलोकीनाथ और पीछे भागे बुढ़िया। खदेड़ती ही जा रही है, रुकनेका नाम ही नहीं लेती है। और देखो, इन सर्वेश्वर, अखिल-ब्रह्माण्ड-नायक प्रभुको—चोरी-छिपे भक्तके घरमें आये और जब चोरी पकड़ी गयी तब भागते जा रहे हैं, भागते जा रहे हैं। भगवान्‌की इस लीलाको देखकर भगतको भी हँसी आ गयी। तुम ऐसी-ऐसी और लीलाओंका अनुसन्धान करो। भगवान्‌के बारेमें चाहे जैसे सोच सकते हो। तुम्हारी सोचसे भगवान्‌का कुछ बिगड़ेगा नहीं। कामसे सोचो, क्रोधसे सोचो, लोभसे सोचो, मोहसे सोचो, चाहे जैसे सोचो—सोचो भगवान्‌के बारेमें ही। कभी पुकारने लगो—हाय-हाय इतने दिन हो गये—

ऐसेहि जनम समूह सिराने!

इतने जन्म बीत गये और प्रभु अभीतक तुम्हारे चरणोंमें प्रीति नहीं हुई। कभी बैठकर ध्यान करने लगो—वे मुरली मनोहर, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर, यमुनाजीके किनारे वंशीवटके पास गायोंको पानी पिलाते, ग्वालबालोंके साथ मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए। प्यार भरी दृष्टिसे देखते हुए, पीताम्बर फहराते हुए देखो, वे आ रहे हैं।

भगवान् क्या कर रहे हैं बाबा यह मत देखो, यह देखो कि तुम्हारा मन क्या कर रहा है? सामनेसे कोई भी आ गया है और तुमने सोचा कि अरे भगवान् आ रहे हैं तो तुम्हारा हृदय भगवन्मय हो गया। यह भक्ति अपने हृदयके निर्माणकी कला है, अपने हृदयके निर्माणकी विद्या है।

आप सचमें दो बातका ध्यान रखना। बहुत सीधी-सीधी बात है, टेढ़ी जरा-भी नहीं है। एक तो आप बोलते क्या हो? आपकी जुबान पर क्या रहता है? और, दूसरी बात पर जरा ध्यान देना—जब आप बोलते नहीं होते हो तब आपका मन क्या करता रहता है? आपका जीवन दो ही है—चाहे आपके सिरपर मुकुट हो या चाहे आप कोई भी 'मैन' हों—आपका जीवन दो ही बातोंसे प्रकट होता है—आपके मुँहसे कैसे शब्द निकलते हैं—यह आपका व्यवहार है और, जिस समय आप नहीं बोलते होते हैं, उस समय आपका मन किसका चिन्तन करता है? दोस्तका चिन्तन करता है, दुश्मनका चिन्तन करता है, नास्तिकका चिन्तन करता है कि धनका चिन्तन करता है—उस समय आपका मन करता क्या है? यह चिकनी चमड़ी वाले, आपका बहुत बड़ा नाम, बहुत बड़ा व्यापार—आप यह नहीं हैं। आप यह हैं जो आप किसीसे बात न करते समय सोचते हैं। आप वह हैं जो आपका मन सोचता है। जीवन दो हिस्सोंमें बँटा है—**'व्यवहारः स्फुरणरूपोवा'** या तो आप जैसी बात करते हैं वैसे हैं या तो जैसी आप सोचते हैं वैसे हैं। आप दुश्मनके बारेमें सोचते

हैं आप स्वयं दुश्मन हैं; आप दोस्तके बारेमें सोचते हैं , आप स्वयं दोस्त हैं; आप धनके बारेमें सोचते हैं, आप स्वयं जड़ होते जा रहे हैं—और आप ईश्वरके बारेमें सोचते हैं तो आप ईश्वर होते जा रहे हैं।

प्रह्लादने इसी भक्ति के बारेमें कहा—

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते

भा. ७.७.३५

हर-साँसमें—लम्बी साँस खींचकर प्रह्लाद बोलते, **'हरे नारायण जगत्पते।'** बाहर उनकी बुद्धि नहीं जाती; संसारकी कोई शर्म नहीं थी। जब इस तरह मन भगवान्‌में लग जाता है तो संसारके सारे बन्धन कट जाते हैं।

तदापुमान् मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः।

७.७.३६

चाहे आप ज्ञानी बन जायँ पर जबतक आपके हृदयका निर्माण नहीं हुआ, हृदयमें परिवर्तन नहीं हुआ, अन्तःकरण नहीं बदला, तबतक वह ज्ञान न आपके काम आया, न दूसरोंके काम आया—बेकार गया वह ज्ञान। अज्ञानसे किसीको दुःख नहीं होता। सुषुप्तिमें अज्ञान रहता है। उस समय न हम स्वयं दुःखी रहते हैं; न हम दूसरोंको दुःखी करते हैं। स्वयंको दुःखी-सुखी करनेवाला अन्तःकरण है, दूसरोंको भी दुःखी-सुखी करनेवाला अपना अन्तःकरण ही है। जबतक इस अन्तःकरणमें परिवर्तन नहीं होगा और यह परिवर्तन केवल तदाकार-वृत्तिसे होगा—

तद्बुद्धयास्तदात्मानास्तद्धन्निष्ठातत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

गीता ५.१७

जबतक जीवनमें परिवर्तन नहीं होगा, अन्तःकरणमें परिवर्तन नहीं होगा। जबतक आपकी वाणी भगवन्मयी नहीं होगी, आपका अन्तःकरण भगवन्मय नहीं होगा, तबतक आप अपने लिए भी दुःखदायी रहेंगे और दूसरोंके लिए भी दुःखदायी रहेंगे। और अन्तःकरणमें यह परिवर्तन भगवद्भक्तिसे, भगवद् प्रेमसे ही होना सम्भव है। अतः सुखी रहना और सुखी रखना हो तो भक्ति कीजिए।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा,
मनोरथेनासति धावतोबहिः॥

भागवत ५.१८.१२

प्रह्लादजीने कहा कि जिसके हृदयमें भगवान्‌की अकिञ्चन-भक्ति है, उसमें दूसरा कुछ नहीं है, केवल भक्ति-ही-भक्ति। ऐसी भक्ति नहीं कि हे भगवान्, हमको एक बेटा दो—और भगवान् कुछ बोले नहीं, चुप रहे तो मान लिया—**मौनं सम्मति लक्षणं**—देंगे, जरूर देंगे। हे भगवान्, एक वर्षके भीतर ही दे दो। लो, भगवान्‌के लिए समय भी बना दिया। बेटा हो महाराज, सो दीर्घजीवी हो, स्वस्थ हो, सुन्दर हो, माता-पिताका भक्त हो—तो अब आप बताओ कि आपका प्रेम भगवान्‌से है कि आपका प्रेम बेटेसे है। जब भगवान्‌की भक्ति करके आप भगवान्‌से कोई चीज माँगते हैं तो आपका प्रेम भगवान्‌से नहीं है उस चीज से है—हमारी माँगी हुई चीज हमको दे दो और तुम जाओ, सो जाओ।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि नहीं भगवान्, हम तुमसे लेना-ही-लेना नहीं चाहते हैं, देना भी चाहते हैं। हम इतना जप—साढ़े तीन करोड़ जप करेंगे, इतनी पूजा करेंगे, इतना भोग लगावेंगे और इनकी कीमत पर तुम हमको मिल जाओ। माने किसी कीमत पर भगवान्‌को खरीदना चाहते हैं। पर भगवान्‌के बदलेमें तो दुनियामें

कोई ऐसी चीज नहीं होती है जिसकी कीमत पर भगवानको खरीदा जा सके।

आपने सुना होगा कि नारदजी ने एकबार सत्यभामाजीको समझाया कि पुरुषोत्तम-मास है, कोई बड़ा दान करना चाहिए। सत्यभामाजी ने पूछा कि बड़ा दान क्या होता है? नारदजी बोले कि तुम्हारे जीवनमें सबसे बड़ी चीज क्या है? बोलीं कि हमारे पतिदेव हैं। बोले कि ठीक है, तुम उन्हींका दान कर दो, इतना बड़ा पुण्य होगा तुमको कि बस क्या पूछना? अब महाराज पुरुषोत्तम मास, लिया सत्यभामाजी ने अपने हाथमें जल, फूल, अक्षत और श्रीकृष्णका हाथ पकड़ा। फिर पूछा कि किसको दान करें? तो झट नारदजी, बोले—'हमसे बढ़िया ब्राह्मण और कोई नहीं मिलेगा। दान हो गया श्रीकृष्णका। नारदजीने हाथ पकड़ लिया और बोले—'हमारी वीणा तुम उठाओ और चलो हमारे पीछे-पीछे।' अब सत्यभामाजी को ख्याल आया कि यह मैंने क्या किया? ब्राह्मण तो हमारे पतिको लेकर चला जायेगा और हम बिरहणी हो जायेंगे। बोली—'नहीं महाराज, इनको मत ले जाओ। इनको लौटानेकी कोई चीज है? बोले कि इनके बराबरकी कोई चीज हमको दे दो, हम इनको छोड़ देंगे।' तराजू लाया गया। एक ओर श्रीकृष्ण बैठा दिये गये और दूसरी ओर यह लो सोना, यह लो मोती-हीरा, यह लो द्वारका, यह लो ब्रह्माण्ड—मैं मालकिन हूँ, सब दे सकती हूँ। पर महाराज, श्रीकृष्णका पलड़ा ऐसा भारी कि उठे ही नहीं। सबकुछ दे दिया उन्होंने पर कुछ हुआ नहीं। सारी द्वारकामें कोहराम मच गया। रुक्मिणीजीके पास खबर पहुँची—श्रीकृष्णका दान हो गया, अब वे नारदजीके साथ जानेवाले हैं। सब पत्नियाँ आ गयीं, किसीको कुछ नहीं सूझे। अन्तमें रुक्मिणीजीने कहा—'हमको मालूम है, इनकी बराबरीकी चीज। उन्होंने लिया एक तुलसी-पत्र और उसपर लिखा

भगवान्‌का नाम और तराजूके दूसरे पलड़ेपर उसको रख दिया। अब वह भारी पड़ गया और श्रीकृष्ण हल्के हो गये। लौट आये।

कहनेका अभिप्राय यह है कि आप हीरेसे, मोतीसे, जपसे, तपसे, अपने बलसे, पौरुषसे, कामनासे यदि भगवान्‌को वशमें करना चाहते हैं तो आप कभी भगवान्‌को वशमें नहीं कर सकते। भगवान्‌को वशमें करनेके लिए चाहिए एक निर्मल शुद्ध भक्तिमय हृदय जैसे हमारे घरमें कोई भला मानुष आवे तो हम उसको किसी गन्दी जगहमें या अव्यवस्थित कमरेमें नहीं बुलाते, बैठाते। ऐसे ही यदि भगवान्‌से मिलना है तो अपने हृदयके एकान्तमें मिलो—

'यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना।'

ऐसे एकान्त कमरेमें मिलो भगवान्‌से कि वहाँ दूसरा कुछ न हो। दूसरा कोई न हो सो बात नहीं—मच्छर न हो, मक्खी न हो, आदमी न हो बिलकुल एकान्त हो, पर और कुछ भी न हो। यह नहीं कि वहाँ हीरा-मोती, सोना-चाँदी, अपना वैभव रख दिया एक ओर और भगवान्‌से मिलना भी चाहें। भगवान् हृदयके एकान्तमें मिलते हैं।

तो एक होते हैं भगवान्‌का भजन करके उनसे कुछ लेनेवाले और एक होते हैं अपने भजन-पूजन, जप-तपसे भगवान्‌को खरीदनेवाले और एक होते हैं जो कहते हैं कि बाबा, हमारे पास तो कुछ नहीं है, न जप है, न तप है—

कबहूँ भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न जप तप मख उपवासा॥
सहज सुभाव न मन कुटिलाई।
यथा लाभ सन्तोष सदाई॥

भगवान् मिलेंगे तो अपनी कृपासे मिलेंगे, अपनी करुणासे मिलेंगे, अपने अनुग्रहसे मिलेंगे।

एक मैंने सच्ची घटना देखी—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीहरिबाबाजी महाराजको रतनगढ़ बुलाना चाहते थे। सब तय हो गया, तिथि निश्चित हो गयी। कोई डेढ़ सौ आदमी जानेवाले थे बाबाके साथ रतनगढ़। तो मथुरासे ट्रेन बुक करा ली—मैं भी जानेवाला था साथमें। पर बीचमें उनका एक आदमी आया था और उसने कुछ ऐसी बात कह दी कि वह बाबाको जमी नहीं और खास जानेके दिन उन्होंने कह दिया कि हम नहीं जायेंगे। यह संन्यासी होनेके बादकी बात है—और भाईजीसे हमारा प्रेम सम्बन्ध बहुत पुराना। तो हमने भाईजीको तार दिया कि आपके आदमीसे कुछ गलती हुई है कि जिसके कारण श्रीहरिबाबाजीने जानेसे मनाकर दिया है। तो, भाईजीका रतनगढ़से श्रीहरिबाबाजीके नामसे तार आया कि महाराज, हमसे भी गलती होती है, हमारे आदमीसे भी गलती होती है पर आप हमारी योग्यता देखकर थोड़े ही आते हैं, यह तो आपकी स्वाभाविक करुणा है, स्वाभाविक कृपा है उससे आते हैं। हमारे गुण और हमारे दोष देखकर हमारे यहाँ मत आइये, अपनी स्वाभाविक करुणासे आइये। और यह तार आते ही श्रीहरिबाबाजी फिर तैयार हो गये और रतनगढ़ गये और ७-८ दिन वहाँ हम सब रहे—बड़े-बड़े सेठ लोग गाँवके ग्वारियोंको पानी पिलावें, उनको खिलावें, उनका जूठा उठावें।

तो यह जो स्वाभाविक करुणा है ईश्वरकी, वही ईश्वरकी प्राप्तिके लिए साधन है। हमारी योग्यता, हमारी सुन्दरता, हमारी मधुरता, हमारे गुण भगवान्‌को अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए काफी नहीं हैं; क्योंकि सद्गुणोंके निवास-स्थान तो अचिन्त्य-अनन्त-कल्याण-गुणगण-निलय तो साक्षात् भगवान् हैं, उनको कोई अपने गुणोंसे क्या आकृष्ट करेगा? जब भगवान्‌की करुणा उमड़ती है, हमारे हृदयमें भगवान्‌की भक्ति आती है, भगवान्‌की प्रीति आती है। जब शीशेमें किसीकी परछाँई पड़ने लगे तो समझ जाते हैं कि वह आदमी आ रहा है। लिफ्टमें शीशा लगा रहता है, ज्यों हम दरवाजे पर प्रवेश करते हैं

लिफ्टमैन शीशेके द्वारा देख लेता है कि कौन आ रहा है। ऐसे ही आपका हृदय है शीशा! जब भगवान् आपके पास आने लगते हैं तब उनकी परछाँई आपके हृदयमें सबसे पहले दीखने लगती है और जब भगवान्‌की परछाँई हृदयमें दीखने लगती है तब समझो कि आपके हृदयका शीशा जो है वह निर्मल है, स्वच्छ है और जब आप किसीकी परछाँईसे भी प्रेम करते हैं, किसीकी फोटोसे भी प्रेम करते हैं तब जिसकी फोटो है वह तो प्रभावित हो ही जायेगा कि अरे मेरे नामसे इतना प्रेम, मेरी फोटोसे इतना प्रेम, मेरी वस्तुसे इतना प्रेम। जब कोई हृदयमें भगवान्‌के उस प्रतिबिम्बित रूपसे भी प्रेम करता है तब भगवान् उसके प्रेमके वशमें हो जाते हैं और जब भगवान् आकर हृदयमें बस जाते हैं तब उनकी स्तुति करनेके लिए, उनकी पूजा करनेके लिए, उनकी सेवा करनेके लिए सब देवता सद्गुण-सम्पन्न होकर अपना-अपना शृंगार करके अपनी-अपनी विशेषता लेकर आते हैं। हमारा कान मधुर शब्द लेकरके हृदयमें उपस्थित हो जाता है, हमारी त्वचा मधुर-स्पर्श लेकर भगवान्‌की सेवामें आजाती है, हमारी आँख सुन्दररूप लेकर भगवान्‌की सेवामें आजाती है, हमारी रसना सुन्दर भोग लेकर, सुन्दर-रस लेकर भगवान्‌की सेवामें आती है, हमारी नासिका सुगन्ध लेकर भगवान्‌की सेवामें आती है, हमारा मन प्यार लेकर भगवान्‌की सेवामें आता है, हमारी बुद्धि विचार लेकर भगवान्‌की सेवामें आती है।

सर्वेगुणैस्तत्त समासते सुराः।

सब-के-सब देवता—सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, अश्विनीकुमार—ये इन्द्रियोंके देवता हैं—सब-के-सब देवता वहीं आकर जहाँ हृदयमें भगवान् रहते हैं, वहीं ठहर जाते हैं और अपने पास जो कुछ अच्छी-अच्छी चीजें हैं लाकर भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित करते हैं और सेवा होने लगती है भगवान्‌की—

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः।

जिनके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है और हमको यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए—हमेशा एक पाँव मोटरमें ही रहता है—अरे कहीं प्रेम हो तो वहाँ टिके कुछ देर! 'मनोरथेन' पर ध्यान दो—मनके रथपर सवार होकर वे हमेशा घूमते ही रहते हैं; ट्रेनमें घूमते रहते हैं, प्लेनमें घूमते ही रहते हैं। तो हृदयमें भगवान् नहीं, सद्गुण नहीं, देवता नहीं और मनके रथपर चढ़कर मृग-मरीचिकाके पीछे यहाँ-से-वहाँ, वहाँ-से-यहाँ दौड़ते रहते हैं, भटकते रहते हैं। इसलिए महाराज, यह जो भगवद्-भक्ति है, भगवान्‌की भक्ति भगवान्‌का प्रेम यह सर्वगुणोंका निधान है। इसीसे यहाँ प्रह्लाद-चरित्र प्रारम्भ करते हुए यह बात कही गयी है—

गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते।
वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः॥

(भागवत ७.४.३६)

प्रह्लादके गुणोंका कहाँ तक वर्णन करें, वे असंख्य थे—उनकी गिनती तो कोई कर नहीं सकता। प्रह्लादके गुण 'संख्येयै' नहीं है। कहाँ तक वर्णन करें? कि तब? देखो उसकी महिमाकी एक बात कहते हैं। वह क्या है? कि वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः। ये जो प्रह्लाद हैं इनकी नैसर्गिकी रति भगवान्‌में—'निसर्ग' है। निसर्ग क्या होता है? निसर्ग माने स्वभाव। तो जैसे पानीका निसर्ग है नीचेकी ओर बहना, अग्निका निसर्ग है ऊपरको उठना—जलनेपर अग्नि ऊपर उठती है—आँच लगने पर घी बैठ जाता है नीचे और दूध उफनने लगता है, क्योंकि दूध कच्चा होता है—तहमें बैठ जाता है घृत और ऊपर उफनने लगता है दूध। ऐसे ही प्रह्लादकी जो बुद्धि थी वह नैसर्गिक-अग्निके उर्ध्व-गमनके समान, जलके अधोगमके समान-जन्मजात-नैसर्गिक रति थी भगवान् वासुदेवके चरणोंमें।

आपकी बुद्धि कहाँ लगती है? कभी-कभी तो अपनी ओर भी देख लिया कीजिये—

ऐसेहि जनम-समूह सिराने।

दूसरोंको देखते-देखते सारी जिन्दगी बीत गयी। सारी जिन्दगी बीत गयी—हीरेको पहचानते हैं, साड़ीको पहचानते हैं, दोस्तको पहचानते हैं, दुश्मनको पहचानते हैं—दूसरोंको पहचानते-पहचानते—स्त्री-पावडरको पहचानते-पहचानते जिन्दगी बीता दी! जरा अपने दिलकी ओर भी तो देखो कि उसमें क्या है? देखो, यह दिल—जिसके बिना आदमी जी नहीं सकता—जिस परमेश्वरके बिना यह हृदय हृदय ही नहीं रह सकता, उसको छोड़कर यह सारी दुनियामें भटकता है। जरा अपनी ओर देखो—

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयते। (छां. ६.८.२)

एक चिड़िया है वह बँधी हुई है सूतके द्वारा एक लकड़ीमें, फड़फड़ाती है उड़ना चाहती है, उड़कर जाना चाहती है। लेकिन वह तो बँधी हुई है, जबतक वह उड़-पड़नेका ख्याल रखेगी तबतक उसका दुःख नहीं मिटेगा और जहाँ बँधी हुई है यदि उसी लकड़ी पर आकर बैठ जाये तो उसको विश्राम मिलेगा। तो यह जो हमारा हृदय है, यह जो हमारा मन है, यह हमारे भीतर है और अन्तर्यामी भगवान् वासुदेव हैं—अत्यन्त सुन्दर, परम मधुर, कभी मरने मिटनेवाले नहीं—अविनाशी, कभी सोनेवाले नहीं—नित्य जाग्रत्, कभी अप्रिय होनेवाले नहीं—परम-प्रेमास्पद ऐसे भगवान् वासुदेव हमारे अन्तःकरणके अन्दर अन्तर्यामी रूपसे विराजमान हैं। और हमारा अन्तःकरण उनकी ओर तो देखता नहीं, उनके साथ तो रहता नहीं। जिनके साथ बँधा हुआ है, जिन्होंने इसको जीवन दिया, जिन्होंने इसको स्फूर्ति दी, जिन्होंने इसको अपना आनन्द दिया उनको छोड़कर यह दौड़ता है।

कहाँ? कि यह अच्छी चीज है, यह हमको ज्ञान देगी, हमको यह जीवन देगी, हमको आनन्द यह देगी। आनन्दका, ज्ञानका, सत्यका खजाना तुम्हारे हृदयमें है और तुम भटक रहे हो मृग-मरीचिकाके पीछे, मृग-तृष्णाके पीछे।

देखो, ज्ञान अज्ञानको मिटाता है, वह हृदयका निर्माण नहीं करता। योग हृदयको ठप्प कर देता है और भक्ति जो है वह माँ है—जैसे माँ अपने बच्चेको सजाती है, सँवारती है, खिलाती है, पिलाती है, ऐसे ही हमारे हृदयको सजानेवाली, सँवारनेवाली, खिलानेवाली, पिलानेवाली—हमारे दिलको ठीक बनानेवाली—भक्ति है। भक्ति हमारी माँ है यही हमारे हृदयका निर्माण करती है कर्मसे सत्-स्वरूप भगवान् प्रसन्न होते हैं और ज्ञानसे चित्-स्वरूप भगवान् प्रसन्न होते हैं और भक्तिसे आनन्द-स्वरूप भगवान् प्रसन्न होते हैं और जबतक हृदयमें आनन्द-स्वरूप भगवान्का उदय नहीं होगा, वे अभिव्यक्त नहीं होंगे तबतक संसारसे वैराग्य नहीं होगा। जब आपके दिलमें आनन्द आने लग जायेगा तब आप देखेंगे कि आनन्दका झरना वही है, आनन्दकी गंगा वहीं बहती है, आनन्दका समुद्र वहीं उमड़ता है। और जब आपको अपने हृदयमें आनन्दका उत्स-आनन्दका मुम्बा, आनन्दका खजाना मिल जायेगा,तब फिर आपका बाहर भटकना बन्द हो जायेगा और जबतक वह नहीं मिलता है तबतक चाहे थोड़ी देर योग करके दिलको ठप्प कर लो, चाहे हाथसे पकड़कर धर्मके द्वारा उसको रोक लो, चाहे ज्ञानके द्वारा उसको देख लो कि वह कैसा है, लेकिन महाराज हृदयका परिवर्तन तो बिना भगवद्भक्तिके हो नहीं सकता।

वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः॥ भा. ७.४.३६
न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया।
कृष्णगृहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्॥ भा. ७.४.३७

आसीनः पर्यटन्नश्नन्छायानः प्रपिबन् ब्रुवन्।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः॥ भा. ७.४.३८

अब प्रह्लादका वर्णन करते हैं—जब बालक थे प्रह्लाद तब क्या पूछना महाराज? हिरण्यकशिपु तो इन्द्रको खिलौना बना देते थे और उससे कहते तुम इसके साथ खेलो; ब्रह्माके लिए प्रह्लादसे कहते कि देखो-देखो, मैं यह चार मुँहकी चिड़िया तुम्हारे लिए लाया हूँ, वरुणसे कह देते कि बच्चेको जब भी पानीकी जरूरत हो तब तुम देना, हवासे कहते कि जब इसको खेलते-खेलते पसीना होने लगे तब तुम इसको पंखा झलना—इतना प्रभावशाली, इतना ऐश्वर्यशाली हिरण्यकशिपु—क्या-क्या खिलौना देता होगा प्रह्लादको आप सोचो! परन्तु प्रह्लाद कहते थे कि हमको खिलौना नहीं चाहिए—**न्यस्तक्रीडनको बालो।** थे तो बालक, परन्तु उनको भगवद्बल था। 'बाल' माने बच्चा। दस वर्षका बच्चा? नहीं, उपनिषद्में 'बाल' शब्दका प्रयोग ऐसे होता है कि जिसको भगवान्का बल प्राप्त हो—

पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिः।
(बृहदा. ३.५.१)

पण्डिताई छोड़ो, यह काम नहीं देगी। संसारमें जो दुःख है, जो अज्ञान है, जो मृत्युका भय है, उसको भगवद्बलके बिना अपने बलसे कोई मिटा नहीं सकता। इसके लिए महान् बल चाहिए, भगवद्बल चाहिए।

पर खिलौनेसे खेलने लग गये तो? यह जो मातायें होती हैं न, उनको कोई काम करना होता है या किसीसे बात करनी होती है तो बच्चेको खिलौना देकर बैठा देती हैं या कह देती हैं तुम जरा यह देखना! ऐसे ही जो जीव खिलौनेमें रम जाता है उसको भगवान् खम्भेकी आड़में खड़े होकर देखते रहते हैं कि यह क्या करता है। और जब बच्चा खिलौनेसे नहीं खेलता है और रोने लगता है—माँ-

माँ-माँ, तो माँ दौड़कर आती हैं और आकर बच्चेको गोदमें उठा लेती हैं। **'न्यस्तक्रीडनको बालो जड़वत्तन्मनस्तया'**—अब मन तो प्रह्लादका बाहर रहा नहीं, बाहर से तो हो गये जड़ और मन चला गया भगवान्‌में—**'तन्मनस्तया' 'कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्'**—जैसे एक काला भूत लग गया हो। **'कृष्णग्रह'** माने काला भूत। प्रह्लादको जैसे कोई काला-भूत लग गया हो। **'न वेद जगदीदृशम्'** उनको पता ही नहीं लगता कि यह दुनिया कैसी है—ऐसी है कि वैसी है। अरे बाबा, जैसी है वैसी है। कैसी है से क्या मतलब है तुम्हारा? ऐसी है, ऐसी है, ऐसी है; वैसी है, वैसी है, वैसी है—यह सब तो भगवान्‌की ओर से विमुख करने वाली चीजें हैं। अगर तुम दुनियाकी ओर देखोगे तो कोई-न-कोई लफड़ा जरूर तुम्हारे साथ जुड़ जायेगा। दुनियामें लफड़ा-ही-लफड़ा है—वहाँ फँसो, वहाँ फँसो, वहाँ फँसो। प्रह्लादको पता ही नहीं चलता।

'आसीनः पर्यटन्नश्नन्'—बैठे हैं, बैठे हैं, सहज भावसे बैठे हैं; खा रहे हैं, खा रहे हैं; सो रहे हैं, सो रहे हैं, पी रहे हैं, पी रहे हैं, बोल रहे हैं, बोल रहे हैं—परन्तु, उनको यह ख्याल ही नहीं होता कि मैं बोल रहा हूँ, कि मैं खा रहा हूँ, कि मैं पी रहा हूँ, कि मैं चल रहा हूँ, कि मैं सो रहा हूँ, कि मैं बैठा हुआ हूँ! अपना ख्याल नहीं होता, अपने शरीर का ख्याल नहीं होता। तब क्या होता? कि—**'नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः'**—उनको ऐसा मालूम पड़ता कि मैं भगवान्‌की गोदमें बैठा हुआ हूँ, भगवान्‌ने हमको अपनी छातीसे लगा रखा है। बस, प्रह्लादको अनुसन्धान होता तो यही कि मैं भगवान्‌के, श्रीकृष्णके हृदयमें लगा हुआ हूँ।

इसमें देखो, वैराग्यकी दो कक्षा है—एक कक्षा होती है वैराग्यकी, कि दूसरी जो चीजें है वे हमारे मनको कलुषित न करें, गन्दा न करें। जैसे दूध है उसमें बाहरसे कोई चीज यदि मिल गयी तो

वह गन्दा हो गया। एक विकार दूधका यह हुआ और दूसरा विकार दूधका यह होगा कि वह सड़ने लग जायेगा, उसमें दुर्गन्ध आ जायेगी, कीड़े पड़ने लग जायेंगे। माने एक तो बाहरसे किसी चीजका दूधमें मिल जाना और एक दूधमें ही विकार पैदा होना। तो हमारे हृदयमें क्या होता है कि जब हमारा 'मैं' किसी दूसरेके साथ, दूसरी चीजके साथ मिल जाता है तब भगवान् भूल जाते हैं। लेकिन, यही नहीं, हमारा 'मैं' जब किसी परिच्छिन्नके साथ कटे-पिटे-पदार्थके साथ, देहके साथ—हड्डी-मांस-विष्ठा-मूत्रके इस पुतलेके साथ मिल जाता है तो यह 'मैं' भी भगवान्‌से अलग हो जाता है। तो जो सच्चे भक्त होते हैं उनकी न तो किसी दूसरी चीज पर नजर जाती है और न तो अपने 'मैं' पर नजर जाती है। गोपियोंके सामनेसे भगवान् कब अन्तर्धान हुए? गोपियाँ सबकुछ छोड़कर आयी थीं—घर-गृहस्थी, शृङ्गार-सामान-भोजन सब छोड़कर—गोपियाँ आयी थीं। परन्तु, कृष्णके साथ नाचते-नाचते जब उनकी नजर अपने 'मैं' पर गयी कि हम बड़ी सुन्दर, हम बड़ी मधुर, कृष्ण हमारे सौन्दर्य पर मुग्ध, हमपर लट्टू—जब गोपियाँ अपनेको देखने लगीं तब कृष्ण धीरे-से वहाँसे खिसक गये। तो सच्चा भक्त वह होता है जिसकी नजर न 'यह' पर होती है और न 'मैं' पर होती है, केवल भगवान् पर होती है—

नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः।

प्रह्लादको यह लगता कि हमारे सिर पर भगवान् हाथ रखे हैं, हमको अपनी छातीसे लगा रहे हैं, हमको चूम रहे हैं, हमको प्यार-भरी नजरसे देख रहे हैं। भगवान्‌के साथ प्रह्लाद ऐसे घुल-मिल गये कि उन्हें 'मैं' और 'मेरा' और यह दुनिया सब-का-सब भूल गया।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१५)

प्रह्लादजीका जीवन भक्ति-प्रधान है। वे भगवत्-प्रेममें पागल थे। वैसे थोड़ा-थोड़ा पागलपन तो सबके अन्दर रहता है, पर उनके जीवनमें विशेष पागलपन था। उनका चिन्तन कुछ इस प्रकारका होता—भगवन्‌के दोनों हाथ हमारी पीठ पर हैं, उनकी छाती हमारी छातीसे मिली हुई है, वे मुझको चूम रहे हैं, उनकी साँस हमको लग रही है, उनकी आँखोंसे प्रेमके आँसू निकल रहे हैं—प्रह्लादजी हर समय ऐसे ही विचारोंमें मगन रहते और बाहरसे उनका शरीर क्या कर रहा है—इसका भी ख्याल उनको नहीं रहता।

आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन्।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः॥ ७.४.३८

गोविन्दकी गोदमें प्रह्लाद बैठे हैं—मुँह-मुँहकी ओर। ऐसा नहीं कि पीठ भगवान्‌की ओर, मुँह मुँहकी ओर—माने छातीसे चिपका रक्खा है—**गोविन्दपरिरम्भितः**—भगवान्‌ने परिरम्भन कर रखा है—अपने हृदयसे लगा रखा है, दबा रखा है; भगवान् छोड़नेवाले नहीं हैं और प्रह्लादके शरीरको, चाहे बोलना पड़े, चाहे खाना पड़े, चाहे पीना पड़े, चाहे सोना पड़े, चाहे चलना पड़े—इन बातोंका उनको अनुसन्धान ही नहीं रहता था, क्योंकि भगवान्‌ने ही स्वयं—**गोविन्दपरिरम्भितः**—प्रह्लाद ने भगवान्‌का आलिङ्गन नहीं कर रखा है—इसमें जो '**परिरम्भितः**' क्रिया है, उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रह्लादने भगवान्‌को पकड़ रखा है, उसका अर्थ है कि स्वयं भगवान्‌ने प्रह्लादको पकड़ रखा है—**गोविन्दपरिम्भितः**।

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः।
क्वचिद्धसति तद्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित्॥ ७.४.३९
नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्ज्नो नृत्यते क्वचित्।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह॥ ७.४.४०
क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः।
अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः॥ ७.४.४१

लगे हैं छातीसे भगवान्‌के और ख्याल नहीं रहता कि भगवान्‌की छातीसे लगे हैं। ब्रज-मण्डलमें इसको प्रेमका बहुत ऊँचा भाव मानते हैं। 'प्रेम-वैचित्य'—इस अवस्थाका नाम है। प्रेमके कारण चित्त विपरीत हो गया है, संयोगमें वियोगका अनुभव कर रहा है, वियोगमें संयोगका अनुभव कर रहा है। भगवान् मिले हैं, तब भी ऐसा अनुभव करते हैं कि हाय-हाय वे कहाँ हैं?

अन्तःस्थितोऽपि।

श्रीकृष्ण राधारानीकी गोदमें हैं; लेकिन उनको भान हो रहा है कि श्रीकृष्ण हमारे पास नहीं हैं और प्रलाप करने लगीं—हे मधुसूदन, तुम हमको छोड़कर कहाँ चले गये? यह प्रेम-वैचित्य है। संयोगमें वियोगका भान। और, यह केवल राधारानीको होता हो या प्रह्लादको ही होता हो, सो नहीं है; सब जीवोंको होता है। सबके हृदयमें भगवान् हैं और सब भगवान्‌से मिले हुए हैं। लेकिन, चित्त इतना विपरीत हो गया है कि मिले हुए भगवान्‌की ओर न देखकर अनमिली चीजोंको पानेके लिए व्याकुल हो रहा है। यह विमुखता है और मिले हुए भगवान्‌को अनमिला समझकर जो भगवान्‌से ही मिलनेकी व्याकुलता है वह प्रेम है और भगवान्‌के मिले हुए होनेपर भी अनमिला मानकर संसारकी वस्तुओंके लिए जो व्याकुलता है यह विषयासक्ति है।

भगवान् तो हमेशा हमारे हृदयमें ही रहते हैं, कभी हमको

छोड़कर कहीं जाते ही नहीं—इस अवस्थाका वर्णन श्रीरामचरितमानस में सुतीक्ष्णजीके प्रसङ्गमें आया है।

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः॥ ७.४.३९

हाय-हाय। प्रभु कहाँ गये? हैं गोदमें छातीसे चिपके हुए! 'महावाणी'में वर्णन है कि एक दिन श्रीराधारानी और श्रीकृष्ण एक शैय्यापर पौढ़े हुए थे। प्यारीजीकी छातीपर श्रीकृष्णका हाथ था, पर उनको स्वप्न आया कि ठाकुरजी उनको छोड़कर कहीं चले गये। अब—हाय प्यारे, हाय प्यारे, हाय प्यारे, बड़े जोरसे चिल्लाने लगीं। श्यामसुन्दरने जगाया—क्या बात है प्यारीजी, बड़े जोरके दिल धड़क रहा है? प्यारीजी बोलीं—तुम कहाँ चले गये थे? बोले—मैं तो कहीं नहीं गया, तुम्हारे साथ ही हूँ। तो कभी मनमें व्याकुलता होती है—

गोवर्धनवासी साँवरे हो तुम बिन रह्यो न जाय।
ब्रजराज लड़ैते लाड़ले हो तुम बिन रह्यो न जाय॥
दर्शन को नयना तपै वचन सुनन को कान।
मिलिबै को हियरा तपै मेरे जी के जीवन प्रान।
गोवर्धनवासी साँवरे हो तुम बिन रह्यो न जाय॥

तुम्हारे दर्शनके लिए नैन छटपटा रहे हैं—

तुम्हारी वाणी सुननेके लिए हमारे कान व्याकुल हैं—

तो भक्तकी ऐसी स्थिति होती है कि भगवान्‌के साथ होनेपर भी भगवान्‌से वियोगका अनुभव करने लगता है, रोने लगता है—

मिलैहि रहत मानो कबहूँ मिलै न।

यह एक प्रेमकी स्थिति है—क्षणमें होती है 'तृप्ति' कि भगवान् मिले हैं और क्षणमें लगती है 'प्यास' कि कब मिलेंगे, कैसे मिलेंगे?

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः।

प्रह्लादको चिन्ता होती है कि कब मिलेंगे भगवान्, कैसे मिलेंगे और व्याकुल हो जाते हैं—हा-हा, **कदानुभवितासि क्वचिदूशोर्मे**—

हमारे जीवनमें वह पवित्र क्षण कब आवेगा कि जब प्यारे तुम हमारी आँखोंके सामने प्रकट हो जाओगे।

क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित्।

कहीं देखते हैं कि भगवान्‌का हठ था कि हम प्रकट नहीं होंगे और भक्तका हठ था कि हम इनको प्रकट करके छोड़ेंगे। एक ओर भगवान्‌का हठ, एक ओर जीवका हठ—दोनोंमें हो गयी लड़ायी। भगव्रान्‌के मनमें दुविधा आयी—मैं असङ्ग हूँ तो कृपा कैसे करूँ; फिर मनमें आया कि मैं कृपालु हूँ तो असङ्ग कैसे रहूँ? भक्तकी इच्छासे ही मेरा शरीर बनता है तो मैं निराकर कैसे रहूँ? दुविधा आयी भगवान्‌के मनमें, तो उन्हींकी दोनों शक्तियाँ आपसमें लड़ गयीं—आप किसको विजयी बनाना चाहते हैं—अपनी निराकारताको, अपनी असङ्गताको कि अपनी कृपालुताको, अपनी भक्त-वत्सलताको? क्या चाहते हैं आप—कौन विजयी हो? तो भगवान्‌ने सब शक्तियोंको इकट्ठा करके कहा कि तुम लोगोंमें-से एक राष्ट्रपति होगा और उसके अनुशासनमें सब चलेंगे। तो परम भाग्यवती भक्तिका चक्रवर्तीके पदपर अभिषेक हुआ—ज्ञानीके प्रति असङ्गता प्रकट हो जाती और भक्तके प्रति करुणा प्रकट हो जाती।

तो प्रभुकी मूर्ति करुणामयी है, कृपामयी है। एक भरोसा, एक बल, एक आस, एक विश्वास। किसीके हृदयमें प्यास जगाकर उसको व्याकुल कर देते हैं। भगवान्‌की वह करुणा ही किसीके चित्तमें प्रभुका मिलन कराकर चित्तमें परम तृप्ति दे देती है। लेकिन, जहाँ प्यास मिट जाती है, वहाँ नए-नए भाव नहीं आते और जहाँ मनुष्य उसीकी यादमें डूब जाता है वहाँ भी प्रेमकी वृद्धि नहीं होती है। यदि प्रेममें रसास्वादन करने लगें तो प्रेमकी वृद्धि रुक जायेगी और केवल प्यासा-ही-प्यासा रहे तो? तो प्रेमको कौन चाहेगा? केवल प्याससे ही किसीका पुरुषार्थ नहीं होता। प्यास इसलिए चाहिए कि रस मिले, तृप्ति मिले और तृप्ति

इसलिए मिलती है कि क्षण-क्षण प्यास बढ़े। तो तृप्तिके बाद प्यास और प्यासके बाद तृप्ति—यह प्रीतिकी रीति है।

प्रह्लादजीको कभी विरहकी स्फूर्ति होती है और कभी संयोगकी। वैसे भगवान्‌का संयोग-वियोग नहीं होता—यह भक्तोंको भी मान्य है और वेदान्तियोंको भी मान्य है। भगवान् नित्य-प्राप्त हैं। यह रामानन्द, निम्बार्क, मध्व शैव, शाक्त सभी वैष्णवोंका मत है कि भगवान् नित्य-प्राप्त हैं—भगवान्‌का हमसे वियोग नहीं है। न वे कभी संयोग करते हैं और कभी कहीं जाकर वियोग देते हैं। यह तो जब प्रेम होता है तब कभी संयोगकी स्फूर्ति होती है और कभी वियोगकी स्फूर्ति होती है। ये दोनों तो स्फूर्ति रूप हैं। भगवान्‌का सच्चा संयोग-वियोग देखना हो तो किसी भक्तका जीवन देखो। आप यदि भगवान्‌के भक्त हैं तो अपना जीवन देखें। क्या आपको भगवान्‌के वियोगका स्मरण करके कभी दुःख होता है?

ऐसेहि जनम समूह सिराने।

प्राणनाथ रघुनाथ सौं पति तजि सेवत पुरुष विराने॥

कभी आपके मनमें भगवत्-विरहका दुःख होता है और, कभी आपके मनमें संयोगका सुख होता है कि यह देखो श्याम! यह देखो श्याम!! यह देखो श्याम!!! तो प्रह्लादकी स्थिति ऐसी ही थी—कभी वे भगवान्‌के लिए रोते थे और कभी वे भगवान्‌को भक्तसे पराजित देखकरके हँसते थे। ये जो हमारे भगवान् हैं ये बड़े रसीले हैं, संगीतके प्रेमी हैं। जब प्रेमी बोलता है तब उसका एक-एक शब्द संगीत हो जाता है—प्रेमके रसायनकी चाशनीसे बनकर उसका एक-एक शब्द निकलता है और यही सुमधुर संगीत हो जाता है और जब प्रेमी चलता है तब—कभी उसने मणिपुरमें जाकर नृत्य नहीं सीखा और कभी दक्षिणमें जाकर नृत्य नहीं सीखा, पर जब प्रेमी प्रेममें मस्त होकर चलता है तब उसके पाद-विन्यासमें नृत्यकी गति स्वयमेव आ जाती

है। यदि प्रेम नहीं होता तो यह दुनिया बिलकुल रुखी-सूखी होती; प्रेमने ही इसको रसीला बनाया है। यहाँतक कि यदि ज्ञान भी हो जाये और पहलेकी की हुई भक्ति यदि अनुवृत्त न हुई तो वह ज्ञानी भी रूखा होगा, भूखा होगा। वह कहेगा कि हम तो असङ्ग है—लगी है भूख तो लगी रहने दो; हमारा शरीर छटपटाता है तो छटपटाने दो; हमारा अन्तःकरण व्याकुल रहता है तो रहने दो। पर इससे होगा क्या कि उसका शरीर रूखा और उसका अन्तःकरण भूखा-प्यासा विषयोंकी ओर दौड़ जायेगा। यदि पहलेसे जीवनका निर्माण नहीं कर लेंगे तो यह ज्ञान जीवनको ज्यों-का-त्यों रुखा-सूखा-भूखा छोड़ देगा। तो, यह भक्ति जब जीवनमें आती है, तब—

क्वचिद्धसति तद्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित्। ७.४.३९

भगवान्‌की याद आयी कि बड़े रसीले हैं भाई! जहाँ संगीत-वंगीत होता हो, तो वहाँ झट पहुँच जाते हैं—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्ततिष्ठामि नारद।

मैं योगियोंके हृदयमें नहीं रहता, मैं तो जहाँ **मद्भक्ता यत्र गायन्ति**—जहाँ चार दीवाने इकट्ठे होकर सदा भगवान्‌के चरित्रका गायन करने लगते हैं, वहाँ रहता हूँ। कविका कवित्त दूसरी चीज है और काव्यमें जिस वस्तुका वर्णन है उस वस्तुमें चित्तवृत्तिका आधान दूसरी चीज है। भक्तिमें दो विघ्न आते हैं—एक तो आहा-हा-हामें फँस गये और भगवान् भूल गये। आचार्यजी बहुत बढ़िया गाते हैं, भजन भी बढ़िया गाते हैं और लेकर सितार बैठ गये। मनका लय हो गया भगवान भूल गये। तो यह संगीत भगवान्‌को भक्तिमें बाधक है। और, भगवान्‌को भोग लगाते हैं, लेकिन अपनी जीभकी माँग पूरी करनेके लिए। रागमें लग गये तो भगवान्‌का राग छूट गया और भोगमें लग गये तो भगवान्‌का नैवेद्य छूट गया। कविकी महिमा दूसरी है, कविताकी महिमा दूसरी है, और कविके द्वारा कवितामें जो वस्तु-तत्त्व

है, उसकी महिमा दूसरी है! तो प्रेमसे भरा हुआ है हृदय, भगवान् आकर खड़े हो गये—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्तिष्ठामि नारद।

एक भगवान् वह हैं जो बोल रहे हैं और एक भगवान् वह हैं जो आँखोंमें नाच रहे हैं। प्रह्लादकी आँखोंमें आकर भगवान् नाचने लगते और प्रह्लादका हृदय संगीतमें आकर प्रकट हो जाता।

नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित्। ७.४.४०

'उत्कण्ठं' उसको कहते हैं कि जब प्राण अपने प्यारेके लिए इतने व्याकुल हो जाते हैं कि लगता है—अब गये, अब गये—

आवो प्राणनाथ, अब प्राण लागे सियरान।

अब हमारे प्राण शिथिल हो रहे हैं, ठण्डे पड़ रहे हैं—साँस का आना-जाना बन्द हो रहा है।

प्रेमकी लगी है बड़ी गहरी प्यास, जो हमारे प्राणोंको पीड़ित कर रही है। कथा सुन-सुनकर कबतक इनको समझावें। अब ये कहीं भी शान्ति नहीं पाते हैं, हमारे हृदयको पीड़ा देते हैं। उनको देखे बिना हम जी रहे हैं, उनको देखे बिना हम साँस ले रहे हैं। अब साँसोंसे अपनी साँसत नहीं सही जाती है, हमारी उत्कण्ठा अत्यन्त तीव्र हो गयी है। तुम्हारे मुखचन्द्रके दर्शनके लिए अब ये प्राण इस शरीरसे निकलकर तुम्हारे पास पहुँचना चाहते हैं। कभी **विलज्जो**—लज्जा छोड़कर बड़बड़ाने लगती है—प्रेमकी बात हमसे कभी कोई सुन तो ले। **'विलज्जः'**—लज्जा छोड़कर देखो, घरोंमें बात करते समय आवाजमें कितनी ताकत होती है और जब कोई हँसीकी बात करने लगते हैं तब सारे मकानको मुखरित कर देते हैं। लेकिन, भगवान्का नाम लेनेको कोई बोले तो कह देंगे—शरम आती है। यह असलमें मायाका ही खेल है, पाश है, पाश जो भगवद्-गुणानुवादमें हमारे गलेको दबा देता है। असलमें जब हम प्रेमके मार्गमें चलते हैं तब किसीके प्रति मनमें घृणा मत करना

नहीं तो प्रेम भाग जायेगा, शङ्का मत करना नहीं तो दिल डाँवाडोल हो जायेगा, और लज्जा नहीं करना नहीं तो भगवान्‌के और तुम्हारे बीचमें पर्दा हो जायेगा; भयभीत मत होना, नहीं तो धड़कन बढ़ जायेगी। हम बड़े ऊँचे कुलके हैं, हमारा शील-स्वभाव ऐसा रहना चाहिए, हमारी जाति ऐसी होनी चाहिए—यह अभिमान जब आता है तब प्रेमीके प्रति जो प्रेम है वह प्रेम क्षीण हो जाता है। प्रह्लादके जीवनमें अभिमान नामकी कोई चीज नहीं है। वे लज्जा छोड़कर भगवान्‌के लिए नृत्य करते हैं—

क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार।

जब नृत्य करते हैं तब सर्वाङ्ग प्रभुके लिए लग जाता है। वेदान्तियोंकी बुद्धि लगती है भगवान्‌में, भक्तोंका प्यार लगता है भगवान्‌में और योगियोंकी शान्ति लगती है भगवान्‌में। भक्तका पाँव—एक घुँघरु बजा, दो घुँघरु बजा, तीन घुँघरु बजा; एड़ी धरतीपर पंजा धरती पर। नृत्य करते समय भक्तकी केवल चाल नहीं, बल्कि उसका सर्वाङ्ग प्रभुके लिए लग जाता है—उसके रोम-रोम जाग जाते हैं। जीवनको भगवान्‌की भक्ति ही रसीला बनाती है। कभी कृष्णकी लीला करने लगते हैं। कभी चुपचाप बैठकर लीलाका अनुभव करने लगते हैं—बिलकुल प्राणहीन होकर बैठ जाते हैं। प्रेममें भी हिलना नहीं है—आँखसे प्रेमके आँसू बह रहे हैं और आँखें बन्द हैं—ऐसी स्थिति है प्रह्लादकी।

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाकिञ्चनसङ्गलब्धया।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात्॥

७.४.४२

सब ओर शान्ति। शान्ति फैल जाती। जो दुःखी होते वे सुखी हो जाते; जो नीच हैं वे ऊँचे हो जाते; जो विमुख होते, वे सम्मुख हो जाते। प्रह्लादके शरीरसे जो हवा निकलती थी वह भक्तिका प्रकाश करती थी।

प्रह्लादजीको ऐसा आनन्द आता कि शरीरका हिलना बन्द हो जाता। प्रेमके आनन्दमें मग्न हो जाते और आँसुओंकी धार बहती रहती। यह अवस्था भगवान्‌की बड़ी कृपा होनेपर ही मिलती है। एक माताकी कोई सत्तर वर्षकी उम्र थी। १३-१४ वर्षकी उम्रमें ससुरालमें रहने लगी थीं और तभीसे उसको पूजा करनेका, कथा-वार्ता सुननेका अवसर मिलता था—घरके सभी लोग धार्मिक थे। परन्तु जहाँ वह कथामें बैठती उसको नींद आ जाती—माने तमोगुण-प्रधान शरीर था। वक्ताके मुँहकी ओर देखनेसे नींद जल्दी नहीं आती—या फिर भगवान्‌की लीलाके चिन्तनमें डूब जानेसे नींद नहीं आती।

संसारी लोग तो दूसरेका चिन्तन करते हैं—यह शत्रु है, यह मित्र है; यह अनुकूल है यह प्रतिकूल है और ज्ञानी लोग भी अपने 'मैं'के चिन्तनमें लगे रहते हैं। एक वेदान्तीसे मैंने पूछा कि जब तुम यह कहते हो कि यह प्रपंच मिथ्या है, उस समय तुम्हारा 'मैं' कहाँ रहता है? नारायण कहो! उसी साढ़े तीन हाथमें स्थित अन्तःकरण में 'मैं' करके सब कल्पित है—ऐसा बोल रहे हैं। क्योंकि प्रपंच दृष्टि, देह-दृष्टिके बिना है ही नहीं। ज्ञानीकी दृष्टिमें प्रपंच-दृष्टि नहीं रहती। प्रह्लादजी ज्ञान भक्त थे कि,

ता नाविदन् मय्यनुषङ्गबद्धधियः।

उनको अपने नाम, रूप, शरीर एवं संसारका ज्ञान ही नहीं था। उनके लिए तो सर्वत्र भगवन्मय था। एक भक्त कविने तो वर्णन किया है,

ग्वालिनी प्रगट्यो पूरन नेहु।
दधि भाजन सिर पर धरे कहति गुपालहि लेहु॥

तो नारायण, भक्तको भव-बन्धन है ही कहाँ? संसारमें तो उसकी आसक्ति है नहीं। भवबन्धनसे तो यह छूटा ही है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

नारायण! जो संसारसे दुःखी होकर जंगलमें जाता है, उसको जंगलमें भी दुःख देनेवाला मिल जाता है। लेकिन जिसको भगवान्‌की अनुभूति हो गयी, परमानन्दका अनुभव हो गया वह अपने हृदयमें मस्त रहता है और हाथीकी तरह झूमता हुआ चलता है—

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।

भगवान्‌के आनन्दका अनुभव हुए बिना जब हम दुनियाको छोड़ते हैं तब दुनियाका भूत फिरसे आकर शरीरपर सवार हो जाता है—यह वैराग्यकी कच्चाई है।

तो प्रह्लादकी ऐसी दशा है, ऐसी दशा है प्रेममें कि—

अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः। ७.४.४१

जरासे हिलनेको बोलते हैं—'स्पन्द'। कैसा प्रेम है प्रह्लादका? 'अस्पन्द प्रेम' है और उसमें ऐसा आनन्द आता है कि निरन्तर आँखोंसे प्रेमके आँसू बहते रहते हैं। प्रेमके आँसू, दुःखके आँसू नहीं। चेहरा लाल हो जाता है, परन्तु प्रेमसे चेहरा लाल होता है, क्रोधसे नहीं। बड़ा भारी आनन्द आता है।

अब बताते हैं कि ऐसी भक्ति प्रह्लादको मिली कहाँ से?

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाकिञ्चनसङ्गलब्धया।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःखसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात्॥
७.४.४२

भगवान्‌की भक्ति मिली। **'उत्तमश्लोकपदारविन्दयो'**—माने उत्तमश्लोकपदारविन्दकी सेवा मिली। उत्तमश्लोक माने जिसमें रजोगुण और तमोगुणका प्रवेश नहीं है ऐसे जो महात्मा—उत्तमश्लोक—जिनके यशका वर्णन करते हैं। हमको एक महात्माने

शुरूमें ही बताया था कि परमात्मा प्रेम करनेके लिए होता है, डरनेके लिए नहीं होता। भयका पात्र नहीं है, भयका विषय नहीं है। ईश्वरसे डरो मत, ईश्वरसे प्रेम करो। **'उत्तमश्लोकोयस्य'**—जिसका यश बड़ा निर्मल है, उनके पदारविन्दकी सेवा प्राप्त करो। यह कौन-सा पद है? बोले, 'प्रकाशमान-पद' है। 'अरविन्द शब्द'में पहले है 'रविन्द' रविन् द्यति 'रविन्द' माने अन्धकार और 'अरविन्द' माने जो अन्धकारमें नहीं होता है प्रकाशमें ही होता है। अरविन्द माने कमल। कमल सूर्यके प्रकाशको लिए हुए ही रहता है।

कमलमें बहुत गुण हैं। कमलमें सुन्दरता है, कोमलता है, रसवत्ता है, प्रसन्नता है और कमलमें असङ्गता है। आपका हृदय कमल है, आपकी आँखें कमल हैं—कमल माने क्या? देखो, आपकी आँखोंमें सुन्दरता है; आपकी आँखोंमें कठोरता नहीं है, कोमलता है। आपकी आँखें सूखी नहीं हैं, उनमें रसीलापन है। आपकी आँखें क्रोधवाली नहीं हैं, आपकी आँखें प्रेमवाली हैं और साथ-साथ आपकी आँखें असङ्ग भी हैं। हजारों आपकी आँखोंके सामने आये और गये और आँख जहाँ-की-तहाँ। अपनी जगह छोड़कर आँख किसीके पीछे नहीं गयी। लोग ही उसके सामने आते-जाते हैं। तो आँखमें असङ्गता है।

तो भगवान्‌के उन चरणारविन्दकी सेवा उनको मिली। नितान्त सेवा मिली। भगवान्‌के श्रीचरणारविन्दोंको वे कभी हृदयसे लगा लेते हैं, कभी अपनी आँखोंसे लगा लेते हैं, कभी अपने दिलपर रख लेते हैं, और कभी वे भगवान्‌को अपने हाथसे खिलाते भी हैं। एक सज्जन बैठे हैं यहाँ कथामें—याद आ गयी उनकी एक बात—वे भगवान्‌को खिलाया करते थे। जब उन्होंने अपने हाथसे भगवान्‌के मुँहमें ग्रास डाला तो भगवान्‌ने अपने दाँतोंसे उनकी अँगुली दबा दी, बड़ा आनन्द आया उनको। आप भी उनसे प्रेम करो, उनको खिलाओ, उनका शृङ्गार करो, कपोल पर, उनकी छातीपर बेल-बूटे काढ़ो, उनके चरणोंमें हजार

लसी कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण लिखकर चढ़ाओ। कैसे मन नहीं लगेगा? नदेखी चीजको भगवान्‌में देखो—उनके वक्षःस्थलपर लक्ष्मी हैं, दाहिनी ओर भृगुका पद-चिन्ह है, आदि-आदि। पर यह भगवान्‌की सेवा मिलती कैसे है? कि यह मिलती है भक्तके सङ्गसे—

निषेवया किञ्चनसङ्गलब्धया। ७.४.४२

ऐसी भगवान्‌की भक्तिसे जन्म-जन्मका दूषित हृदय भी पवित्र हो जाता है और भगवान्‌की कृपा जिसपर बरस पड़ती है उसको भगवान्‌की सेवा छोड़कर और कुछ नहीं सुहाता।

देखो भाई, हम लोग तो चपरासीकी सेवा करते हैं, नौकरकी सेवा करते हैं, पत्नीकी सेवा करते हैं, पति-पुत्रकी सेवा करते हैं—कितनी सेवायें हमारे जीवनमें भरी हुई हैं—यदि निन्यान्बे सेवाओंमें एक भगवान्‌की सेवा और भर लें तो आनन्द हो जाये। जने-जनेके सामने हाथ जोड़ते, रिरियाते, चिरौरी-मिनती करते सारी जिन्दगी बीत गयी! एक बार भगवान्‌के चरणोंमें जाकर तो देखो। यह होगा कैसे? जब किसी भक्तका सङ्ग प्राप्त होगा। हम जानते हैं कि जिसके जीवनमें किसी भक्तका सङ्ग नहीं है उसका जीवन बहुत रुक्ष बीतता है। क्योंकि, इस दुनियामें तो तुम जिससे प्रेम करोगे वह जरूर तुमको रुलावेगा। तुम मरोगे तो रोते-रोते मरोगे और वह मरेगा तो तुम वैसे जिन्दगी भर रोते-रहोगे। संसारका प्रेमी तो तुमको रुला-रुलाकर मारेगा। और भगवान्‌से प्रेम करोगे तो न उनसे बिछुड़नेका डर है, न मरनेका डर है और न विश्वासघातका डर है। तो आवो, आवो, भगवान्‌से प्रेम करें।

पूछा—यह प्रेम मिलता कैसे है? तो बोले कि जैसे दीया जलाना हो तो एक दीपकसे दूसरा दीपक जलाते हैं, ऐसे ही एक भक्तके हृदयमें जो प्रेम है वह उसके सङ्गसे दूसरे भक्तके हृदयमें आजाता है। यह तो लौ-से-लौ पैदा होती है—एक हृदयसे दूसरे हृदयमें भक्तिकी लौ पैदा

होती है—यह भक्तिकी उत्पत्तिका तरीका है। भक्तिमें शक्ति है। वह व्यक्तिमें ईश्वरको अभिव्यक्ति देती है। भक्तिमें वह शक्ति है जो एक व्यक्तिके जीवनमें ईश्वरको अभिव्यक्त कर देती है। क्योंकि, एक तो भक्तिमें है प्रीतिकी वृत्ति और दूसरा उसमें आगये भगवान्। तो अभिव्यक्ति हुई प्रीतिसे और शक्ति दी भगवान्ने। ईश्वरकी शक्ति प्रीतिसे अभिव्यक्त होकरके जीवनमें प्रकाशमान हो गयी। एक क्षणके लिए भी अपना जीवन रूखा क्यों हो, सूखा क्यों हो, भूखा क्यों हो? ऐसे परम प्रेमास्पद प्रभु हमारे हृदयमें ही तो बैठे हुए हैं—हम उनकी ओर देखते नहीं हैं।

तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात्॥

७.४.४२

परमानन्दमें मग्न। निर्वृत्ति-निरावरण-जीव और ईश्वरके बीचमें कोई पर्दा नहीं है। एक बात आपको सुनाते हैं—ये वेदान्ती लोग जो हैं ये आत्मा और परमात्माके बीचमें अविद्याके तीन पर्दे मानते हैं—आवरण, विक्षेप और मल। जो चित्तमें मलिनता है, उसको 'मल' बोलते हैं, जो चित्तकी वासना-युक्त-चञ्चलता है, उसको 'विक्षेप' बोलते हैं—चञ्चलता भी दो तरहकी होती है—वासनायुक्त और निर्वासन और तीसरा है—'आवरण' माने जीव और ईश्वरके बीच एक पर्दा है। पर, भक्त लोग मल और विक्षेपको तो मानते हैं, लेकिन वे जीव और ईश्वरके बीचमें आवरणको नहीं मानते, पर्दाको नहीं मानते।

धियो यो नः प्रचोदयात्। यत् चित्ते तिष्ठं चित्तं यमयति चित्तं यस्य शरीरं एषते आत्मा अन्तर्यामी नमतः।

तुम्हें हिलानेवाला, डुलानेवाला, चलानेवाला, तुम्हारी प्रवृत्तिको सोतेसे जगानेवाला—तुम सो जाते हो वह जागता रहता है। ईश्वर कभी सोता नहीं है—कभी सोता नहीं है। तो—

निर्वृति निरावरणावस्थानवृतिः वर्णाः।

निरावरण आनन्द है—यह देखो आनन्द, यह देखो आनन्द, यह देखो आनन्द।

इससे संसारको क्या मिला? लोग बहुत ढूँढते-ढाँढते हैं। कल, एक सज्जनके सामने 'मौन'की चर्चा हुई। बोले 'मौन'से क्या होता है? बहुत पढ़े-लिखे-विद्वान् समाजके उत्कृष्ट व्यक्तियोंमें-से एक हैं। उन्होंने पूछा—'मौन'से क्या होता है? तो मौनसे यह जो हमारी वाणीका अपव्यय है—व्यर्थ खर्च करते रहते हैं, जब इस पर रोक लगती है तब इसकी शक्ति बढ़ती है और चिन्तनकी धारा एक हो जाती है। उस समय आत्म-निरीक्षण होता है कि हमारे मनमें दोस्त है कि दुश्मन है, हमारे मनमें भगवान् है कि संसार है?—हमारे मनमें क्या है? यदि आत्म-निरीक्षण न हो मौनमें और पर-चिन्तन होता हो तो वह मौन दूषित हो जाता है। तो मौनमें भगवत्-चिन्तन होवे या तो मौनमें भगवत्-सम्बन्धी नवीन-नवीन विचारोंका उन्मेष होवे-माने चिन्तनकी धारा बहे और या तो मौनमें शान्ति रहे!

तो, मैंने उनको सुनाया कि पहले महात्मा लोग ऐसा कहते थे कि जब जीव मौन हो जाता है तब ईश्वर बोलने लगता है। जहाँ हमारे मनने मन-ही-मन बात करना बन्द किया और जागता रहा—यह नहीं कि सो जाये —सुषुप्तिमें तो सभी मौन हो जाते हैं, स्वप्नमें बर्राते हैं—जब जाग्रत अवस्थामें जागते-जागते मनुष्यकी वाणी मौन होती है तब उसमें ईश्वरकी वाणी मुखरित होती है और जब मन मौन होता है तब उसमें परम शान्ति—परमात्माका भास होता है।

प्रह्लादजीकी क्या विशेषता थी?

दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात्। ७.४.४२

संसारके लोग दीन-हीन हैं, क्षण-क्षण क्षीण हैं। संस्कृतमें 'दीनं' माने 'क्षीण' ही होता है। संसारमें जो भगवान्से अलग होकरके—गंगाजीसे अलग हुई नहर घटती जा रही है, यही क्षीणता है, यही

दीनता है! अपने मूल उत्ससे, अपने मूल उद्गमसे हम अलग हो गये और यहींसे अपने जीवनमें घनघोर दरिद्रता आगयी और हम ईश्वरको भूलकर संसारमें भटक गये। पूछा कि संसारके लोग क्यों दीन हैं? तो बोले—'दुःसङ्गदीन' हैं। 'दुःसङ्गदीन'का अर्थ क्या होता है? हमें जो सङ्ग मिला वह दुःसङ्ग मिला—संसारी लोगोंका मिला। हमको यह चाहिए, हमको यह चाहिए, हमको यह चाहिए, उनके पास ऐसा हीरा है तो हमारे घरमें भी होना चाहिए, उनकी ऐसी साड़ी है तो हमारे पास भी होनी चाहिए; उनके पास धन-सम्पत्ति है तो हमारे पास भी होनी चाहिए—यह जो संसारी लोगोंका सङ्ग है, यह मनमें दरिद्रता लाता है, हीनता लाता है और परमेश्वरके सङ्गसे हमारे मनमें स्वयं ऐश्वर्यका सञ्चार होता है।

एक बात आप ध्यानमें रखना—जब आप आनन्द नहीं हो तब दुःख है और जब आप ज्ञान नहीं हो तो मूर्ख हो, जड़ हो और जब आप सत् नहीं हो तो असत् हो, मृत्यु हो—तीनों चीज एक साथ होती है—

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

इसका अर्थ यह नहीं है कि जो असत् है वही तमस् है और जो तमस् है वही मृत्यु है। यदि आपके जीवनमें दुःख आया तो समझो अज्ञान लेकर आया और मृत्यु लेकरके आया—आप मर गये, जो पहले थे वे नहीं रहे। वह मर गया जिसके जीवनमें दुःख आया, मूर्खता—अज्ञान आया और मृत्यु आयी।

तो प्रह्लादजी जिस रास्ते चलते थे, जहाँ बैठते थे, उनके शरीरसे जो साँस निकलती थी, उनके शरीरसे जो तन्मात्राएँ निकलती थीं, उनके शरीरका जो मण्डल बनता था, पर्यावरण बनता था—उसके अन्दर जो आजाता उसको शान्तिकी प्राप्ति हो जाती। श्रीउड़ियाबाबाजी

महाराज कहा करते थे कि हमारे रजिस्टरमें जिसका नाम लिख गया समझ लो कि उसकी मुक्ति हो गयी। कहते कि जो हमारी आँखके सामने आ गया वह मुक्त।

तद्दृष्टि गोचरात् सर्वे मुच्यन्ते।

उपनिषद् ऐसे बोलती है!

तो प्रह्लाद हर समय आनन्दमें मग्न रहते थे और उनके हृदयमें जो आनन्द था वह उनके रोम-रोमसे फूटकर बाहर निकलता रहता था। इसलिए जो लोग दुःसङ्गके कारण दीन हो रहे थे और जिनका मन बहुत दुःखी था, वह भी जब प्रह्लादके सम्पर्कमें आते वे भी आनन्दमें मग्न हो जाते।

भक्तिमें यह शक्ति है कि वह सच्चिदानन्द प्रभुको हृदयमें अभिव्यक्त कर देती है और जब अपने हृदयमें भगवान् अभिव्यक्त होते हैं तब जो भगवान्‌की व्यापकता है वह अपने जीवनमें आजाती है और भक्तिकी वृत्ति व्यापक होकर सबके ऊपर पड़ने लगती है जिससे उसको सबमें भगवान् दिखने लगते हैं। तो उसको कहींसे हटना नहीं है, कहीं सटना नहीं है। सब जगह जब भगवान् हैं तब एक जगह सटना क्यों और सब जगह भगवान् हैं तब कहींसे हटना भी क्यों? माने उसका हृदय राग-द्वेषसे सर्वथा मुक्त हो जाता है और हृदयमें समता आजाती है। इसलिए उसके जो सत्-चित्-आनन्द हैं, वे देहके घेरेमें नहीं होते, सर्वव्यापक होते हैं।

भक्तकी महिमा श्रीमद्भागवतमें यह आयी है कि उसके हृदयमें श्रद्धा, असूया, तिरस्कार और अहंङ्कार-ये चार बातें नहीं होती—

(१) न किसीसे वह होड़ लगाता है कि हम आगे कि तुम आगे।

(२) न आगे चलनेवाले-से असूया होती है।

(३) न वह किसीका तिरस्कार करता है और,

(४) न तो उसको इन गुणोंका अहङ्कार होता है।

ऐसा कैसे होता है? उसके हृदयमें भगवान् हैं—वह सबमें भगवान्को देखता है। हृदयमें भगवान्के प्रकट होनेका लक्षण यही है कि सबमें भगवान्का दर्शन होवे। जब आँखपर लाल चश्मा लग गया तो सारी दुनिया लाल ही तो दिखेगी। बड़ी-बड़ी मोटरोंमें शीशोंपर हरा रङ्ग लगा होता है तो मकान-के-मकान, मुहल्ले-के-मुहल्ले हरे-हरे दीखते हैं। तो जब हमारे हृदयमें भगवान् भर गये, हमारा ज्ञान भगवद्-विशिष्ट हो गया, तब उसी ज्ञानसे यह दुनिया भगवन्मय मालूम पड़ने लगती है।

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥

११.२९.१५

अब बताते हैं कि भक्तिसे व्यवहारमें क्या लाभ है? इसका प्रत्यक्ष तो लाभ यह हुआ कि हृदयमें जो संसारसे राग-द्वेष था वह मिट गया और परमानन्दका अनुभव होने लगा।

माने प्रह्लादको परमानन्द हो गया। लोग कहते हैं कि भक्त बड़े स्वार्थी होते हैं—स्वयं आनन्द लेते हैं और दूसरोंकी कोई चिन्ता नहीं करते हैं। ज्ञानी भी बड़े स्वार्थी होते हैं, वे स्वयं मुक्त हो जाते हैं और दूसरोंको ज्यों-का-त्यों रोते-सिसकते छोड़ देते हैं। तो यहाँ बताते हैं कि देखो हाथ-पाँव पीटनेसे ही लोगोंका हित नहीं होता है। यह जो लोग समझते हैं कि कुछ पैसा दे दिया तो हित हो गया, कुछ खिला-पिला दिया तो हित हो गया, तो यह भी एक अर्थमें सही है। पर यह बात जो है यह बहुत बहिरंग है, बहुत बाहरी है। भीतरकी बात यह है कि उसका मन शान्त हो जाता है, उसके शरीरसे शान्तिके परमाणु निकलते हैं, शान्तिकी तन्मात्राएं निकलती हैं। जैसे सूर्यके प्रकाशका एक मण्डल होता है, जैसे अग्निके तापका एक मण्डल होता है वैसे ही उसके चित्तमें शान्ति और समता होती है, उसके शरीरसे एक

पर्यावरण बनता है, एक मण्डल बनता है और जिसकी जितनी गाढ़ स्थिति होती है, उतना ही बड़ा उसका शान्तिका पर्यावरण होगा, उतनी दूर-दूरतक उसकी तन्मात्राएँ प्रकाशित होंगी और जो उसके घेरेमें आ जायेगा उस-उसको शान्ति मिलेगी। बर्फके पास जाओगे तो ठंडक मिलेगी, आगके पास जाओगे तो ताप मिलेगा, चन्द्रमाके सामने बैठोगे तो चाँदनीकी शीतलता मिलेगी। यदि शान्त-पुरुषका संसर्ग अपनेको मिल जाये तो संसारमें सुखकी, आनन्दकी धारा बह जाये।

तो प्रह्लादजीके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतका कहना है कि स्वयं तो वे परमानन्दमें मग्न हैं, परन्तु दूसरे जो संसारमें दीन-हीन पुरुष हैं, उनके मनमें शान्तिका सञ्चार करते हैं।

दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात्। ७.४.४२

जो कामसे, क्रोधसे, लोभसे, मोहसे विक्षिप्त प्राणी हैं। विक्षिप्तकी पहचान आपको सुनाते हैं—जिसको अपने घरमें ज्यादा विक्षेप होता है वह दूसरेके घरमें जाकर बैठता है। या दूसरेके घरमें कुछ पानेकी लालसा होती है, तब वहाँ जाता है। विक्षेप माने होता है कि जहाँ हम हैं वहाँसे हमारा मन दूर डाल दिया गया। —'क्षेप' माने क्षेपण, फेंकना। तो हमारा जो मन है वह हमारे हृदय-कोषमें है कि कहीं बाहर फेंक दिया गया है? आपका मन कहाँ रहता है—पहाड़में रहता है कि जंगलमें रहता है; गंगा-किनारे रहता है, दोस्तके घरमें रहता है, दुश्मनके घरमें रहता है—कहाँ रहता है? अपने घरमें नहीं रहनेका नाम ही है विक्षेप। क्योंकि आप अपने हृदयमें बैठे हुए भगवान्को नहीं देखते हैं और दूसरी जगह ज्ञान और सुख ढूँढनेके लिए जाते हैं। जीवनमें यह अशान्ति क्यों आती है, यह यहाँ बताया गया—

दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात्। भा ७.४.४२

हमारे अन्दर यह दीनता क्यों है? हम क्षीण क्यों हैं। हम इतने दीन क्यों हैं कि हमें हमारे घरमें रोटी नहीं मिलती है, हमें दूसरेके

घरमें जाकर माँगना पड़ता है? हमारे हृदयमें सुख नहीं है, दूसरेसे सुख हमको उधार लेना पड़ता है और इसका कारण है—दुःसङ्ग। हमारे जीवनमें दीनता क्यों आयी कि दुःसङ्गसे दीनता आयी। '**दुःसङ्गेन दीनाः दुःसङ्गदीना।**' नहीं तो भगवान् अपने हृदयमें हैं, परिपूर्णताका अनुभव करो। सब जगह दीन है—एक स्त्री पुरुषके लिए दीन है; एक पुरुष स्त्रीके लिए दीन है। क्यों? वह अपनेको नहीं समझ रहा है। स्त्री समझती है कि हमारे अन्दर पुरुष नहीं है, वह बाहरसे मिलना चाहिए और पुंरुष समझता है कि हमारे अन्दर स्त्री नहीं है वह बाहरसे मिलनी चाहिए। अब स्त्री-पुरुषमें भोक्ता-भोग्य करके भोग्यके लिए भोक्ता दुःखी होने लगा—कि ऐसे ही हो। और जहाँ भोक्ता भोग्यका भाव छोड़करके आप जीव रूपसे, मनुष्य रूपसे सही-ठीक मानवताका रूप धारण करके बैठें, तो न स्त्रीके लिए पुरुषको दुःख होगा और न पुरुषके लिए स्त्रीको दुःख होगा। जहाँ पूर्णताका बोध है वहाँ दुःख नहीं है।

तो यह जो हमको संसारमें दुःसङ्ग मिलता है, कुसङ्ग मिलता है—आजकल तो कुएँमें ही भाँग पड़ गयी है, गाँव बौरा गया है। हमारे पास यह नहीं है, हमारे पास यह नहीं है, हमारे पास यह नहीं है। नेताजी मञ्चपर खड़े हो गये और तुमको यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए और तुम्हारी यह माँग है, यह माँग है, यह माँग है। जब दस-बीस जगह व्याख्यान दे लेंगे कि तुमको यह चाहिए तब जनता भी बोलेगी कि हाँ, हमारी यह माँग है। पहले ये वासनाएं नहीं थीं मनमें और बड़ी शान्तिसे रहते थे।

एक दिन एक लड़की रो रही थी—हमारे भाईकी ही थी—माँ-बापके समझानेसे नहीं मानी तो मैंने समझानेकी कोशिश की—बहुत समझा-बुझाकर पूछा कि क्यों रोती हो? तो बोली कि हमारे पास अट्ठानबे रुपये हैं। तब रोनेकी क्या बात है? दो रुपये कम हैं—दो रुपये

दो तो रोना बन्द कर देंगे। यह है मनुष्य। अपने पास अट्ठानबे रुपये हैं, यह वह लड़की नहीं देखती है; दो रुपये कम हैं—यह वह देखती है और उसके जीवनमें इसीका दुःख है।

तो, यह दुःसङ्ग जो है यह हमारे अन्दर जो पूर्णता है उसको ढँक देता है; जो ईश्वर है उसको ढँक देता है। हमारा असङ्ग आत्मा है—सहज, विरक्त वस्तुको देखकर, उसकी बुराईको देखकर जो वैराग्य होता है, उसको वैराग्य बोलते हैं और अपने स्वरूपको देखकर जो वैराग्य होता है, उसको असङ्गता बोलते हैं—दोनोंमें अन्तर है। इस वस्तुमें यह दोष है, यह गुण है—यह देखकरके उससे राग-द्वेष नहीं करना। यह वस्तु दृष्टि-मूलक वैराग्य है, द्रव्य-दृष्टि-मूलक वैराग्य है और हम स्वयं सत्-चित्-आनन्द अखण्ड चेतन हैं, स्वरूप-दृष्टिसे हमको किसीकी जरूरत ही नहीं है—यह असङ्गता है।

तो यह जो सत्सङ्ग है, हमारे अन्दर भरी हुई पूर्णताको लखाता है। किसीने हमसे कहा कि तुम्हारे घरमें तो कानी-कौड़ी भी नहीं है और हम भटकने लगे, भीख माँगने लगे और एकने कहा कि देखो तुम्हारे घरमें पहलेसे खजाना भरा हुआ है—सुखका खजाना है, ज्ञानका खजाना है, जीवनका खजाना है—तुम्हें तो सब मिला हुआ ही है, तुम क्यों भीख माँग रहे हो? इसको इस कहानीसे समझें। एक लड़का था, व्याकुल हो रहा था कि हमारे पिताजी मर गये, हमको कुछ दे नहीं गये, हमारे पास तो कुछ नहीं है, अब हम क्या करेंगे, भीख माँगकर खाना पड़ेगा। इसी बीचमें उसके पिताके मित्र आ गये। उन्होंने पूछा—क्या परेशानी है भाई? बोला—हमारे पास तो कुछ नहीं है, भीख माँगनेके सिवाय कोई चारा नहीं है। पिताके मित्रने कहा कि देखो, तुम छोटे थे तो तुमको तुम्हारे पिताने नहीं बताया, हमको बताकर गये हैं, उनकी बड़ी भारी सम्पदा अमुक जगह रक्खी है, हम जानते हैं और वह हमारे हाथमें है। अब

महाराज, उसकी दरिद्रताका दुःख उसी क्षण केवल वाक्य-श्रवण मात्रसे ही दूर हो गया।

तो, यह जो हमारे मनमें दीनता है—यह जब हम हमारे पिताकी उदारता, पिताकी दया, पिताका वात्सल्य भूल जाते हैं, दुष्टोंका सङ्ग जब हमें मिल जाता है तब वे हमको अपने पितासे विमुख कर देते हैं और जब हमें सत्सङ्ग प्राप्त होता है तब आभास होता है कि कितना दिया है भगवान्ने और हम जो हैं उसको जानते ही नहीं।

तो यह दीनता जो है यह दुःसङ्गके कारण आती है।

तो प्रह्लादजी जहाँ जाते वहाँ सत्-चित्-आनन्दका समुद्र लहराने लगता, आनन्दकी गंगा बहने लगती, सुखका फव्वारा छूटने लगता।

अब बताते हैं कि एक पिता तो वह है जिन्होंने इतना दिया और दूसरे पिताकी ओर देखो—

तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि।
हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे॥ भा. ७.४.४३

प्रह्लादजी महाभागवत हैं—

एतानहं परम भागवतान् नमामि।

हम परम भागवतोंको नमस्कार करते हैं। उनमें पहला भागवत कौन है?

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक व्यासाम्बरीषसूतशौनकभीष्म।

प्रह्लाद पहले भागवत हैं, महाभागवत हैं, सबसे पहले प्रह्लादजीका नाम आया है और महाभागवत हैं माने भगवान् उनकी रक्षामें तत्पर हैं और महात्मा हैं। ऐसे हैं प्रह्लाद, लेकिन हैं हिरण्यकशिपुके पुत्र। हिरण्यकशिपु अपने पुत्रसे द्वेष करता है! देखो द्वेष जो है वह बिच्छूसे है कि साँपसे है—इससे कोई मतलब नहीं है कि तुम किससे द्वेष करते हो—द्वेष किसीसे भी हो वह है तो तुम्हारे हृदयमें ही न!

एक पिता-पुत्र थे, आपसमें अनबन हुई तो लड़का एक ऐसे अलग घरमें रहने लगा जिसमें लकड़ीका पार्टीशन था। और जब पड़ोसी कहीं बाहर गया था तो उसका जो माल-मत्ता था लेकर भाग गया। भागा तो पकड़ा भी गया। अब जब मजिस्ट्रेटके यहाँ उसका मुकदमा आया तब पिताजी आकर हमारे सामने रोने लगे। महाराज, कैसे भी छूट जाये, छूट जाये! 'भाई, तुमने तो कह दिया था कि इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, तो अब छुड़ाना क्यों चाहते हो, गलती करा है तो सजा भोगने दो'। महाराज, आखिर तो बेटा है न!' दोषीसे भी स्नेह होता है। क्यों होता है?

आजकल तो संस्कार नहीं होते हैं न, पहले जब बच्चा पैदा होता तो शास्त्रानुसार जात-कर्म-संस्कार होता और उसमें जो मन्त्र बोला जाता है उसका अर्थ यह होता है कि तुम मेरे अङ्ग-अङ्गसे पैदा हुए हो, तुम मेरे दिलके टुकड़े हो, हूँ तो मैं ही, मेरा ही नाम बेटा हो गया है— पिता पुत्र अलग-अलग थोड़े ही होते हैं। 'जीवेत शरदं शतम्' यह आशीर्वाद जात-कर्म-संस्कारमें बाल-छेदनके पूर्व देनेका विधान है। इतना स्नेह होता है पिताका पुत्रके साथ। पुत्र महाराज कितना भी उलटा हो, उसके प्रति द्वेष नहीं होता।

युधिष्ठिरने जब सुना कि हिरण्यकशिपुका अपने पुत्रके साथ द्वेष हुआ तो पूछ लिया कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि प्रह्लाद साधु पुत्र हैं, फिर भी पिता उससे द्वेष करता है इसका कारण क्या है? क्योंकि पुत्र उल्टे पड़ जाते हैं तो भी कोई उनसे द्वेष नहीं करता और कभी बेटे पर नाराज होते हैं तो भी उनको शिक्षा देनेके लिए ही नाराज होते हैं

'उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा।'

जैसे पराये लोग उसपर दोष लगाते हैं वैसे बाप नहीं लगाता है, वह तो उसका ही पक्ष लेता है और प्रह्लादजीमें गुण-ही-गुण भरे हैं—

किमुतानुवशान् साधूस्तादृशान् गुरुदेवतान्।

प्रह्लाद अनुवश हैं—वशमें हैं, साधु-पुरुष हैं, अपने बड़ोंको—गुरुको, बापको, माताको—जो अपनेसे बड़े हैं उनको देवता मानकर उनका आदर करते हैं—ऐसे प्रह्लादके साथ पिताने इतना द्वेष क्यों किया? जिसके कारण पिताको मरना तक पड़ा!

अब नारदजी बताते हैं कि हिरण्यकशिपुको तो पता ही नहीं था कि उसकी पत्नी जिन्दा भी है या नहीं; और है तो कहाँ है? उन्होंने ही हिरण्यकशिपुको बताया कि तुम्हारी पत्नी तबसे हमारे आश्रममें रह रही है। हिरण्यकशिपु जाकर पत्नीको ले आया और जब ले आया तब नारदजीकी कृपासे और पत्नीकी भक्तिकी शक्तिसे जो उसके पेटमें वर्षोंसे सन्तान थी वह पैदा हुई—प्रह्लाद पैदा हुए और जब बालक थोड़ा बड़ा हुआ तो पढ़नेके लिए भेज दिया गया विद्यालयमें।

पहले पण्डितोंको घरमें बुलवाकर बालकको नहीं पढ़वाते थे, पण्डितोंके पास भेज कर पढ़वाते थे, जिससे बालकके हृदयमें विद्वान्के प्रति आदरका भाव होवे। यह हमारे पिताका नौकर है या हमसे छोटा है—यह भाव नहीं होवे, नहीं तो उसका आदर नहीं करेगा, उसकी बात नहीं मानेगा। यहाँके बालक कह देते हैं कि हमारी चिट्ठी ले जाकर अमुकको दे देना नहीं तो हम पिताजीसे तुम्हारी शिकायत कर देंगे—इसीको शास्त्रमें बोलते हैं—'कृतकाध्यापक'—जो तन्ख्वाह लेकर घरमें जाकर पढ़ाते हैं वे—कृतकाध्यापक। तो बड़ोंके पास आदरसे जाकर शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

खूब पढ़ाया पण्डितोंने प्रह्लादको। पढ़ानेमें यह होना चाहिए कि पहले बालककी प्रकृति कैसी है, यह जानना चाहिए। जिस दिन नामकरण संस्कार होता है उस दिन गौरी-गणेशकी पूजा करके, चौका पूरके—एक ओर ग्रन्थ रखे जाते हैं, एक ओर शस्त्र रखे जाते हैं, एक ओर अन्न आदि रखा जाता है अब वह बालक किसकी ओर पहले हाथ मारता है—शुरू-शुरूमें। यह विधि ज्योतिष-शास्त्रमें और कर्म-काण्डमें

भी हैं, इससे पता लगता है कि यह बालक क्या चाहता है? जैसे हीरा होता है वह खानसे निकलता है; वैसे ही जो भी बालक पैदा होता है वह ज्ञानका एक खजाना लेकर पैदा होता है। आत्मा तो ज्ञान-स्वरूप है ही, तो उसके ज्ञानमें कौनसे पुराने संस्कार प्रबल हैं; माने बालकके हृदयमें ज्ञान बाहरसे सींचा नहीं जाता है, पालिश नहीं की जाती है ज्ञानकी, बल्कि उसके ऊपर तो मिट्टी पड़ गयी है—हीरे पर जो मैल लग गया है उसको छुड़ा देते हैं, उसको घिस लेते हैं और सुन्दर बना देते हैं।

शण्डामर्कने प्रह्लादको—धन कैसे कमाना चाहिए? भोग कैसे करना चाहिए? कर्म कैसे करना चाहिए? यह सब पढ़ाया। लेकिन, प्रह्लादकी प्रकृतिमें, उनके अन्तरमें जो सबके प्रति समता थी, जो असङ्गता थी, जो एकता थी, जो परमात्मा था—वह स्वभावसिद्ध प्रह्लादके हृदयमें प्रकट था, और ये बाहरसे जितनी भी धूल उसके ज्ञानपर डालें उसको कुछ फर्क नहीं पड़े।

एकदिन अपनी समझमें गुरुजी लोग खूब पढ़ा लिखाकर प्रह्लादको लेकर हिरण्यकशिपुके पास गये और बोले—यह आपका बालक बहुत समझदार है। प्रह्लादने जाकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया।

बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करनेसे अपने भीतर जो अभिमान है वह मिटता है और बड़ोंकी जो विद्या है, जो संस्कार है, जो उनके अन्दर अच्छाई है वह अपने अन्दर आती है। अच्छाईका स्वभाव है कि वह जो उसके सामने झुकता है उसके जीवनमें उतर जाती है और जो उसके सामने छाती तानता है उसकी ओर वह नहीं जाती है। यदि किसीसे भी अच्छाई ग्रहण करना है तो जीवनमें विनय अवश्य होनी चाहिए।

मनुस्मृतिमें ऐसे लिखा है—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेवनः
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलः।

जो बड़ोंके सामने झुकता है और बड़ोंका सङ्ग-साथ करता है उसकी चार चीज बढ़ती है। इसका विज्ञान है कि क्यों बढ़ती है? आयु बढ़ती है, विद्या बढ़ती है, यश बढ़ता है और बल बढ़ता है। तो, पिताके सामने प्रणाम जरूर करना चाहिए।

तो प्रह्लाद स्वभावसे ही विनयी हैं। प्रह्लादने पिताको प्रणाम किया और पिताने झट प्रह्लादको उठाकर गोदमें बैठा लिया और पूछा—

पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान्। भा. ७.५.४.

बेटा प्रह्लाद! यह बताओ कि तुम्हें क्या अच्छा लगता है? यह नहीं पूछा कि गुरुजीने क्या पढ़ाया है, कौन-सी किताब पढ़ायी है—नहीं तो प्रह्लादजी उसका उत्तर देते कि गुरुजीने यह-यह पढ़ाया है। उसने तो पूछा कि तुम क्या-क्या पसन्द करते हो—अपनी पसन्दगी बताओ—**मन्यते साधु यद्भवान्।** आप साधु—अच्छा किसको मानते हो?

प्रह्लाद बोले—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत्॥

भा. ७.५.५

प्रह्लादजी बोले कि संसारके लोग दुःखी क्यों हैं? क्योंकि वे तुच्छ-तुच्छ, छोटी-मोटी असत् वस्तुओंको पकड़ करके दुराग्रह करके बैठ गये हैं और यही कारण है कि इनकी बुद्धि छोटी-छोटी चीजेंमें टिकती नहीं है और हमेशा उद्विग्न रहती है और ये लोग हमेशा दुःखी रहते हैं, व्याकुल रहते हैं। तो मैं तो सबसे बढ़िया यह मानता हूँ—मुझको तो यह पसन्द है कि जो हमारे हृदयमें परिपूर्ण परमात्मा है उनका उदय हो, उनका दर्शन हो!

अब आगेकी बात आपको कल सुनायेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१७)

जब शण्डामर्क प्रह्लादको राज-दरबारमें ले आये तो हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको अपनी गोदमें बैठाया। आखिर तो बेटा है। दिलका टुकड़ा है। पुत्रके साथ पिताका इतना प्रबल दैहिक सम्बन्ध है कि जब पुत्र पिताके विपरीत आचरण करते हैं तब भी पिता उसको माफ करते हैं। संसारमें देखनेमें आता है कि दूसरे लोग प्रेम करने पर प्रेम करते हैं। अपने घरमें ब्याह हो तो चार लड्डू उनके घर भेज दो तो उनके घरमें ब्याह होगा तो वे भी चार लड्डू आपके यहाँ भेज देंगे। तो यह जो देने-लेनेका सम्बन्ध है संसारमें, यह एक तरहका व्यवहार है—व्यापार है। परन्तु, माता-पिताका जो स्नेह होता है अपने पुत्रके साथ, वह अकृत्रिम—सहज होता है, उसमें कोई बनावट नहीं होती है। क्योंकि—

अङ्गादङ्गाद संभवति।

शरीरके एक-एक अङ्गका रस पुत्रके रूपमें प्रकट हुआ है। **'हृदयादधि जायते'**—हृदयसे पैदा हुआ है, **आत्मावैपुत्रनामासि जीवेद शरदं शतम्।** जात-कर्ममें पुत्रका इस तरहसे संस्कार किया जाता है। पर, सांसारिक सम्बन्ध तो सांसारिक ही होता है। दैहिक-सम्बन्ध होने पर भी जब विचारोंमें मतभेद होता है; तब सब समाप्त हो जाता है। आत्माका सम्बन्ध भी किसीसे नहीं होता—न प्रकृतिसे, न प्राकृतसे, न

मैं मेरा—इसलिए सब-कुछ छूट सकता है केवल 'स्व' नहीं छूट सकता—अपनेको कोई आलेमें नहीं रख सकता, अपनेको कोई विदेश भेजकर यहाँ नहीं रह सकता—केवल आत्मा ही ऐसी वस्तु है जिसका कोई परित्याग नहीं कर सकता।

एक सज्जन बड़े भुलक्कड़ थे। वे रोज जब रातको पलंग पर सोनेके लिए जाते तो नोट करते डायरीमें चश्मा रखा है ड्रावरमें, घड़ी रखी है सामने, घड़ी रखी है कोनेमें, टोपी खूँटी पर टाँगी हुई है और मैं पलंग पर बैठा हुआ हूँ—एक दिन उठनेमें देर हो गयी, हड़बड़ा कर उठे तो मिलाया सब—टोपी कहाँ है तो उतारकर सिरपर रखी, चश्मा लगाया, घड़ी बाँधी और छड़ी उठायी और अब मैं पलंग पर लेटा हूँ—तो मैं तो पलंग पर हूँ नहीं, तो मैं क्या हुआ, मैं क्या हुआ और चिल्लाने लगे कि मैं तो पलंग पर नहीं हूँ, मैं तो पलंग पर नहीं हूँ! चिल्लाना सुनकर उनकी पत्नी आयी और बोली—कि तुम पलंग पर नहीं हो तो तुम कौन हो? तो संसारी लोगोंकी यही स्थिति है। वे दुनियाकी सब वस्तुओंको नोट भी कर सकते हैं और याद भी कर सकते हैं, पर अपने बारेमें उनको कुछ पता नहीं होता कि मैं कौन हूँ?

असलमें जबतक इस आत्मदेवसे एकता नहीं होती तबतक चाहे कितना भी सम्बन्ध जोड़ो, चाहे कितना भी प्रेम करो, कितनी भी आसक्ति करो वह टिकाऊ नहीं हो सकता। पुत्रसे बढ़कर तो और कौन होता है? पर, यहाँ भी महाराज पिता-पुत्रके विचारोंमें मतभेद हो गया। प्रह्लादने कहा कि पिताजी, आपने मुझसे पूछा कि प्रह्लाद तुमको क्या पसन्द है, तो मैं आपको अपनी पसन्दगी बताता हूँ कि मुझे क्या पसन्द है?

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥

भा. ७.५.५

हम तो पिताजी इस बातको ही अच्छी समझते हैं, और केवल अपने लिए ही नहीं, सबके लिए यही समझते हैं। पिताने पूछा—अरे भाई, सबके बारेमें तुमको कुछ मालूम भी है या ऐसे ही निश्चय कर लिया? जिसकी गति, मति, रति मालूम नहीं है कि ये कहाँ जाना चाहते हैं, कैसा विचार रखते हैं और इनकी प्रीति कहाँ है—सत्‌में गति, चित्‌में मति और आनन्दमें रति—ये ही अन्यमें आरोपित होते हैं। दूसरोंके पास जाना चाहते हैं, दूसरोंको समझना चाहते हैं, दूसरोंसे प्रेम करते हैं, परन्तु, यह चलनेवाला कौन है, सोचनेवाला कौन है और प्रेम करनेवाला कौन है—इसके बारेमें ठनठन-पाल! सब कुछ जानते हैं, बस अपनेको नहीं जानते हैं।

संसारके लोग दुःखी क्यों हैं? इनका कहना है कि संसारके सब लोग दुःखी हैं। जो लोग बहुत बढ़िया पोशाक पहनकर ठुमक-ठुमक कर सड़क पर चलते हैं वे भी दुःखी हैं और जो लोग विरक्त होकरके पहाड़पर नदीके किनारे रहते हैं वे भी दुःखी हैं।

राजा दुःखी परजा दुःखी साधुन् के दुःख दूना।
कहे कबीर सुनो भाई साधो एकहू घर नहिं सूना॥

यह दुःख जो है वह सबके घरमें जाकर अपना एक पलंग बिछा लेता है—ऐसा कोई घर नहीं है जिसको दुःख छोड़ देता हो, जिसके हृदयाकाशमें कभी तूफान न आता हो, कभी आग न लगती हो, कभी वर्षा न होती हो। जैसे बाहरका आसमान है न! तो उसमें कभी गर्मी पड़ने लगती है, तो लू चलने लगती है, कभी वर्षा होती है तो आर्द्रता आजाती है; कभी आग जलती है तो कभी ठण्ड पड़ती है—ऐसे ही मनुष्यका यह हृदयाकाश है, इसको बोलते हैं 'ख' और दुःख माने *दुष्टं खं यस्मात् तत् दुःखम्*—हमारा जो हृदयाकाश है वह दूषित हो जाता है जिसके कारण उसका नाम है दुःख; हमारे हृदयको दुःखसे भर देनेवाला। हृदयमें ही दुःख होता है—कभी तूफान आता है, कभी गर्मी

पड़ती है। जब तूफान आता है तब कामसे आक्रान्त हो जाते हैं, जब गर्मी पड़ती है तब क्रोधसे आक्रान्त हो जाते हैं, जब वर्षा होती है तब लोभसे आक्रान्त हो जाते हैं—जैसा बाहरके आकाशमें होता है वैसा ही भीतरके आकाशमें होता है।

ऐसा भीतरके आकाशमें होता क्यों है और इसके निरावरणकी युक्ति क्या है?

सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्। ७.५.५

तुम जिद्दी हो जिद्दी और बिलकुल भूतको पकड़कर जिद्द किये बैठे हो!

'असद्ग्रहात् समुद्विग्नधियाम्'

प्रह्लादजी बोलते हैं—

एक बहुत चालाक गीदड़ था जो पानी पीने गया नदी किनारे। पानी पी रहा था तभी मगर-घड़ियालने उसका पाँव पकड़ लिया। गीदड़ बहुत चालाक था। जैसे ही उसकी समझमें यह बात आयी उसने घड़ियालसे कहा कि घड़ियालजी, हम तो तुमसे बहुत प्रेम करते हैं, तुम अगर हमको खा जाओ तो हमारा जीवन सफल हो जायेगा। लेकिन माफ करना तुमने हमारा पाँव नहीं पकड़ रखा है, तुमने तो पेड़की जो जड़ पानीमें है उसको पकड़ रखा है। अब झट घड़ियालने गीदड़का पाँव छोड़ दिया, और पेड़की जड़ पकड़ कर बैठ गया। गीदड़ भाग गया और घड़ियाल वंचित रह गया, ठगा गया बेचारा। तो—मनुष्यकी स्थिति क्या है कि 'असद्ग्रहात्'—इसने गलत-गलत बातें पकड़कर अपने जीवनमें भर रखी हैं कि इनको हम छोड़ेंगे नहीं; झूठी-झूठी मान्यताएँ—क्या राजनीतिक, क्या सामाजिक, क्या आर्थिक और क्या धार्मिक-बिलकुल बिना सोचे-बिचारे जैसे एक भेड़के पीछे दूसरी भेड़ चलती है ऐसे ही बिना विचार किये, बिना निश्चय किये, बिना किसी लक्ष्यके बस 'गतानुगतिकोलोकः' एकके पीछे दूसरे चलते जा

रहे हैं! अरे भाई, यह ठीक है, यह ठीक है, यह ठीक है—दुःखका कारण यही है। यह बाजारमें चलनेवाला रुपया हमारे घरमें ही टिक जाये—यह असद्ग्रह है। असद्ग्रह माने झूठी पकड़ है यह। वह तो तुम नहीं छोड़ेंगे तो वह छोड़कर जायेगा।

एक पण्डित था। हमारे गाँवके पास ही रहता था और उसके पास एक चाँदीका रुपया था। एक दिन कोई जरूरत पड़ी तो वह उसे भुनानेके लिए बाजार लेकर गया। मुट्ठीमें बाँध लिया, गर्मीका दिन था पसीज गया, पसीना आगया। अब मुट्ठी खोला तो देखा और बोला—अरे प्यारे, तुम मेरे पाससे जानेमें दुःखी हो रहे हो, रो रहे हो, हाय-हाय! रोओ मत—

मैं मरि जइहों तोहे न भुनैहों।
तोहका देख-देख जियरा बुझैहों॥

यह असदग्रह है कि यह पैसा हमेशा हमारे पास रहे! अपने शरीरको ही हम नित्य देख रहे हैं कि बालकसे किशोर बना, किशोरसे युवा बना, युवासे अधेड़ बना, अधेड़से बुड्ढा बना—अपना शरीर, दूसरेका शरीर सब तो बदल रहा है—'असद्ग्रहात'—यह झूठी पकड़ है कि यह हमेशा बना रहे! जानते हैं कि यह चीज हमेशा रहनेवाली नहीं है—न यह दुनिया रहेगी, न दुनियाके रिश्ते रहेंगे, लेकिन, उनको पकड़ करके ऐसे बैठे हैं, ऐसे बैठे हैं कि यह हमारा विचार, यह हमारा विचार-विचार-विचार। अरे, तुम्हारे जैसे कितने विचार उड़ गये आसमानमें, वे कहीं रहनेवाले हैं? किस बातका अनुग्रह है?

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन लाला लाजपतरायजीसे बोले कि हम तुम्हारी संस्थामें काम नहीं कर सकते हैं क्योंकि तुम्हारे विचार अलग हैं और हमारे विचार अलग हैं। वे बोले—अरे महाराज, यह विचार क्या होता है, यह सब बुद्धिके विकार हैं, जो समय-समयपर आते हैं, समय-समय पर बदल जाते हैं, तुम एक सफेद कागज ले आओ मैं

उसपर हस्ताक्षर करके दे देता हूँ कि जो तुम्हारा विचार सो ही मेरा विचार। काम तो करो बाबा। क्या शैव-वैष्णव दोनों एक परमेश्वरको नहीं मानते हैं, क्या दोनों कर्म और कर्मफल नहीं मानते हैं, क्या दोनों सदाचार नहीं मानते हैं? फिर लट्ठ काहेंको चलाते हैं? चन्दन आड़ा नहीं रहना चाहिए खड़ा रहना चाहिए। माला रुद्राक्षकी नहीं तुलसीकी चाहिए, तुलसीकी नहीं रुद्राक्षकी चाहिए—इस बातके लिए सिर फोड़ते हैं—हाथ जोड़ लो बाबा।

तो संसारमें जितना भी दुःख है वह सब तुच्छ-तुच्छ वस्तुओंकी झूठी पकड़के कारण है। देखो स्वयं अपने बापकी तरह नहीं रहते हैं और अपने बेटेको अपनी तरह रहनेके लिए विवश करते हैं; दुनियामें सब जगह हम यह देखते हैं। कल ही हमारे पास कोई आये थे—बेटेकी चर्चा करके दुःखी हो रहे थे। बाप बाँधते हैं पगड़ी, स्वयं पहनते हैं टोपी और बेटा जो है उसके सिरपर न पगड़ी है न टोपी और आग्रह यह है कि जैसे हम कहें वैसे करो—यह 'असद्ग्रह' है। जिस माँने अपने बच्चेको दूध नहीं पिलाया, अपनी जवानीके लिए, भोगकी अधिकताके लिए बच्चेको दूध पिलाना छोड़ दिया, आज वह अपने बेटेकी शिकायत करती है कि यह हमारी आज्ञा नहीं मानता। अपना संस्कार नहीं दिया, अपना मन नहीं दिया तो कैसे तुम्हारे कहे अनुसार चलेगा? तो, लोगोंके मनमें बहुत ही असंगत विचार होते हैं। जब अपने बनारसी लोगोंके घरमें लोग आते हैं तो वह उसे खिलाते नहीं है नाश्ता भी नहीं देते हैं उससे पूछते हैं—ओ हो, आप कब आये हैं, कहाँसे आये हैं, अच्छा, आपने तो खा-पी लिया होगा? मैं किसी कामसे बाहर जा रहा हूँ, नमस्कार! और चले जाते हैं और जब उसके घर जायेंगे तब कहेंगे कि हमारे लिए नाश्ता लाओ और हम भोजन भी करेंगे और हमारे ठहरनेका बन्दोवस्त भी करो।

मैं स्वयं बनारसी हूँ इसलिए यह सब जानता हूँ और बोलता हूँ।

इस तरह मनुष्यका विचार स्वयंमें असङ्गत है। स्वयं दूसरेके खानेकी परवाह नहीं करता है और दूसरेसे अपने खानेकी परवाह करवाना चाहता है, कुछ तो विचारोंमें सङ्गति होनी चाहिए। तो 'असद्ग्रहात्'—बिना बिचारे दुःखदायी आग्रह जीवनमें पकड़ लिये गये हैं। कहाँतक आग्रह होता है? कि जबतक एक परमात्मा—आत्मा-परमात्माकी एकताका दिव्य-बोध न हो, अद्वितीयताका वहाँ तक जो कुछ है सो सब आग्रह ही है और उसके लिए जितना विवाद है, जितना कलह है, जितना वैमनस्य है—अद्वितीयताके अनुभवके पहले जो कुछ माना हुआ है सब असद्ग्रह है। उसके साथ मृत्यु लगी है, उसके साथ मूर्खता लगी है, उसके साथ दुःख लगा है। हमारे दुःखका कारण क्या है कि नासमझी। दुःख न ईश्वर देता है, न प्रकृति देती है, न प्रारब्ध देता है और न ही दुःख कर्म देता है। दुःखदायी अगर कोई वस्तु है तो वह अपनी भूल है। हम जहाँ दुःखी हैं वहाँ भूले हुए हैं और वहाँ मौतके पञ्जेमें फँसे हुए हैं। तो, संसारमें दुःख क्यों है कि—'असद्ग्रहात्' समझदारी नहीं है—'प्रज्ञापराध एव एष दुःखमितियत्' जिसको दुःख कहते हैं वह हमारी समझदारीका दोष है, हमारी प्रज्ञाका दोष है।

तब? इस नासमझीको मिटाया कैसे जाय? भगवान्का भजन करो। बोले कि हम तो अपने भगवान्को गोदमें लेकर बैठे हैं। और, दूसरेके भगवान्को? गाली देते हैं। मर गये! भगवान् वह होता है जो सबमें एक होता है। यदि उत्तम दृष्टि होवे—जैसे आकाश सबमें एक है, जैसे सबकी साँसमें हवा है, जैसे सबके शरीरमें गर्मी है, सबके शरीरमें पानी है, जैसे सबके शरीरमें माटी है, सबके शरीरमें चेतना है ऐसे ही सबके शरीरमें परमात्मा है और जब तुम किसीसे द्वेष करते हो तब द्वेषके आश्रयके रूपमें परमात्माका अपमान होता है अपने हृदयमें और द्वेषके विषयके रूपमें परमात्माका अपमान होता है वहाँ,

जिससे तुम द्वेष करते हो। संसारमें दुःख कहाँ है? दुःख न ईश्वरमें है, न मायामें है, न प्रकृतिमें है, न पञ्चभूतमें है, न प्रारब्धमें है, न कर्ममें है। बेवकूफीके कारण हम अपनेको दुःखी मानते हैं। अपनेको दुःखी समझनेमें उद्वेग है। आप देखेंगे कि भक्तोंको कोई उद्वेग नहीं होता। जो संसारके लोगोंके मरने और बिछुड़नेसे दुःखी है वह भक्त नहीं है—यह पहचान है भक्तकी। श्रीबल्लभाचार्यजी महाराजने यह प्रश्न उठाया है कि आखिर द्रौपदीको पुत्रोंके मरनेका दुःख क्यों हुआ? वह तो भगवान्‌की भक्त थी। एकसे प्रेम करे और दूसरेके लिए दुःखी होवे? यह प्रेमकी रीति नहीं है। तो दुःख क्यों हुआ? नासमझीके कारण, असद्ग्रहके कारण ही दुःख हुआ।

हाँ! तो भगवान्‌का भजन करने चले और भजन करने चले तो बोले—हमारे भगवान् दूसरे और तुम्हारे भगवान् दूसरे। एक गये मस्जिदके सामने बाजा बजाने और दूसरे गये मन्दिर तोड़ने। शैव गये वैष्णवोंमें विरोध करनेसे, निम्बार्क गये रामानुजका विरोध करने और रामानुज गये निम्बार्कका विरोध करने। वृन्दावनमें हम यह रोज देखते हैं भला। पर, यह ईश्वरकी पकड़ नहीं है आप माफ करना। ईश्वर वह होता है जो सबका माँ-बाप होता है, ईश्वर वह होता है जो सबके हृदयमें रहता है; ईश्वर वह होता है जो सबको सुखी रखना चाहता है—

मतवादिन सों अरज यही।
अपने अपने इष्टदेवको व्यापक मानत हौं कि नहीं॥

तुम्हारी आत्मा ही सबकी आत्मा है, तुम्हारा परमात्मा ही सबका परमात्मा है। दुःख जितना है वह सब बेवकूफीके कारण ही है। ऐसे मत कहना कि महाराज, एक तो हम दुःखी हैं और दूसरे तुम हमको बेवकूफ कहकर ऊपरसे गाली और देते हो—ऐसे उलाहना मत देना। सच्ची बात कभी-कभी कड़वी भी होती है। भारवीने कहा है—

हितं मनोहारी च दुर्लभं वचः।

हितकारी भी हो और मनोहारी भी हो—ऐसा वचन संसारमें दुर्लभ है। इसलिए बाबा, किसी सत्पुरुषका आश्रय लो जो तुम्हें ठीक उस महत्ताके साथ जाकर मिला दे जिसमें मैं-तुम-यह-वहका कोई भेद न हो—यही भगवान् है, इसीका नाम भगवान् है। मदद करो। यदि स्वयं मदद नहीं कर सकते हो तो मदद लो। पहाड़में-से झरना निकलता है, बड़ी नदीमें मिल जाता है और उसके साथ समुद्रमें पहुँच जाता है। ऐसे ही छोटी-से-छोटी बुद्धिवाला, छोटी-से-छोटी शक्तिवाला जीव भी जब अपनेसे महानका सहारा लेता है तब वह कर्त्तव्यके परे परमात्माके पास पहुँच जाता है, उसको सफलता मिल जाती है। स्वयं मिल जाये तो बहुत बढ़िया और स्वयं न मिल सके तो किसीकी मदद ले लो। लेकिन, जबतक पूर्णताके साथ एक नहीं होओगे, परमात्माके भजनमें, सेवनमें तन्मय नहीं होओगे तबतक इस संसारका दुःख दूर होनेवाला नहीं है। क्योंकि यह नासमझीसे आया है और समझदारीके रास्तेपर चलने पर मिट जाता है!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

दुःख इसलिए नहीं होता कि यह दुनिया है और यह दुःख देती है। दुःख इसलिए होता है कि दुनियामें कोई ऐसी चीज है जिसको हम छोड़ नहीं पाते हैं। हमारे न छोड़ सकनेका दुःख है, होनेका दुःख नहीं है—

सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।

जब झूठी चीजको पकड़ोगे, तुच्छ-वस्तुको पकड़ोगे, जाने-आनेवाली वस्तुको पकड़ोगे, मरनेवाली वस्तुको पकड़ोगे तो वह वस्तु दुःख नहीं देती है, तुम्हारी पकड़ दुःख देती है। बचपनमें हमारे बाबा कोई चीज हमको दिखाते और कहते—यह लो! जब हम लेने जाते तो हाथ ऊपर उठा लेते, देते नहीं। एक बार, दो बार, तीन बार नहीं देते, दिखाते और ऊपर उठा लेते, तब हम कह देते कि हमको चाहिए ही नहीं और अपना मुँह फिरा लेते, उधर देखना-उछलना बन्द कर देते तो वे अपने-आप ही दे देते। तो उछल-कूद कबतक होगी? जबतक हम उस वस्तुको लेनेकी लालच नहीं छोड़ते। दुनियामें सारा दुःख इसीलिए है कि बाहर नहीं, हमारे भीतर ऐसा दुराग्रह भरा हुआ है—राहु-केतु-शनिश्चर सब इसीमें रहते हैं—सब ग्रह हैं—'आग्रहं' माने जिन्दगी भर और 'ग्रह' माने राहु-केतु-शनिश्चर और 'दुराग्रह' माने दुष्ट-आग्रह। सबसे बड़ा दुष्ट-ग्रह अपने हृदयमें ही है। जिस चीजको हम छोड़ नहीं पाते हैं वह हमारा न-छोड़ना ही दुःख देने लगता है।

अरे भाई, तो कैसे भी छोड़ दो। हाँ, छोड़नेका भी तरीका होता है। देखो, हुक्म देनेसे कि जो हम तुम्हें छोड़ते हैं नहीं छूट जाता। मन आसानीसे बात नहीं मानता, बहुत जिद्दी बालक है इस विषयमें। हरिकिशनदासजी एक कथा सुनाते थे—एक बालक था, उसने खिड़कीमें-से देखा कि नीचे बगीचेमें कुछ बालक छलाँग मार रहे हैं। तो वह भी जिद्द करने लगा कि हम भी खिड़कीमें-से नीचे छलाँग

मारेंगे। तो उसको बहुत समझाया सबने, पर सुने ही नहीं। तब, जो उसको बहुत प्यारा चाकलेट लगता था वह दिखा दिया। देखते ही वह झट खिड़की परसे उतर गया और उसको खानेमें लग गया, नहीं तो कूद पड़ता, ज़िद्दी बालक। तो ऐसे ही हमारे मनको ज़ब कोई अच्छी चीज मिल जायेगी तब वह दुनियाकी जो छोटी-मोटी चीजें हैं—विषय हैं—इन सबको छोड़ देगा। 'लालयेत चित्त बालकं'—यह हमारा मन एक बच्चेकी तरह है, इसका ढंगसे लाड़ करना पड़ता है। चपत मारनेसे बच्चा ठीक नहीं होता, चिल्लानेसे बच्चा ठीक नहीं होता, इसके लिए युक्ति चाहिए युक्ति। बालकका मनोविज्ञान समझो, उसको अच्छे बालकोंका सङ्ग दो, वह जो तरह-तरहकी चीज मुँहमें डालने लगता है चाहे जिसको लगता है, धीरे-धीरे उसको समझाओ कि यह गन्दी बात है और फिर धीरे-धीरे थोड़ा स्थिर होना भी सिखाओ। जैसे खेलना सिखाते हैं वैसे बैठना भी सिखाना चाहिए। अपने मनको वशमें करनेके लिए युक्तियोंकी आवश्यकता होती है।

तो आओ, अपने मनसे राधावर—भगवान्के चरणारविन्दको पकड़ लो। इसमें भगवान्के चरणकी कोई जरूरत नहीं है। अरे बाबा वे निराकार है कि साकार और उनके चरण हों कि न हों और वे काले हों कि गोरे हों, दिखें कि न दिखें—जिस दिलसे तुमने संसारकी वस्तुओंके लिए आग्रह जोड़ रखा है उसी दिलसे भगवान्के चरणारविन्दको पकड़ लो। उनके होने-न-होनेका सवाल नहीं है, काले गोरे, छोटे-बड़े होनेका सवाल नहीं है—आपके मनमें चरणारविन्दकी एक रेखा खिंच जाये और विश्वाससे उसको पकड़ लो। कहीं जाना है नहीं, कुछ करना है नहीं, कुछ लेना है नहीं—कितनी आसान बात है।

बच्चे बचपनमें जिद्द करते कभी कि हमारे साथ वहाँ चलो, घसीटते,कोई हाथ पकड़ता, कोई कमर पकड़ता वहाँ चलो, वहाँ चलो। हम भी जिद्द कर जाते हम नहीं जायेंगे। हम दोनों हाथसे एक खम्भा

पकड़ लेते, तो वे पाँच-सात बच्चे कितनी भी कोशिश करें, हम खम्भा नहीं छोड़ते। तो एक खम्भेकी पकड़ चाहिए जीवनमें। भागवतमें आया है-

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन् लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत्।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति॥

भा. १०.३.२७

यह मौतसे घिरा हुआ मनुष्य मौतसे डर करके भागने लगा पर तीन लोकमें भटकता रहा, कहीं भी इसको शरण लेनेकी जगह नहीं मिली। जब भगवान्‌के चरणारविन्द रूप धन्वन्तरि मिल गये तब दुपट्टा तानकर रूप सो गया और मौत इसको छोड़कर भाग गयी। तो छोड़नेके लिए कोई चीज नहीं है—किसी चीजने नहीं पकड़ रखा है, हमारे मनने ही पकड़ रखा है। तो, मनकी पकड़से हमको मुक्त होना है। वृन्दावनमें बोलते हैं—

काहू के बल भजन को काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के सोवत पाँव पसार॥

भरोसा चाहिए—ईश्वरका भरोसा चाहिए तब आप संसार सम्बन्धी जितने भी ग्रह हैं—कोई ग्रह आपको नहीं सतावेगा। 'ग्रह' माने 'आग्रह' और वह आपके मनका है। जो सातवें आसमानमें ग्रह रहते हैं उनकी गिनती तो ज्योतिषियोंके पञ्चाङ्गमें रहती है। किसीने पूछा कि ज्योतिषिजी, आपके पञ्चाङ्गमें इस साल कितनी वर्षा है। तो पञ्चाङ्ग निकाला ज्योतिषिजीने और बोले कि हमारे पञ्चाङ्गमें एक बूँद भी वर्षा नहीं है।

ग्रह जो बाहर रहते हैं वे अलग हैं और जो भीतर रहते हैं वे अलग हैं और यह जो संग्रह है, विग्रह है, परिग्रह है, दुराग्रह है—ये ग्रह दुःखदायी होते हैं। तो संसारमें जो दुःख है वह नासमझीसे होनेवाले दुराग्रहमें है। एक वैष्णव शैवको देखकर दुःखी होता है और

एक शैव वैष्णवको देखकर दुःखी होता है; तो दुःख शैवमें है कि वैष्णवमें है? अरे न शैवमें है न वैष्णवमें है—दुःख तो अपने मनके आग्रहमें है। यह आग्रह छूटे कैसे? उत्तर है—तो जिस मनसे तुमने आग्रह पकड़ रखा है उस मनसे भगवान्‌के चरणारविन्दको पकड़ लो।

सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।

बस, संसारका सारा दुःख मिट जायेगा।

जब प्रह्लादजीने हिरण्यकशिपुसे ऐसे कहा तो हिरण्यकशिपु आखिर तो बाप था उसने कहा कि हमारा नन्हा-सा-बालक बूढ़ोंकी तरह बात कर रहा है तो कहीं कुछ दुश्मनके आदमी छिपे हुए होंगे और इसको सिखाते होंगे यह सब, क्योंकि इसकी बुद्धि तो ऐसी हो नहीं सकती, यह तो देवताओंवाली बात कर रहा है। बोले कि ठीक है—

जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः।

बालक अपनी बुद्धिसे काम नहीं करता है, दूसरे लोग उसको जैसा सिखा देते हैं उसके अनुसार काम करने लगता है। अब मुम्बईमें कोई बात कहने लायक नहीं है, नहीं तो शास्त्रमें ऐसे लिखा है—'बालानां' माने स्त्री और बालक। संस्कृतमें दोनों होता है—'बाला' माने स्त्री और बाल माने बालक और दोनोंका षष्ठी बहुवचनमें रूप होता है—बालानां—महाराज, यह भी परहस्त गता गताः जैसे कलम जब दूसरेके हाथमें जाती है तब उसके लिखनेके कोणमें फर्क पड़ जाता है; ऐसे ही बालक और स्त्री जब दूसरेके हाथमें पड़ जाते हैं तो ये लौटकर नहीं आते हैं—मुम्बईवालोंके लिए हम नहीं कहते हैं; क्योंकि उनके लिए तो अपने-परायेका कोई भेद ही नहीं है—बुरा मत मानना—**लेखनी पुस्तकी नारी परहस्त गता गताः।**

कलम, किताब और स्त्री और बालक—ये यदि दूसरेके हाथमें पड़ गये तो पड़ गये बस। किताब जो लोग ले जाते हैं वे या तो लाते ही नहीं और लाते हैं तो ऐसी बिगाड़ कर लाते हैं कि पूछो ही नहीं। तो,

दूसरोंकी बुद्धि जिनके ऊपर प्रभाव डाल देती है और स्वयं भगवान्‌से बुद्धि नहीं लेते हैं, तो अन्तर्दृष्टिसे बुद्धि लेंगे तो सबमें भगवान् दिखेंगे और बाहरसे बुद्धि लेंगे तो भेद-ही-भेद दिखेगा। आप अपनी बुद्धिके बारेमें थोड़ा विचार करो कि वह बाहरसे सीखती है कि भीतर जो सिखानेवाला बैठा है, अपनी माँ है, अपने पिता हैं, अपने गुरु हैं—उनसे बुद्धि लेती है? कि बाहरकी दुनियाको देखकर बुद्धि लेती है?

तो, हिरण्यकशिपु बोला-यह हमारा बालक छोटा है, इसको हमारे दुश्मनोंने फोड़ लिया है। चक्रवर्ती सम्राट् नहीं, त्रिलोकीका सम्राट् था हिरण्यकशिपु और उसका बालक गुरुके घरमें पढ़नेके लिए जाता था।

यहाँ हमारे परिचित एक पण्डितजी थे, उन्होंने एक दिन आकर मुझसे कहा कि महाराज! मैं एक लड़कीको संस्कृत पढ़ानेके लिए उसके घरमें जाता हूँ तो लड़की हमको देती है चिट्ठी और कहती है कि तुम इस लड़केको ले जाकर दे देना। अब हम 'न' कर दें तो वह धमकाती है कि देखो हम कल ही तुमको निकलवा देंगे। ऐसे हीं बड़े लोगोंके घरमें जो ड्राईवर होते हैं स्त्रियाँ उनसे बहुत काम लेती हैं और यदि उनकी बात वे न मानें पुरुषकी बात मानने लगें तो वे दूसरे दिन ही उनकी शिकायत करके निकलवा देंगी—उनका सामर्थ्य होता है। तो जहाँ गुरुको मालूम होता है कि हम इनके नौकर हैं वहाँ वे क्या सिखावेंगे, क्या पढ़ावेंगे—बालक क्या सीखेगा उनसे?

हिरण्यकशिपु बोला—बालककी ठीकसे देखभाल होनी चाहिए ताकि देवता लोग हमारे बालककी अक्कल न बिगाड़ दें। अब प्रह्लाद फिर गुरुके घरमें आगये और पुरोहितोंने बड़ी-बड़ी मीठी बात कहकर प्रह्लादसे पूछा—प्रह्लाद! तुम तो बड़े बुद्धिमान हो, तुम्हारी बहुत प्रतिभा है, अपने पिताको तुम बहुत प्यारे हो—हमें यह तो बताओ कि यह जो तुम्हें ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है कि भगवान्‌का भजन करना चाहिए, यह बुद्धि तुम्हें कहाँसे मिली—सच-सच बताना, झूठ मत बोलना।

बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत्॥ ७.५.१०

यह ऐसी बुद्धि तुम्हें किसी दुश्मनने सिखायी है कि तुम्हारे भीतरसे निकली है? हम तुम्हारे गुरु हैं और तुमसे यह बात जानना चाहते हैं, अतः तुम हमें सच-सच बताओ!

अब प्रह्लादजीने बोलना प्रारम्भ करनेके पहले भगवान्‌को नमस्कार किया। हम लोगोंको पहले सिखाया गया था कि जब किताब पढ़ना शुरू करना हो तो पहले भगवान्‌का नाम लिख लो। कोई कहे कि किताब बिगड़ जायेगी। बोले—किताब बिगाड़ो मत, किताबमें एक सादा कागज रखो और पढ़ना प्रारम्भ करनेके पहले झट 'राम' लिख लिया, दूसरा 'पैरा' शुरू किया तो फिर 'राम' लिख लिया, तीसरा 'पैरा' शुरू किया तो फिर 'राम' लिख लिया—भगवान्‌का स्मरण करते चलो, काम करते चलो। बही-खाता हो तो? तो भी ऐसे ही करते चलो। कहीं जाना हो तो? घरसे निकलो तो भगवान्‌का स्मरण करके निकलो।

तो प्रह्लादजी मायापति भगवान्‌को नमस्कार करके कहते हैं—

स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः।
विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः॥ ७.५.११

मायाने हमारे दिलमें एक असद्ग्राह—बड़ा दुष्ट-ग्राह डाल दिया है और हम उसमें बुरी तरह फँस गये। वह स्वयं तो न कहीं आयी न गयी, पर उसने हमारे हृदय सरोवरमें 'ग्राह' डाल दिया और उस दुष्ट ग्राहने हमको पकड़ लिया कि यह ऐसा ही होना चाहिए। अरे बाबा, ऐसे नहीं वैसे सही, वैसे नहीं ऐसे सही—

रञ्जब रोष न कीजिए कोई कहे क्यों ही।
हँसकर उत्तर दीजिए हाँ बाबा यों ही॥

जरा दूसरोंके मन-से-मन मिलाना भी सीखो, अपना ही मन हमेशा दूसरों पर लादना मत सीखो। अथवा कि हम तो हमेशा इन्हींके सङ्गमें रहेंगे, यह पैसा हमसे नहीं छूटना चाहिए, यह मकान हमसे

नहीं छूटना चाहिए, यह आदमी हमसे नहीं छूटना चाहिए। अब वह पैसा तो तुमको पहचानता नहीं कि तुम्हारे पास ही रहे, तुम्हारे दुश्मनके पास न रहे; मकान भी तुमको नहीं पहचानता-उसमें तुम रहो या तुम्हारा दुश्मन रहे, उसके लिए कोई फर्क नहीं; तुम्हारे मनमें ही 'यह मेरा'का दुराग्रह बैठ गया और यह तुम्हें दुःखी कर रहा है। जिनकी बुद्धि संसारमें मोहित हो गयी है वे ही अपने-परायेकी भेद-बुद्धिसे दुःखी रहते हैं और जिनमें त्यागका जितना अधिक सामर्थ्य है वे ही उतने अधिक सुखी हैं।

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते।
अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती॥ ७.५.१२

जब यह जीव ईश्वरकी ओर मुख करके खड़ा हो जाता है और जब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं तब यह जो पशु-बुद्धि,भेद-बुद्धि चित्तमें आगयी है—यह समाप्त हो जाती है। पर यह असती है। कैसे? हमेशा तुम्हारे पास यह बुद्धि रहेगी—यह सोचना बिलकुल गलत है। और सिखा-पढ़ाकर जो बुद्धि बाहरसे डाली जाती है वह भी हमेशा साथ नहीं देती। वह तो भगवान् जब कृपा करते हैं तब मनुष्यको ऐसी सद्बुद्धि आती है। **'बुद्धेर्फलं अनाग्रहः'**—बुद्धिमान होनेका फल क्या है कि दुनियाकी कैसी भी परिस्थितिमें कोई दुराग्रह अपने चित्तमें नहीं रहे—भगवान्की रायमें राय मिला दे।

जो थारी राय सो म्हारी राय।

आपको एक सूत्र सुना देता हूँ—जिसका भगवान्से मतभेद है संसारमें वही दुःखी है। संसारमें दुःखी कौन है? कि जिसने भगवान्की रायमें अपनी राय नहीं मिलायी और जिसने अपनी राय भगवान्की रायमें मिला दी उसको संसारमें कोई दुःख नहीं है।

तो प्रह्लादजी कहते हैं—

'स यदानुव्रतः पुसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते।'

प्रत्येक प्राणीके हृदयमें एक पशु-बुद्धि रहती है। देखो, एक दैव-बुद्धि होती है, एक दैत्य-बुद्धि होती है, एक मनुष्य-बुद्धि होती है, एक पशु-बुद्धि होती है। और पशु-बुद्धि जो है वह बहुत व्यापक है—कभी देवतामें भी होती है, कभी दैत्यमें होती है, कभी मनुष्यमें होती है। जब मनुष्यके हृदयमें ईश्वर-बुद्धि आती है तब ही पशु-बुद्धि छूटती है—अर्थात् ईश्वर-बुद्धि नहीं आनेसे मनुष्यके हृदयमें पशु-बुद्धि बनी रहती है।

कर्म-काण्डमें देवता लोग मनुष्यको पशु बनाकर रखते हैं। इसके लिए हमारे वेदान्तियोंने बहुत बढ़िया शब्द रखा है—देवताओंके प्यारे! सुनकर आदमी खुश हो जाये कि देवता हमसे प्यार करते हैं। तो शंकरजी प्यार करेंगे तो तुमको बैल बनाकर रखेंगे, इन्द्र प्यार करेंगे तो घोड़ा बनाकर रखेंगे। ये जितने देवता होते हैं ये अपना पशु बनाकर बहुत प्रसन्न होते हैं। हमारे शास्त्रकार ऐसे लोगोंको **'देवानामप्रियः'** बोलते हैं—इसका अर्थ होता है पशु। जैसे पशु हमेशा दूसरोंका बोझ ढोता है—उनमें भी कोई गधा है, कोई बैल है, कोई हाथी है, कोई घोड़ा है—ये अपने लिए नहीं होते हैं, दूसरोंका काम करनेके लिए होते हैं—जबतक मनुष्यमें पराधीनता रहती है और परापेक्षता रहती है तबतक 'यह अपना' और 'यह पराया'—पशुबुद्धिकी पहचान यही है—

अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती पशुबुद्धिः॥

यह पराया है, हम पराये हैं—यह जो शत्रु और मित्रकी बुद्धि चित्तमें भरी हुई है—अपने परायेका जो भेद-भाव है वह भले ही मनुष्यका शरीर है पर जब उसमें अपने-परायेका भेद है तो वह पशु-बुद्धि है। बुद्धिसे मनुष्यकी पहचान होती है शकलसे नहीं। तो—

अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती—

इस बुद्धिका आलम्बन है भेद—यह भेद ही देखती है, जैसे किसीका रङ्ग काला हो, किसीका गोरा हो तो बुद्धि कहेगी यह काला मैं गोरा या मैं काला यह गोरा। यह नहीं है कि गोरेको सब लोग अच्छा

ही समझते हैं। अफ्रिकामें जो सुन्दरताकी परिभाषा है वह गोरोंके बारेमें नहीं है। हमारे बचपनमें जो विदेशी गोरे थे उनको छूना पसन्द नहीं करते थे—हमको तो उनका सफेद-सफेद रंग कोढ़ी सरीखा लगता था—ऐसा संस्कार डाला हुआ था कि इनको छूकरके स्नान करना पड़ेगा।

तो गोरा तो अपनेको सुन्दर समझता ही है, काला भी अपनेको सुन्दर समझता है—हमारी आँख ऐसी है, हमारी नाक ऐसी है, पर यह नहीं देखता है कि दोनोंका कान बगलमें है, दोनोंकी आँख सामने देखती हैं, दोनोंका मुँह खानेके लिए हैं, दोनोंके हाथ-पाँव हैं, दोनोंके धड़ पर सिर हैं—जो एकता है दोनोंमें वह नहीं दीखती है, जो भेद है दोनोंमें वह दीखता है। माने समता नहीं दिखती है, विषमता दिखती है—इसको बोलते हैं पशु-बुद्धि। और यह मिटती कब है? कि जब ईश्वरकी कृपा होती है—जब ईश्वर यह चाहता है कि अब यह मनुष्य भेद-बुद्धिसे छुटकारा पाकर हमारे पास आ जाये। यह भेदकी जो बुद्धि है यह असती-बुद्धि है। किसीसे यदि आपका राग है तो उसमें बहुत सुन्दरता मालूम पड़ेगी और यदि किसीसे आपका द्वेष है तो उसमें सब बुराई-ही-बुराई मालूम पड़ेगी। पहले आदमी बुरा होता है फिर उसमें द्वेष होता है, यह बात नहीं है। पहले अपने मनमें द्वेष होता है फिर वह आदमी बुरा लगता है। सृष्टि अन्दरसे बाहर आती है, अध्यात्ममें जब द्वेष आवेगा तब अधिभूतमें बुराई दीखने लगेगी—अन्तरङ्गसे बहिरङ्गकी सृष्टि होती है—सृष्टि भीतरसे बाहर आती है। जिसके प्रति तुम्हारे मनमें द्वेष भरा हुआ है उसमें बुराई-बुराई नजर आयेगी। आप देखिये—नेवला जो है वह जन्मसे ही सर्पसे द्वेष करता है—साँपने कभी उसको काटा नहीं है पर नेवलेके मनमें ही साँपसे दुश्मनी है। घोड़े और भैंसका भी आप जानते होंगे; घोड़े और हाथीका भी जानते होंगे—घोड़ेने भैंसका कुछ नहीं बिगाड़ा, भैंसने घोड़ेका कुछ नहीं बिगाड़ा; ऐसे ही घोड़ेने हाथीका कुछ नहीं बिगाड़ा, हाथीने घोड़ेका कुछ नहीं बिगाड़ा,

परन्तु अन्तरमें द्वेष होनेके कारण दोनों एक-दूसरेको देखकर चिढ़ जाते हैं। तो यह जो हमारे भीतर भेद-बुद्धि है यह पशु बुद्धि है। हमसब भारत-भूमिमें रहते हैं, यह नहीं देखेंगे; हम सब धरतीपर रहते हैं, सब पानी पीते हैं, सब सूर्य-चन्द्रमासे प्रकाश लेते हैं, सब हवामें साँस लेते हैं, सब आकाशमें इधर-उधर घूमते हैं—आँख-नाक-कान-हाथ-पाँव सबके एक जैसे और एक दूसरेसे द्वेष करते हैं—अभेद-ग्राहिणी-बुद्धि नहीं है। चींटी जैसे चाहे जहाँसे शक्कर ढूँढ लेती है और गुबरैला जैसे चाहे जहाँसे विष्ठा ढूँढ लेता है, वैसे ही महाराज जिन लोगोंके हृदयमें अपने और परायेकी बुद्धि—पशु-बुद्धि बैठ गयी है, वह जीवनमें सारे दुःखका हेतु वही है। दुःख बाहरसे नहीं आता है अपने भीतरसे ही आता है और भीतर ही दुःख देता भी है—बाहर तो चिंगारी पड़ती है केवल। किसीके घरमें आग लगी हो तो चिंगारी ही दूसरेपर पड़ती है—ऐसे ही अपने घरमें आग लगी हो तो उसकी चिंगारी दूसरे पर पड़ती है। गाली दे देते हैं, शाप दे देते हैं—संस्कृतमें श्राप शब्द नहीं है 'शाप' शब्द ही है। यह शाप कौन देता है? जो गाली देनेमें अशक्त होगा वह शाप दे देता है और धर्मात्माको भी क्रोध आयेगा तो शाप दे देगा, तपस्वी लोग बहुत ज्यादा शाप देते हैं, परन्तु जिसके हृदयमें रसीली प्रीतिमयी भक्तिका निवास है वह किसीको शाप नहीं देता। भक्ति जीभको कड़ुवी होने ही नहीं देती, वह हृदयमें किसीके अहितकी भावना आने ही नहीं देती—यह भक्तिका, प्रीतिका स्वभाव है।

जब भगवान् अनुकूल होते हैं, जब अपने सम्मुख आये हुए जीवसे भगवान्‌की आँखें चार होती हैं—इनको 'समञ्जन-क्रिया' बोलते हैं—यह विवाहके समय होती है। आजकल तो पण्डित लोग आपसमें ही ब्याहकर लेते हैं, बताते ही नहीं है कि हम क्या मन्त्र बोल रहे हैं-लड़कीकी ओरसे एक बोल देता है, लड़केकी ओरसे दूसरा बोल देता है—क्या बोल देते हैं यह न लड़केको पता होता है, न लड़कीको पता होता है। समञ्जन-

क्रिया क्या होती है कि विवाहके समय पूजा-पत्री हो जानेके बाद लड़की-लड़केकी ओर देखती है और लड़का लड़कीकी ओर—दोनोंकी आँखें चार होती हैं—आँखें चार करनेका नाम 'समञ्जन-क्रिया' होता है—इसका मन्त्र है जिसका अर्थ है कि हमारी आँख, हमारी नाक, हमारे कान, हमारी जीभ, हमारे हाथ, हमारे पाँव सङ्गत हो जायें—एक दिशामें काम करें—इसके लिए यह समञ्जन-क्रिया करवाते हैं। तो, जब ईश्वर और जीवकी आँख मिलती है तो जो कुछ ईश्वरका है वह सब अपना है और जो कुछ हमारा है वह सब ईश्वरका है। हमारी तिजोरी अलग नहीं है, ईश्वरकी तिजोरी अलग नहीं है—सब परमात्माके हैं, उनके पुत्र हैं—

माता पृथ्वी पुत्रोऽहं पृथिव्याम॥

पृथिवी हमारी माता है और परमेश्वर हमारे पिता हैं, हम सब एक परमेश्वरकी, एक पृथिवीमाताकी सन्तान हैं। जब ईश्वर अनुकूल होता है तब यह बुद्धि आती है और पशु-बुद्धि मिटती है।

पर यह बुद्धि असती है। कहो कि हम इस बुद्धिको रखेंगे। तो हमेशा रख भी नहीं सकोगे, क्योंकि यह पुश्चली है, कुल्टा है, वेश्या है—असती है। यह बुद्धि ही वेश्या-बुद्धि है—कभी वह अच्छा लगेगा तो कभी वह अच्छा लगेगा; कभी वह बुरा लगेगा तो कभी यह बुरा लगेगा। जैसे भोजनके लिए एक डॉक्टरने हमको जबलपुरमें बताया था कि महाराज इतना खानेकी क्या जरूरत है, थोड़ा खाया करो। मैंने कहा कि भाई थोड़ा खाते हैं तो भूख मिटती नहीं है; मालूम होता है कि पेट खाली है, पेटको वजन रखनेकी आदत पड़ जाती है, जबतक दो किलो भार उसके ऊपर न हो तबतक लगता है कि भूख लगी हुई है। एक गधेकी बात आपने सुनी है? एक गधेपर तीन मन बोझ रोज कुम्हार डाला करता था। एक दिन उसके पास डेढ़ ही मन बोझ था, डेढ़ मन लाद दिया, पर वह चले ही नहीं, कितना भी कुम्हार उसको मारे—गधा था। किसीने अक्कल दी कि और कोई बोझ नहीं है पासमें

तो है माटी, माटी ही और लाद दो, लाद दी माटी तो दौड़ पड़ा। ऐसे ही हम लोगोंका पेट भी जो है सो गधेकी तरह हो गया है, जितनी आदत हो गयी है उतना बोझ यदि उसके ऊपर न लादा जाये तो समझता है कि हम भूखे हैं। यह बुद्धि भी किसी-किसीकी ऐसी ही होती है महाराज! जबतक मनमें किसीके प्रति राग न हो तबतक सन्तोष ही नहीं होता, जबतक मनमें किसीके प्रति द्वेष न हो तो सन्तोष ही नहीं होता। यह बुद्धि जो है यह अपने मनमें राग-द्वेष; मुहब्बत-नफरत—किसीको अच्छा समझना, किसीको बुरा समझना—यह भेद अगर हम हमारी बुद्धिमें न रखें तो बुद्धिका पेट ही नहीं भरता है।

पर, जब ईश्वरकी कृपा होती है तब—

जाके बल लवलेश ते जितेहुँ चराचर झारि।

हनुमानजीको रावणके भीतर कौन दीखता है? कि राम दीखते हैं। अब ईश्वर अनुव्रतका अर्थ है कि जहाँ-जहाँ तुम जाते हो वहाँ-वहाँ भगवान् जाते हैं, जब तुम किसीको छूते हो तो भगवान् कहते हैं कि मेरे प्यारे भक्तका स्पर्श है यह हमको मिले। जिसको भक्त छूता है उसमें भगवान् पहलेसे आकर बैठ जाते हैं, जिसको भक्त देखता है—उसमें भगवान् आकर बैठ जाते हैं—हमारे प्यारे भक्तकी नजर हमको छोड़कर दूसरे पर कैसे पड़ेगी? जिसको देखनेके लिए जाता है भक्त, उसमें भगवान्का दर्शन होता है—

यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधयः।

जहाँ-जहाँ उसका मन जाता है वहाँ-वहाँ उसको भगवान् दीखते हैं!

तो भाई, 'अनुव्रत'का अर्थ है कि भगवान् 'अनुव्रत' होते हैं। जीव अनुव्रत नहीं है, भगवान् अनुव्रत हैं! माने भगवान् पति नहीं हैं पतिव्रता हैं। तो उनका पति कौन है? भक्त जहाँ ले जाये वहाँ वे जायें—भक्त उनको बेचे तो बिक जायें—

जब भगवान् किसीको पसन्द करते हैं तो महाराज जहाँ उसका पाँव पड़े उस धरतीमें धूल बनकर भगवान् बैठ जायें, जिसको सूँघे उसमें गन्ध बनकर बैठ जायें, जिसको चखे उसमें रस बनकर बैठ जायें, जिसको छूए उसमें स्पर्श बनकर बैठ जायें, जो काम करे उसमें क्रिया बनकरके आजायें—भक्तके अनुव्रत होते हैं भगवान् और जब अनुव्रत होते हैं तब उसकी पशु-बुद्धि मिट जाती है और बुद्धिमें समता और एकता आजाती है।

स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम्॥

७.५.१३

प्रह्लादजी आगे कहते हैं कि वही परमात्मा हमारा आत्मा है—सबका आत्मा है—स एष आत्मा—सबका आत्मा है। जहाँ मैं-मैं-मैं-मैं हो रहा है वहाँ भी परमात्मा है और जहाँ मैं-मैं -मैं नहीं है, सुषुप्त है—वहाँ भी परमात्मा है। स्वप्न और जाग्रत्में मैं-मैं-मैं होता है वहाँ परमात्मा है और सुषुप्तिमें मैं-मैं-मैं नहीं होता वहाँ भी परमात्मा है—कण-कणमें परमात्मा।

एकबार मैंने अपने मनमें सोचा—कोई उन्नीस बीस वर्ष पहलेकी बात होगी कि मेरा अँगूठा कट गया और कटकर अलग पड़ा है, तो इसमें जीव है कि नहीं? अरे भाई, जीव तो मैं हूँ और मुझसे कटकर यह अलग हो गया तो जीव कैसे रहा? पर महाराज जो गौरसे देखा तो उसमें जो खूनका कतरा था, उसमें जीव थे! एक-एक कतरेमें लाख-लाख़ जीव नजर आ रहे थे। अब भला बताओ—हमारा ही एक बूँद खून लेबोरेटरीमें डॉक्टर देख रहा था मशीनसे—उन्होंने हमको दिखाया हमारे एक कतरे खूनमें ऐसा लगता था कि जैसे सफेद-सफेद हाथी उछल रहे हों—एक कतरा खून और उसका बन गया समुद्र और

उसमें लाख-लाख जीव। यह देखते हैं न कि कितने लाख सफेद 'सेल' हैं और कितने लाख लाल 'सेल' हैं और सब अलग-अलग चाल-ढाल-गुण-क्रिया वाले और सबमें चेतना एक और सब अलग-अलग जीव। तो 'सर्वं जीवमयं जगत्'—सृष्टिका एक ऐसा कण नहीं है जिसमें जीवाणु नहीं है—आगमें भी जीवाणु होते हैं, विषमें भी जीवाणु होते हैं और जीवाणुओंके अलग-अलग होने पर भी सबमें चेतना एक होती है। परन्तु—

अबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरुप्यते।

अबुद्धिभिः—आपलोग अपनेको मत समझना। 'अबुद्धिभि' माने जो परमात्माके बारेमें जानकारी नहीं रखे, उनकी बुद्धि झूठी बुद्धि है, वे भले ही अपनेको बड़ा भारी बुद्धिमान मानते हों। जिनके मनमें 'अपना और पराया' बैठा हुआ है उनको ही परमात्माकी खोजका अनुभव नहीं होता है—इनको ही मूर्ख कहते हैं—ऐसे लोग अपनेका पक्षपात लेकर औरोंका तिरस्कार करते हैं—जाति मिल गयी तो पक्षपात, परिवार मिल गया तो पक्षपात, पार्टी मिल गयी तो पक्षपात। हम देखते हैं बाबा कि हमारे पास लोग आते हैं तो उनकी आपसमें पहचान बिलकुल नहीं होती है, पर जहाँ पता चलता है कि हमारी ही पार्टीके हैं तो ऐसे धुल-मिल जाते हैं कि क्या बतायें—न उनकी जाति-पाँतीका पता, न आचारका पता, न स्वभावका पता—कुछ पता नहीं, बस एक पार्टीके होनेसे ही पक्षपात हो जाता है।

तो यह जो अपने-परायेका भेद बुद्धिमें घुस गया है यह असलमें बुद्धि नहीं अबुद्धि है और ऐसे लोग परमात्माका दर्शन कभी नहीं कर सकते—

मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो।

और तो और चारों वेद जिनके मुँहसे संगीतके रूपमें निकलते रहते हैं वे ब्रह्मा देवता भी परमात्माके मार्गमें मोहित हो जाते हैं। प्रह्लाद

आगे बोलते हैं—गुरुजी जो आप यह पूछते हैं कि तुम्हारी बुद्धिको ऐसी किसने बना दिया तो बस-बस, वही है हमारी बुद्धिको मोहनेवाला, दूसरा और कोई नहीं है—ह्येष भिनत्रि मे मतिम्—यही हमारी बुद्धिको सबकी बुद्धिसे अलग करके अपने साथ मिला रहा है, अपनी बुद्धिके साथ एक कर रहा है!

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया॥ ७.५.१४

जैसे लोहा चुम्बकके साथ हो तो चुम्बक कोई हाथ लगा करके या बटन दबाकरके लोहेको संचालित नहीं करता है, चुम्बकके पास होने पर लोहा अपने-आप ही चल पड़ता है। एकबार हमारे हाथमें चुम्बक था और सामने सैकड़ों-हजारों लोहेकी कीले रखी हुई थीं, जो मैंने चुम्बकको उनके पास किया कि वे उड़-उड़कर उसमें सटने लग गयीं। तो, हमारी बुद्धिका संचालन कौन करता है? वही चुम्बक। चुम्बक माने प्रेमी। यह विदेशी-भाषा नहीं है, यह संस्कृत-भाषा है—चुम्बक माने चुम्बन करनेवाला।

यह पंखेमें जो लगाते हैं—पंखा जो घूमता है—वर्षों तक चलता रहता है उसमें चुम्बक अलग पड़ा है और पंखेकी पत्तियाँ जो हैं वे अलगसे घूम रही हैं। ऐसे ही परमात्माके सान्निध्यमें यह जो अलग-अलग बुद्धियाँ हैं ये घूमती रहती हैं—इसमें सुख-दुःख क्या है? कि जिसका जैसा संस्कार है उसके अनुसार। बिजली तो एक ही है बाबा—बल्बमें आयी तो रोशनी बन गयी, पंखेमें गयी तो हवा देने लगी, हीटरमें गयी तो गर्मी देने लगी—पर चुम्बक एक ही है! यह सारी दुनियाकी करामात, सारा इन्द्रजाल, सारा करिश्मा उस एक ही चेतनका है और वह चेतन ही मेरी बुद्धिको भी चला रहा है।

अब आगेका प्रसंग कल सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१६)

जीवनमें दुःखकी चाहे कितनी भी परिस्थिति आजाय प्रह्लादके चित्तमें उद्वेग नहीं होता था। संसारमें जो कुछ सुन्दर-सुन्दर भोग्य-वस्तुएँ हैं—सुनी हुई अथवा देखी हुई—उनकी स्पृहा प्रह्लादके मनमें नहीं होती थी, बल्कि प्रह्लाद उसको कोई वस्तु ही नहीं समझते थे—**'गुणेषु अवस्तुकृत्'**। उनकी इन्द्रियाँ, उनकी बुद्धि शान्त रहती थीं। शरीर था दैत्यका, परन्तु उनके हृदयमें दैत्यका भाव नहीं था। थे असुर, पर आसुर-भावसे रहित थे। जब हिरण्यकशिपुने उनसे पूछा कि प्रह्लाद, तुम सबसे बढ़िया वस्तु क्या समझते हो—जो अभी तक तुमने सुना है, सीखा है, पढ़ा है उसमें—सबसे बढ़िया क्या है?

जैसे कोई रोग होता है तो किस कारणसे रोग हुआ उस कारणको समझना पड़ता है रोगका पूर्व-लक्षण क्या है, रोग क्या है, इसकी शान्तिका उपाय क्या है—पहले यह सब समझना पड़ता है तब चिकित्सा होती है। प्रह्लाद कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि संसारके लोग दुःखी क्यों हैं—

सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।

इनके दिमागमें एक झूठी पकड़ बैठ गयी है। और उसको लेकरके ये जिद्दकर बैठे हैं। जैसे किसीने जिद्द कर ली कि हम तो गेहूँकी ही रोटी खायेंगे बाजरेकी रोटी नहीं खायेंगे। तो अब जब गेहूँका अभाव हुआ तब हाय-हाय चिल्लाने लगा। नहीं तो कैसी भी रोटी खाकर रह सकता था। ऐसे ही संसारमें जिद्द पड़ गयी है—हमको तो

ऐसा ही चाहिए। गर्मीसे दुःखी, सर्दीसे दुःखी, मरनेसे दुःखी-जीनेसे दुःखी, आने-जानेसे दुःखी; मिलने-जुलनेसे दुःखी। अपने मनकी जिद्द जो पूरी करना चाहता है संसारमें या जो एक झूठी जिद्द लेकरके बैठ गया—यह मूर्खका स्वभाव है, बालकका स्वभाव है—'बुद्धेर्फलं अनाग्रहः'—बुद्धिमान पुरुष आग्रही नहीं हुआ करता। राहू-केतु-शनिश्चर—इन ग्रहोंको अपने दिमागमें नहीं बैठाता। यह आग्रह, विग्रह, संग्रह, परिग्रह—ये सब ग्रह-हैं-ग्रह! और ग्रह रहते होंगे आसमानमें और ये ग्रह रहते हैं अपने मनके भीतर। इसीसे जीवनमें उद्वेग होता है और इस उद्वेगसे बचनेका उपाय है—सबमें भगवान्‌को देखो—'हरिमाश्रयेत'। यह कहो कि जब दुनियामें चोर नहीं रहेंगे तब हम सुखी होंगे, जब व्यभिचारी नहीं रहेंगे तब हम सुखी होंगे, जब रोगी नहीं रहेंगे तब सुखी होंगे, जब कोई मरेगा नहीं तब सुखी होंगे, तो समझ लो कि तुमने अपने सुखको पातालमें गाड़ दिया। वह कभी तुम्हारे जीवनमें आयेगा नहीं। लोगोंके रोगी होनेपर भी सुखी रहो, बूढ़े होनेपर भी सुखी रहो, मरनेपर भी सुखी रहो, आने-जाने पर भी सुखी रहो—अपने हृदयमें परमात्माका आनन्द प्रकट कर लो—तुम्हारे हृदयमें ईश्वर है; उसकी ओर देखो; वह सबके हृदयमें भरपूर है। जब ईश्वर पर दृष्टि जायेगी तब सारे दुःख मिट जायेंगे।

जीवनमें जो दुःख है वह अपने मालिकसे मतभेद होनेके कारण है! वह डाल रहा है गर्मी तुम चाहते हो सर्दी; वह डाल रहा है सर्दी तुम चाहते हो गर्मी, वह दुकानका माल दूसरी जगह भेजना चाहता है तुम अपने हाथमें रखना चाहते हो। अपनी जिद्द मनुष्यको दुःख देती है और इससे बचनेका उपाय है कि यह समझ लें कि इस सारी दुनियाका मालिक भगवान् है, वह जैसे रखे वैसे उसकी हाँ-में-हाँ मिलाकर रहें। कम-से-कम ईश्वरसे तो बोलो कि जो थारी राय सो म्हारी राय—

राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।

ईश्वरके साथ तो बोलो! दुनियामें जब किसीके साथ अपनी राय नहीं मिलायेंगे तो दुःख होना स्वाभाविक है—भगवान्‌के साथ अपनी राय मिला लेनी चाहिए और उनका भजन करना चाहिए तो दुःखसे बच जाओगे।

हिरण्यकशिपुने कहा कि हमारे बेटेको किसीने चुपके-चुपके सिखा-पढ़ा दिया है। ऐसे आदमी अन्दाज लगाते रहते हैं। जब ईश्वरको नहीं देखते हैं तब करोड़-करोड़ कुकल्पनाएँ मनमें आजाती हैं। अब हिरण्यकशिपुने दोष लगाया कि जो विष्णुके पक्षपाती हैं; देवताओंके पक्षपाती हैं; उन्होंने छिपकर हमारे बेटेको सिखा-पढ़ा दिया है जिससे उसकी बुद्धि बदल गयी है। फिर बोला—अभी बच्चा है, एक बार माफ कर देते हैं इसको और पुरोहितोंको—जो पढ़ानेवाले शिक्षक थे उनसे कहा—

सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः।
विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा॥ ७.५.७

इसकी भली-भाँति देखभालकी जाय ताकि कोई छिपकरके इसकी बुद्धिको बिगाड़ न सके। और फिर, प्रह्लादजीको पुरोहितके घर भेज दिया गया।

अब देखें आप—जो व्यवहारकी शिक्षा है वह तो माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानीसे मिलती है और जो शास्त्रकी शिक्षा है वह अध्यापकसे मिलती है। परन्तु, अध्यापक जो अपने घरमें आकर पढ़ाते हैं—बालकके घरमें जाकर, तन्ख्वाह लेकर उनकी शिक्षा परीक्षा देनेके काममें भले ही आजाय, जीवनमें काममें नहीं आती है। क्योंकि उनके बारेमें तो बालकोंका ख्याल होता है कि ये हमारे बापके नौकर हैं! एक सेठके लड़केको मैंने पूछा कि तुमने पढ़ना क्यों बन्द कर दिया, अभी और पढ़ते तो अच्छा रहता। तो बोला कि हम दस नौकर रख लेंगे अपने यहाँ और जो काम होगा वह उनसे

करा लेंगे, हमको पढ़नेकी क्या जरूरत है? यह सच्ची बात मैंने आपको सुनायी जो हमारी उस लड़केसे हुई थी। तो जो घरमें आकर पढ़ाते हैं उनका प्रभाव बालकों पर अच्छा नहीं पड़ता, बालकोंको जाना चाहिए अध्यापकोंके पास, उनको प्रणाम करना चाहिए और जब वे आज्ञा दें तब चुप हो जाना चाहिए। आज्ञाकारी होनेकी शिक्षा भी एक शिक्षा है, नहीं तो आदमी उच्छृंखल हो जाता है, कोई मर्यादा उसके जीवनमें नहीं होती। तो यह बात भी सीखने की है कि हम आज्ञाकारी बनें।

पर देखो, हिरण्यकशिपु यद्यपि त्रिलोकीका सम्राट् था और स्वर्ग भी उसके अधीन था फिर भी अपने पुत्र प्रह्लादको पढ़नेके लिए गुरुके घरमें भेजता था, पढ़ानेके लिए पण्डित घरमें नहीं आता था। शण्डामर्कसे प्रह्लाद पढ़ते थे। तो जब प्रह्लाद शण्डामर्कके घर गये तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्यों प्रह्लाद यह जो तुम बार-बार कहते हो कि भगवान् सबके हृदयमें प्रेरक बनकर बैठे हैं, भगवान्का भजन करना चाहिए यह तुमको किसने सिखाया है? तुम्हारे भीतरसे यह बुद्धि आती है कि बाहरसे आती है?

प्रह्लादने कहा कि हमको न किसीने बाहरसे सिखाया है न भीतरसे सिखाया है—जो सबको बुद्धि देनेवाला परमात्मा है वही हमको बुद्धि देता है! अब महाराज बहुत फुसलाया कि यह खाओ, यह पीओ, ऐसे रहो—साम-दाम-सबसे समझाया, कुछ देनेकी बात करी, दोस्तोंसे पूछा, पर कुछ पता नहीं चला, तो बोले कि अब तो इसको पीटना चाहिए।

जो बालकके हृदयकी बात नहीं समझते हैं और डाँट-फटकार कर उनको शिक्षा देना चाहते हैं उनके मूलमें ही भूल होती है। ये जितने बालक पैदा होते हैं ये एक विशेष संस्कार लेकरके पैदा होते हैं—जैसे हीरा है तो वह किस किस्मका है, वह पन्ना है, वह माणिक है—है क्या,

पहले उसको देख लो, फिर वह कैसे काममें लिया जायेगा इसका ख्याल कर लो, फिर उसकी धुलाई करो, उसकी घिसाई करो, उसको सुडौल बनाओ, उसमें पालिश करो और फिर जहाँ उसको धारण करना-कराना हो वहाँ धारण कर लो। ये जितने बच्चे होते हैं ये भी सब हीरेके रूपमें होते हैं, इनको आप सुडौल बनाइये! परन्तु, यह मत कहो कि हम इनको हीरा बना देंगे कि माणिक बना देंगे कि पन्ना-मोती बना देंगे! वह तो हीरा है ही है। वह तो अपना गुण लेकरके, अपना संस्कार-स्वभाव लेकर प्रकट हुआ है; उसको केवल तराश पर चढ़ाना है, उसको केवल सुडौल बनाना है—इसीको बोलते हैं 'दोषापनयन'। जो बाहरसे मिट्टी लग गयी है, बेडौलपना है उसको दूर कर दो—बस, इतनी ही शिक्षा होती है और ज्ञान तो सब-का-सब भीतरसे ही निकलता है। अब शण्डामर्क बोले—

'**आनीयतामरे वेत्रं**'—बेंत लाओ, हम पीटकर ठीक करेंगे। प्रह्लाद चुपचाप। बोले कि यह दैत्य-वंशका नाश करेगा, दैत्य-वंशको कलंक लगायेगा। प्रह्लाद चुपचाप। पुरोहित इससे समझे कि अब यह हमारी बात माननेको तैयार है और पढ़ाने लग गये। धन कैसे कमाना चाहिए, भोग कैसे भोगना चाहिए, कर्म कैसे करना चाहिए। आपके ध्यानमें यह बात होगी कि हम लोग जो धन कमाते हैं यह शरीरके बाहर रहता है—आप बैंकमें रखिये, तिजोरीमें रखिये, जेबमें रखिये—बन्दरोंकी रीति तो यह है कि जो सिखाये हुए बन्दर होते हैं वे दस-दस, बीस-बीस गिन्नी व सिक्केवाले रुपये तक अपने गलेमें रख लेते हैं और फिर मदारीको निकाल कर दे देते हैं—बन्दरोंके अन्दर वस्तु भीतर रखनेकी जगह होती है, पर मनुष्यके लिए तो जितना भी अर्थ है वह बाहरकी वस्तु है—बाहरसे आता है, बाहर रहता है और बाहर ही नष्ट हो जाता है। धन हमको चाहिए जरूर—उसीसे हम खाते हैं, पीते हैं, रहते हैं, जीते हैं। शरीरके लिए धन बहुत जरूरी है और इसीसे सब

लोग उसको चाहते हैं। पर, धन कमानेकी एक कला होती है इसमें भी जो अनुभवी धनी लोग हैं उनका सङ्ग बहुत लाभदायक होता है। कोई किताबमें अर्थ-शास्त्रका बड़ा भारी आचार्य भले बन जाये, लेकिन यदि धन-कमानेवालोंका सङ्ग न हो तो मौके पर वह चूक जायेगा, इसके लिए अनुभवी लोगोंका सत्सङ्ग चाहिए, अर्थ-सिद्ध-पुरुषका सङ्ग चाहिए। अर्थके भीतर भी भगवान् हैं, पर जरा बाहर रहते हैं।

दूसरा पुरुषार्थ होता है काम—यह मनमें रहता है—हमको यह चाहिए, हमको यह चाहिए, हमको यह मिलेगा तो ऐसा भोग करेंगे, स्वर्गमें यह भोग प्राप्त करेंगे, मर्त्य-लोकमें यह भोग प्राप्त करेंगे, इतना हमारे पास है, इतना और हो जायेगा—यह काम पुरुषार्थ होता है और मनमें रहता है!

और धर्म पुरुषार्थ रहता है बुद्धिमें—यह ऊपर है। यदि किसीकी बुद्धिमें धर्म बैठ जाय—जैसे मोटरमें ब्रेक होता है न, वैसे हमारे मन और अर्थकी कमायी और भोगमें रोक लगानेके लिए जो हमारी बुद्धिमें शक्ति होती है—उसको वारक-शक्ति कहते हैं। देखो, यह पैसा मत उठाना यह दूसरेके हकका है, उठावोगे तो बेईमानी हो जायेगी, चोरी हो जायेगी—यह शिक्षा तुमको कौन देता है? यह तुम्हारी बुद्धिमें धर्म है।

यह पर-पुरुष है, यह पर-स्त्री है इसके साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। यह बात भीतरसे कौन सिखाता है? धर्म सिखाता है।

तो मन और वस्तु दोनों पर ब्रेक लगानेके लिए कि हम बुरा धन न कमाएँ और हम बुरा भोग न भोंगे इसके लिए हमारी बुद्धिमें धर्मका संस्कार रहना चाहिए। यह तो आपको मालूम है न कि जैसे हम प्रयत्न करते हैं कि यह चीज मिले या यह चीज न मिले—दो तरहका ही प्रयत्न होता है चाहे जितना भी प्रयत्न हो—दो ही तरहका प्रयत्न होता है—किसीको रोकनेके लिए और किसीको बुलानेके लिए

हम प्रयत्न करते हैं। तो यह प्रयत्न कैसे होता है? इच्छासे यह होता है। जब रोकनेकी इच्छा होगी या बुलानेकी इच्छा होगी तब प्रयत्न होता है। वह इच्छा कहाँसे आती है? ज्ञानमें-से आती है। हमारी जैसी जानकारी होती है—अच्छी-बुरी—उसके अनुसार इच्छा होती है—अच्छी चीजको पानेकी और बुरी चीजको छोड़नेकी। अर्थात् ज्ञानके अनुसार इच्छा होती है और इच्छाके अनुसार प्रयत्न होता है—ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न।

धर्म-ज्ञान जो है वह बुद्धिमें रहता है—यह भोग भोगना चाहिए, यह भोग नहीं भोगना चाहिए, यह धन लेना चाहिए, यह नहीं लेना चाहिए! एकबार काशीमें हमारे पण्डितोंकी सभा थी—बहुत पुरानी बात है—सन् उन्नीस सौ बावनके आस-पासकी बात है—जितने पण्डित आये सब दक्षिणा लेते गये, दक्षिणा लेते गये—एक पण्डितने कहा कि महाराज, आपके बुलानेसे हम आते हैं; परन्तु हम दान नहीं लेते हैं, प्रतिग्रह नहीं करते हैं—आपके बुलानेसे, आपके प्रेमसे आगये हैं, पर दान नहीं लेते हैं। अच्छा कोई उपाय है आपको देनेका? पण्डित बोले कि आप हमको कोई काम बता दो और जब वह काम हम कर दें तब आप हमको जो देंगे वह हम ले लेंगे। अब मैंने उनको बताया कि आप दुर्गा-पाठ कर दो हमारे लिए। उन्होंने दुर्गा-पाठ किया और फिर दुर्गा-पाठ करनेकी दक्षिणा उन्होंने हमसे ले ली—उनका नाम पण्डित नन्दलालजी था—हमको याद है। उनका नियम था वे प्रतिग्रह नहीं लेते थे। तो उनको प्रतिग्रहसे रोकनेवाला कौन था? धन तो बड़े कामकी चीज है और उनको भी अपने और अपने बच्चोंके लिए रुपयोंकी जरूरत थी। परन्तु, उनको धर्मका ज्ञान था। जो दान लेनेके परायण हो जाता है वह ब्राह्मण ऐसी गायकी तरह हो जाता है जिसका दूध सूख गया हो। मनुस्मृतिका श्लोक है—

प्रतिग्रहेणह्भस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।

अब आप लोग ब्राह्मणको पकड़करके मत बैठ जाना, मतलब हमारा यह है कि जब हमारे हृदयमें धर्म होगा तो बुरा काम करनेसे रोकेगा, बुरा भोग करनेसे रोकेगा, बुरी वस्तुके संग्रहसे रोकेगा, बुरी बात बोलनेसे रोकेगा—बुद्धिमें बैठकर यह जो धर्मज्ञान है यह हमारे मनको, तनको, संग्रहको—हमारे अभिमानको नियन्त्रित करता है, कन्ट्रोलमें रखता है यह करो यह मत करो।

पण्डितोंने (शण्डामर्कने) यह सब नहीं सिखाया—त्रिवर्गस्योपपादनम्—मोक्षकी बात नहीं सिखायी। पण्डितों बिचारोंको ही मालूम नहीं था कि मोक्ष कैसे होता है? उन्होंने तो यह सिखाया कि शत्रु पर चढ़ायी कब करनी चाहिए, उनके साथ युद्ध कैसे करना चाहिए, सन्धि कब करनी चाहिए, विग्रह कब करना चाहिए, दे-लेकर तय कब करना चाहिए, दण्ड कैसे देना चाहिए—यह सब सिखा दिया। और, प्रह्लादजी महाराज ऐसे सीधे-सादे कि गुरुजी जो सिखावें वह सब सीख लें और गुरुजी प्रश्न करें कि तुमने क्या सीखा है, तो तुरन्त उत्तर दे दें! जैसे कोई तोता रट ले बातको वैसे प्रह्लादजीने गुरुजीकी सिखायी बात रट ली—पूछें जब, तभी सुना दें!

अब गुरुजीको विश्वास हो गया कि हमारा चेला पढ़-लिखकर पक्का हो गया, तो उसको खूब सजा-सँवारकर, चन्दन-तिलक लगाकर खूब आनन्दसे हिरण्यकशिपुके पास ले गये। हिरण्यकशिपु बहुत प्रसन्न! प्रह्लादजीने जाकर पिताजीके चरण छूए और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। 'प्रह्लाद आनन्दमें हो?' 'पिताजी आपकी कृपा है'—ऐसा विनय प्रह्लादकी वाणीमें।

विनयके बिना संसारमें कोई सिद्धि नहीं होती है! शास्त्रमें यह सूत्र है—विद्यासे विनयकी प्राप्ति होती है, विनयसे पात्रता आती है, पात्रतासे धन मिलता है, धनसे धर्म होता है, धर्मसे सुख होता है। धनमें जरा-सा सुख है और धर्ममें सुख अपने वशमें होता है! जो

धर्मानुष्ठान करता है उसकी मुट्ठीमें सुख होता है और जो धन इकट्ठा करता है उसका सुख तिजोरीमें होता है। हमने बड़े-बड़े करोड़पतियोंको देखा है महाराज, जब उनके ऊपर कोई सङ्कट आता है तब उनकी आँखसे ऐसे आँसू ढलकते हैं! हमने आजसे बीस-पच्चीस वर्ष पहले एक अरबपतिको देखा—ऐसे रो रहे थे, ऐसे रो रहे थे—टैक्स नहीं चुकाया था, सो आज वह टैक्स पच्चीस करोड़ रुपया हो गया—रोते थे अब क्या करूँ, अब क्या होगा? तो, धनमें सुख नहीं है, धनी तो दुःखी भी होता है और गरीबको भी हम देखते हैं—मस्त। सुख अलग चीज है और धन अलग चीज है। जिसके पास कुछ धन नहीं है वह भी सुखी रहता है—गंगा-किनारे महात्मा भिक्षा माँग कर खाता है और मस्त रहता है और बड़े-बड़े सेठ जिनके हाथमें अरबों रुपये हैं, दुःखी रहते हैं। तो धन और सुख दोनों अलग-अलग चीज हैं—सुख मिलता है सत्सङ्गसे और अभिमान मिलता है धनसे।

हिरण्यकशिपुने जब देखा कि प्रह्लाद बड़ा विनयी है तो उसको लेकर गोदमें बैठा लिया—आखिर था तो उसका अपना बेटा! बड़ा प्रेम किया और पूछा कि बेटा—'अनूच्यताम्'—अनूच्यताम् माने जो कुछ अबतक तुमने सीखा है सो बताओ और सीखा हुआ सब कैसे बताओगे उसमें—'स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम्'—जो तुमने पढ़ा है उसमें-से कोई उत्तम बात हमको सुना दो—सबसे बढ़िया जो तुमको लगती है वह बात हमें सुना दो!

प्रह्लादजी पर जैसे एकदम वज्र ही डाल दिया—न धर्मकी बात, न कामकी बात—एकदम वज्र फेंका। जो बात तुमको सबसे उत्तम लगती हो वह हमको सुनाओ।

प्रह्लादजी बोले कि सबसे बढ़िया बात यह है कि राग-द्वेषके चक्करमें मत पड़ो। क्योंकि संसारके सुख-दुःखका कारण राग-द्वेष ही होता है। हमारे मनमें सुख कब होता है? जब हमको कुछ संग्रह

करनेको मिलता है। हमको सुख कब होता है? जब हमको भोग करनेको मिलता है। हमको सुख कब होता है? जब मनोराज्य होता है कि आज नहीं तो कल हमारे मनका होगा। हमको सुख कब होता है? जब हमारा अहङ्कार बढ़ता है। और दुःख? इन्हीं बातोंके उल्टा होनेपर दुःख होता है। तो प्रह्लादजी बोले कि हमने सबसे बढ़िया बात यह पढ़ी है कि संसारका राग-द्वेष छोड़कर भगवान्‌में मन लगाना चाहिए–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

७.५.२३

'श्रवणं'–कानसे सुनो भगवान्‌की बात; 'कीर्तनं'–मुँहसे बोलो भगवान्‌की बात, 'स्मरणं'–हृदयमें भगवान्‌का स्मरण करो। दुनियामें किसीकी अच्छी बात सुनोगे तो उससे राग हो जायेगा और उसके पीछे-पीछे लगे फिरो और किसीके लिए यदि सुनोगे कि बुरा है तो उससे नफरत हो जायेगी–फिर उससे भागते फिरो। तो इससे अपना दिल मैला हो जाता है–मुहब्बतसे भी मैला और नफरतसे भी मैला। तो भाई, इसको मैला मत करो, देखो इसमें तुमको भगवान्‌का दर्शन होगा। यदि तुम्हारे मनमें संसारकी कोई मलिनता नहीं होगी तो तुम्हें परमात्माका साक्षात्कार होगा। तुम बोलना बन्द करो तुम्हारे हृदयमें परमेश्वर बोलेगा; तुम जाना बन्द करो परमेश्वर तुम्हारे पास आवेगा। यह जो राग-द्वेष है न, यही हृदयको मलिन करता है, कलुषित करता है, इसलिए अपने हृदयको निर्मल करनेके लिए इन नौ बातोंका ध्यान रखें!

अब और चर्चा कल करेंगे!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ ७.५.२३

देखो, संसारमें जितनी अच्छाई-बुराई है वह दूसरे लोग सुना-सुनाकर ही हमारे हृदयमें भरते हैं। जैसे आप किसीको चोर मानते हैं, तो आपने क्या उसको चोरी करते देखा है? क्या आपको दिखाकर उसने चोरीकी है? नहीं, कहींसे आपने सुना है कि वह चोर है! अच्छा, आप किसीको व्यभिचारी मानते हैं तो क्या आपको दिखाकर-बताकर उसने व्यभिचार किया? कि नहीं, कहींसे सुनकर आप आये और वह आपके दिमागमें भर गया। आपके कागज पर एक लकीर खींची गयी और आपको पढ़ानेवालेने बताया आपको कि यह 'क' है, यह 'ख' है, यह 'अ' है—उसने सुना-सुनाकर ऐसा संस्कार डाला कि अब जब कभी आप वैसी लकीर देखते हैं तो कहते हैं कि यह 'अ' है, यह 'क' है यह 'ख' है। यदि आपको सुनाकर न बताया गया होता तो आप कैसे मानते कि यह 'अ' है, 'क' है, 'ख' है।

अच्छा, और भी देखो—यह आपको कैसे मालूम पड़ा कि यह आपकी माँ है। किसीने आपको सुनाया कि यह माँ है, तब आपने उसको माँ कहना प्रारम्भ किया। और यह तुम्हारा बाप है, यह तुमने कैसे जाना? यह भी सुनकर ही जाना। इसका नाम मिट्टी है, इसका नाम पानी है—यह आपने कैसे जाना? ये सब नाम आपको सुनाये गये और आपने उनको अपने दिलमें बैठा लिया।

और फिर यह पाप है, यह पुण्य है, यह नरक है, यह स्वर्ग है—यह सब सुना-सुनाकर आपके दिमागमें भरा गया—इसको वेदान्तियोंकी भाषामें 'अध्यारोप' बोलते हैं। आपके मनमें यह अध्यारोपित किया गया, थोपा गया, यह अध्यास बैठाया गया और

आप उसको पकड़कर संसारमें बैठ गये। यह घड़ी चल रही है। जब युद्धका समय आया था तब इसको आधा घंटा आगे बढ़ा दिया गया था, तब उतने बजा करते थे। और, अभी पश्चिमी देशोंमें कितना बजा है? पाँच-पाँच, सात-सात घण्टोंका फर्क होता है—यहाँकी और लन्दन-अमेरिका आदिकी घड़ियोंमें और यहाँसे पूर्वी देशोंकी घड़ीमें और भी अधिक फर्क होता है। तो, यह सब बात आपके दिमागमें बैठायी गयी है—यह आप ध्यानमें रखें! यह प्रेम-कुटीर है, यह किस दिशामें है, यह क्या आप बता सकते हैं? एक ओरसे पूरब है तो दूसरी ओरसे पश्चिम है, कहींसे ऊपर है तो कहींसे नीचे है, कहींसे बाहर है तो कहींसे भीतर है। तो, यह दुनिया जो आपके दिमागमें भरी गयी है यह कुछ कानके द्वारा भरी गयी है और कुछ दुनिया बोलते-बोलते-दिमागमें बैठ गयी है। हमने पहले कहीं पढ़ा था कि एक झूठ यदि आदमी सौ बार बोल देता है तो बोलनेवालेको ही मालूम पड़ने लगता है कि मैं सच बोल रहा हूँ। तो कुछ दुनिया सुनकर दिमागमें भरी; कुछ दुनिया बोलकर दिमागमें भरी और कुछ दुनिया कल्पना करके दिमागमें भरी। इस तरह अपने दिमागमें दुनियाको भरके और उसीको सच मान करके और उसीको पकड़करके हम इसमें ऐसे फँस गये कि उसके सिवाय और कुछ सच ही नहीं मालूम पड़ता!

तो, इससे बचनेका उपाय क्या है? जैसे यह दुनिया आपके दिमागमें भरी गयी वैसे ही आप भगवान्‌को अपने दिमागमें भरिये—भगवान्‌के बारेमें सुनिये, भगवान्‌के बारेमें बोलिये और भगवान्‌के स्मरणकी एक धारा अपने हृदयमें बहने दीजिये—**'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं' विष्णोः श्रवणं, विष्णोः कीर्तनं, विष्णोः स्मरणं**—तीन बात पहले ले लें।

'श्रवणं' माने यह नहीं कि जैसे हम भोंपू सुनते हैं, उसका नाम श्रवण है। **'श्रवण'** माने जो हम जो सुने उसके अर्थका ज्ञान भी हो और

निश्चय भी हो। वेदान्तियोंमें तो मुक्ति-प्रधान-साधन श्रवणको ही माना जाता है और भक्तिमें भी सबसे पहला साधन श्रवण ही है। क्योंकि जो वस्तु आँखोंके सामने नहीं रहती है, परोक्ष रहती है, उसको पहचाननेका साधन श्रवण है। जब कोई बतावेगा कि यह ऐसा है तब बात समझमें आवेगी। तो यदि आप संसारके दुःखसे दुःखी हैं, अनर्थकी निवृत्ति चाहते हैं परमानन्दकी प्राप्ति चाहते हैं तो आपको ईश्वरके बारेमें श्रवण करना आवश्यक है; श्रवणके सिवाय इसका और कोई मार्ग नहीं है। कहो कि अभी हम जाकर भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन करेंगे और भक्त हो जायेंगे। नहीं, यह मूर्ति भगवान्‌की है और इस लीलाकी है, इसकी महिमा यह है—जबतक इन सब बातोंका श्रवण नहीं करोगे तबतक उस मूर्त्तिके देखनेसे तुम्हारे हृदयमें कोई परिवर्तन नहीं होगा! सुनना पड़ेगा उसके बारेमें। देखो, नदी बहती है—एक गंगा है, एक जमुना है—आप आँखसे नदीको देखोगे तो बोलोगे दरिया है दोनों। ठीक है, लेकिन जब आप उसके विषयमें सुनोगे कि गंगाजीकी यह महिमा है, यमुनाजीकी यह महिमा है तब उसमें स्नानका आनन्द आने लगेगा। इसलिए श्रवणके बिना न ईश्वरका ज्ञान होगा, न स्वर्गका ज्ञान होगा, न मोक्षका ज्ञान होगा और न तो संसारका ज्ञान होगा। श्रवणसे बढ़कर ज्ञान-प्राप्तिका और कोई साधन सृष्टिमें नहीं होता है।

आओ अब थोड़ी-सी बात 'श्रवण'की करें। सुनते तो सब हैं। ऐसे सुननेवाले लोग भी होते हैं जो यदि वक्तासे दो हजार शब्द सुनें और उसमें कोई अशुद्ध शब्द निकल जाये तो वह उनको याद रहता है! एक श्रीमतीजी थीं, उन्होंने एक डिक्शनरी पढ़ी और फिर डिक्शनरीके लेखकके नाम एक पत्र भेजा कि आपकी डिक्शनरी बहुत गन्दी है। क्यों? बोलीं कि इसमें एक सौ चालीस बार गालियोंका प्रयोग है। लाखों शब्दकी डिक्शनरी, उसमें गाली देनेके अलग-अलग ढंग लिखे हुए थे। तो लेखकने लिखा कि श्रीमतीजी आपकी गालियोंमें बहुत दिलचस्पी

लगती है। जिसकी जिसमें दिलचस्पी होती है वह उसको पकड़ लेता है। तो जो गलती पकड़नेवाले श्रोता होते हैं वे दूसरे होते हैं और कोई-कोई महाराज बीचमें सो जाते हैं और कोई-कोई—लड़के-लड़की आपसमें मिलनेके लिए ही कथामें आजाते हैं, कोई कथामें बैठकर व्यापारकी बात सोचते हैं। नहीं भाई, कथा सुननेका भी एक ढंग होता है। वह सोनेके लिए नहीं है, वह बोलनेके लिए नहीं है, वह दूसरे श्रोताका ध्यान बिगाड़नेके लिए नहीं है, वह बुरी बातें ग्रहण करनेके लिए नहीं है। जैसे हंस क्षीर-नीर-विवेक करता है, ऐसे अच्छी-अच्छी बातोंको ग्रहणकर लेना चाहिए और जो बात आपकी रुचिकी न हो, आपके विचारके अनुसार न हो उसको छोड़ देना चाहिए। क्योंकि, वह किसी दूसरेकी रुचिके अनुसार हो सकती है, दूसरेके विचारके अनुसार हो सकती है—सुननेवाले तो सैकड़ों हैं। तो सुननेका भी एक ढंग होता है।

शास्त्रमें 'श्रवण'को मानते हैं अङ्गी-मुख्य शरीर और उसके तीन अङ्ग होते हैं—

(१) ध्यान, (२) हृदयकी पवित्रता और (३) मनन। जब तीनों अङ्ग पूरे होते हैं तब श्रवण हमारे जीवनमें अपना काम करता है।

१. ध्यान—ध्यानका अर्थ समाधि लगाना नहीं है। मनमें एकाग्रता हो—जो बात आपके सामने आ रही है उसको आप एकाग्र मनसे श्रवण कीजिये। मनमें एकाग्रता चाहिए, तब श्रवण आपके मनमें प्रवेश करेगा। हमने देखा महाराज, सेठ जयदयालजीका सत्सङ्ग होता था बड़के पेड़के नीचे। एक सज्जन थे जो सत्सङ्गमें आकर सबसे आगे बैठते और कुछ ही देर बाद उनको नींद आजाती, कभी नाक भी घर्र-घर्र बोलती और कभी मुँहसे बलगम भी निकलता-पर बैठते सबसे आगे। तो मैंने उनसे पूछा—मेरे मित्र थे—कि तुम आगे क्यों बैठते हो जब तुम्हें नींद आती है? तो बोले कि देखो महाराज, सेठजी न जाने क्या-क्या बोलते हैं यह सब तो हमारी समझमें आता

नहीं है, लेकिन हमारा विश्वास है कि जब ये हमारी भलाईकी बात बोलेंगे तब भगवान् हमारी नींद खोल देंगे और हम उसको ग्रहण कर लेंगे, तो हम इसी इन्तजारमें हैं कि सेठजी कब हमारी भलाईकी बात बोलते हैं और कब भगवान् हमारी नींद खोलते हैं! तो, ऐसा नहीं होना चाहिए। अपनी ओरसे सावधानी रहनी चाहिए, नहीं तो

'आए मोरे सजना फिरी गये अङ्गना, मैं अभागिन रही सोय री'

साजन आये मेरे अङ्गनामें और चले गये और मैं पगली सोती रह गयी। ऐसा नहीं। बल्कि कान खड़े हों, मन एकाग्र हो और एक-एक बातको ध्यानसे सुनें—तब श्रवणकी महिमा पूरी होती है, श्रवण सफल होता है!

२. दूसरी बात श्रवणकी यह है कि हृदयमें पवित्रता चाहिए। पहलेसे कुछ भरकर हृदयमें बैठे हों कि हमको तो यही करना है। एक सज्जन आये बड़ी दूरसे कथा सुननेको और उन्होंने कहा मुझसे कि स्वामीजी, आज तो ईमानदारीसे व्यापार कैसे करना चाहिए—इसपर आपका व्याख्यान हो जाय। मैंने कहा कि अच्छा भाई, और ईमानदारीसे व्यापार कैसे करें—उसीपर व्याख्यान हो गया। पर, वे तो जब घरसे चले थे तब सोचकर चले थे कि किस व्यापारमें कैसे बेईमानी करेंगे और कैसे मुनाफा उठावेंगे—माने वह तो उनको जाकर करना ही है—यह बेईमानी करेंगे, यह कानूनके खिलाफ करेंगे—पहलेसे मनमें भरकर आये और कथामें ईमानदारी पर व्याख्यान सुना और फिर आफिसमें जाकर वही काम किया जिसका घरसे निश्चय करके चले थे—तो क्या लाभ हुआ? पहलेसे हृदयमें निर्मलता नहीं है, मैल भरा हुआ है, इससे सुनी हुई अच्छी जो बात है वह हृदयमें बैठी नहीं, बाहरसे ही लौट गयी! जैसे कि आपके बर्तनमें कचरा भरा हुआ है—कभी-कभी ऐसा होता है कि लोग बर्त्तन-गिलास उठाते हैं और उसको न देखते हैं, न धोते हैं, न पोंछते हैं और उसमें ले जाकर दूध भर देते

हैं। इससे उसमें जो गन्दगी भरी रहती है वह ऊपर आ जाती है और कभी-कभी तो मक्खी-मच्छर भी निकल आते हैं। तो तुमने बर्त्तनको ठीकसे देखा नहीं, साफ नहीं किया। जब तुम अपने हृदयको निर्मल करके, पवित्र करके कथा सुनोगे तब तुमको कथाका रस, कथाकी मिठास मालूम पड़ेगी। और—

३. तीसरी बात यह है कि आप कथा सुनें और कथा सुननेके बाद उसपर 'मनन' करें, उसपर विचार करें। 'मनन'का अर्थ तर्क-वितर्क-कुतर्क नहीं होता, 'मनन'का अर्थ होता है—अनुकूल-चिन्तन। जो हम सुनते हैं उसमें क्या-क्या गुण हैं, क्या-क्या युक्ति है और वह कैसे-कैसे सत्य है—इस बातका विचार करना चाहिए। यदि काटनेवाला विचार करोगे, कुतर्क करोगे तो वह सुनी हुई बात तुम्हारे हृदयमें ठहरेगी नहीं। 'मनन' अनुकूल होता है। अनुकूल चिन्तनका नाम मनन होता है। श्रवणके सम्बन्धमें मनमें उत्तम विचार आवे—यह है सुननेकी पद्धति।

देखो, आँखसे जो चीज देख जाती है उसको हम बता दें—इस समय कितने बजे हैं घड़ीमें—तो पहलेसे घड़ी जानी हुई है, कैसे चलती है—सूई कहाँ जाती है तो कितने बजते हैं—आँखसे देखा और जान लिया। लेकिन ईश्वरके बारेमें ऐसा नहीं होता कि आप उसको आँखसे देख लें और पहचान जायँ। क्योंकि ईश्वर परोक्ष है और परोक्ष-वस्तुका ज्ञान श्रवणके द्वारा होता है केवल श्रवणके द्वारा होता है। यह नहीं कि ईश्वरको आप आँखसे देखेंगे कि नाकसे उसको सूँघेंगे कि जीभसे चखेंगे कि हाथसे छूयेंगे तब प्रत्यक्ष ज्ञान ईश्वरका होगा? जी नहीं, पहले होगा ईश्वरका श्रवण और श्रवण करने पर वे सारी बातें आपके ध्यानमें बैठ जायेंगी और आपका हृदय निर्मल होगा और निर्मल होनेपर मनन करेंगे तब आपको पक्का निश्चय हो जायेगा कि हाँ-हाँ, ईश्वर ऐसा है। असलमें वह आपकी ईश्वरताको ही जगानेवाली चीज है, अगर कोई वेदान्ती हो तो वह इस बातको मान ले। मान लो कि आपने

अपने ध्यानमें रामको बनाया, कृष्णको बनाया और मनमें राम-कृष्ण बनानेके बाद आपने जाग्रत्‌में भी उनको देख लिया—यह राम हैं, यह कृष्ण हैं। तो, इससे एक बात तो साफ जाहिर हो गयी कि आपके मनमें इतना सामर्थ्य है कि वह राम-कृष्णको भी बनाकर देख सकता है। फिर तो आपका ईश्वरत्व जाग जायेगा। सचमुच आपने स्वयं अपनी यह दुनिया बनायी है और स्वयं बनाकर इसमें फँस गये हैं। आपके ईश्वरत्वका जागरण हो जायेगा कि यदि आपका ज्ञान पक्का हो जाये। इसलिए, भागवतका यह कहना है कि आप पहले सुनिये—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥
१.८.३६

यदि कोई वक्ता मिल जाय तो बोलनेकी भी तकलीफ उठानेकी जरूरत नहीं है, सुनना चाहिए। बोलनेकी अपेक्षा श्रवण करना उत्तम है। क्योंकि श्रवण ज्ञानेन्द्रियका काम है और बोलना कर्मेन्द्रियका काम है—बोलना कर्म है और सुनना ज्ञान है। सात्विक तन्मात्रा-आकाशकी तन्मात्रासे कान बनता है और राजस-तन्मात्रासे वाक् बनती है। निर्देश देनेवाला है कान और काम करनेवाली है जीभ। जैसे एक मंत्री और एक उसके ऑफिसका चपरासी। कान मंत्री है और बोलनेवाली जीभ चपरासी है। ऐसे ही महाराज, आँख मंत्री है—रास्ता बताती है और पाँव चलता है—चपरासी है। कर्मेन्द्रिय है पाँव—वह चलता है और ज्ञानेन्द्रिय है आँख-वह रास्ता बताती है। ज्ञानेन्द्रियका काम है बताना और कर्मेन्द्रियका काम है करना। जहाँ श्रवण मिले, वहाँ बिलकुल ठीक-ठीक श्रवण कर लेना चाहिए। यदि आपको कोई अनुभवी वक्ता मिले और श्रवण करावे तो आप श्रवण कीजिये। लेकिन, यदि कोई वक्ता न मिले और कोई श्रोता मिल जाये तो, उसमें भी हिचकिचानेकी कोई बात नहीं है। आप तो वर्णन करते ही हैं कि आज मौसम कैसा

है? कि बड़ी गर्मी पड़ रही है; कि बड़ी ठण्ड है। तो बाबा, यह तुमको भी मालूम है और उसको भी मालूम है—पीसे हुएको पीसना, चबाये हुएको चबाना—दुबारा बोलनेकी क्या जरूरत है? यह तो एक शिष्टाचारकी पद्धति है। पर, तुम कोई ऐसी बात बोलो भाई, जिससे हमारा मन पवित्र हो जाय, हमारा मन अग्रसर हो जाय।

तो, यदि श्रोता मिल जाये तो उसको बोलकर सुनाओ और यदि न वक्ता मिले और न श्रोता मिले तो गुनगुनाओ! आप जानते ही हैं—बॉथरूममें गानेवाले होते ही हैं—वहाँ कौन सुनता है और कौन सुनाता है। महाराज, हमारे यहाँ जो काम करनेवाला आदमी है वह चाहे बर्त्तन माँज रहा हो, चाहे झाड़ू लगा रहा हो, चाहे इधर-से-उधर जा रहा हो—उसको हमारे पास काम करते पन्द्रह-बीस वर्ष हो गये होंगे—कुछ-न-कुछ वह गुनगुनाता रहता है—न कोई श्रोता है, न कोई वक्ता है—न वह किसीको सुनाता है और न किसीका सुनता है, वह तो अपनी मौजमें गाता रहता है, खुश रहता है—देखो कैसा स्वावलम्बन है! काम करता रहता है और गुनगुनाता रहता है!

हमने सुना है महाराज कि बॉथरूममें लोग क्या-क्या गाते हैं। हमको तो मालूम नहीं है, पर कभी-कभी, किसी-किसीसे सुना है—

इस दिलके टुकड़े हजार हुए
कोई यहाँ गिरा कोई वहाँ गिरा।

और—*मैं क्या करूँ राम, मुझे बुद्धा मिल गया।*

ऐसे गाने आपलोग अकेलेमें गाते हैं। आप नहीं गाते हैं तो आपके भाई-बन्धु गाते हैं, बाल-बच्चे गाते हैं। तो आप यदि गुनगुनाते हों और कोई श्रोता-वक्ता न हो तो आप थोड़ा भगवान्‌के बारेमें गुनगुनाइये—**शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति।**

इन तीनोंके द्वारा भगवान्‌का स्मरण कीजिये और आप निश्चित जानिये कि आपको सुखी होनेके लिए बाहरकी किसी चीजकी जरूरत

नहीं होगी—आप अपने आपमें सुखको जगा लेंगे! हमको श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने कहा कि कमरा बन्द करके थोड़ा नाच लिया करो। अब थुलथुल शरीर—आप समझते ही होंगे—थुलथुल शरीरसे क्या नाचते होंगे? मैंने कहा—महाराज इससे क्या होगा? तो बोले कि इससे जो आनन्द तुम्हारे जीवनमें सोया हुआ है वह जग जायेगा। आनन्दको जीवनमें जगानेकी पद्धति प्रणाली ही यह है कि हम आनन्दको पकड़कर रखें। वह हमारे जीवनमें हर हालतमें बना रहे—'नन्दन्ति'। ऐसे लोगोंको क्या होता है कि जिस बातको सुनते हैं, जिसको गाते हैं, जिसको गुनगुनाते हैं, जिसकी याद करते हैं वह चीज उनकी आँखोंके सामने प्रकट हो जाती है। जो भीतर भरा हुआ है उसको बाहर लाकर देखनेके लिए, व्यवहारमें लानेके लिए, व्यवहारमें लगनेके लिए यह आवश्यक है कि हम उस वस्तुका श्रवण करें, गायन करें, गुनगुनाएँ, याद करें और उसीमें मजा लें।

तो—**'त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं'**—यदि गन्दा पानी किसी जगह भर गया हो तो क्या करते हैं कि रबड़की नली लगाकर दूसरा शुद्ध पानी उसके ऊपर गिराते हैं—तो पहले तो जो साफ पानी हम डालते हैं वह भी गन्दा होता जाता है, लेकिन बादमें वह गन्दा पानी बह जाता है और जगह शुद्ध हो जाती है और फिर शुद्ध पानी बहने लगता है। इसलिए अपने दिलमें जो गन्दी बातें सुन-सुनकर गन्दगी भर दी गयी है उसको धो डालनेके लिए, उसको बहा देनेके लिए अच्छी-अच्छी भगवत्-सम्बन्धी बातें दिलमें डालें तो पहलेवाली गन्दी बातें निकलती जायेंगी। हृदयको शुद्ध करनेके लिए इससे बड़ा और कोई साधन नहीं है। नारायण, धर्मकी बात सुननेसे कर्म शुद्ध होता है, भक्तिकी बात सुननेसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है और तत्त्वज्ञान होता है। इसलिए श्रवण बहुत आवश्यक है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(२१)

एक बात आपको यह सुनानी है कि यह जो पुराणोंमें एक सरीखी कथाएँ आती हैं—जैसी भागवतमें वैसी ही विष्णुपुराणमें—तो यह ऊपर-ऊपरसे सुननेवालोंको ऐसा लगता है। असलमें इसके भीतर प्रवेश करें और दोनोंकी कथाओंमें ध्यान दें तो जैसे ध्रुवके पूर्वजन्मकी कथा भागवतमें नहीं मिलेगी, विष्णुपुराणमें ही मिलेगी। इसी प्रकार भागवतमें और दूसरे पुराणोंकी सभी कथाओंमें थोड़ा-थोड़ा फर्क होता है। लोगोंको ऐसा मालूम पड़ता है कि एक सरीखी हैं। वह तो लोगोंको जितना याद है, उतना स्मरण हो आता है और जो नयी कथाएँ सुननेको मिलती हैं, वे भूल जाती हैं। इससे मालूम होता है कि ये पुरानी हैं।

अब भई, प्रह्लाद तो वही हैं हिरण्यकशिपुके पुत्र! परन्तु विष्णु-पुराणमें जो कथा है, वह बिलकुल दूसरे ढंगसे है। इसको आप ध्यान करके देखेंगे तो भागवतवाले ढंगसे यह बिलकुल विलक्षण है। कल आपको भागवतके अनुसार सुनाया कि जब हिरण्यकशिपुने प्रह्लादसे पूछा कि बेटा, गुरुजीने जो तुमको शिक्षा दी है, उसमें सबसे बढ़िया बात तुमको क्या लगी? इसके उत्तरमें भक्त प्रह्लादने नवधा-भक्तिका ही वर्णन कर दिया कि—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भागवत ७.५.२३

आज आपको विष्णु-पुराणके अनुसार प्रह्लादका उत्तर सुनाते हैं। प्रह्लादने कहा कि पिताजी! मैं अपनी पढ़ायीका सार-सार आपको सुनाता हूँ। आप भी एकाग्र मनसे सुनिये और मैं अपने मनकी बात कह रहा हूँ—

अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिक्षयमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्म्यन्तसन्तानं सर्वकारणकारणम्॥

वि. पु. १.१७.१५

मैं तो ईश्वरका शरणागत हो गया हूँ, जिसकी न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, जिसका न जन्म है, न वृद्धि है, न क्षय है, जो कभी अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता। स्वयं परमेश्वर, जो प्रलयके बाद भी रहता है, जो सर्वकारणकारणं है, उस परमेश्वरकी शरण मैंने ग्रहण कर ली है।

अब तो महाराज हिरण्यकशिपुकी आँख लाल-लाल हो गयी और हृदय क्रोधसे भर गया और ओंठ फड़कने लगे। उसने बालकको कुछ नहीं कहा। उसने पुरोहितको डाँटकर कहा कि हमारे बच्चेको ऐसी उलटी बात तुमने क्यों सिखा दी है? गुरुजीने कहा कि नहीं महाराज, मैंने आपके बच्चेको ऐसी बात नहीं सिखायी है। यह मेरा उपदेश आपसे नहीं बोल रहा है। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादसे कहा कि बेटा, जब गुरुजीने यह बात तुमको नहीं सिखायी है, तो किसने यह उल्टी बात तुमको सिखा दी?

प्रह्लादने कहा कि पिताजी, किसीको कोई सिखानेवाला नहीं होता।

शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।
तमृते परमात्मानं तात! कः केन शास्यते॥

वि. पु. १.१७.२०

सारी दुनियाको सिखानेवाले विष्णु-भगवान् हैं और वे सबके

हृदयमें बैठे रहते हैं। उन परमात्माको छोड़कर सिखानेवाला और कोई नहीं है! कौन किसको सिखाता है?

हिरण्यकशिपुने कहा कि अरे मूर्ख प्रह्लाद! जिस दुष्टका तू बारम्बार नाम ले रहा है, वह कौन है? जगत्का स्वामी तो मैं हूँ। मेरे सामने वह कौन होता है?

प्रह्लादजीने कहा कि शब्दके द्वारा उस परमेश्वरका वर्णन नहीं किया जाता है। उसीसे यह दुनिया बनी है और स्वयं दुनियाके रूपमें वह प्रकट हुआ है, उसीका नाम विष्णु है, वही परमेश्वर है।

हिरण्यकशिपु बोला, अरे मूर्ख प्रह्लाद! मेरे सिवाय और कोई परमेश्वर होता है? तुम मरना चाहते हो, इसलिए बारम्बार ऐसी बात कहते हो!

प्रह्लाद बोले कि पिताजी, सारी प्रजा, सारी सृष्टि—सिर्फ मैं नहीं सिर्फ तुम नहीं—सबका धाता, विधाता परमेश्वर एक विष्णु ही है, दूसर कोई नहीं है। आप हमारे ऊपर क्रोध मत कीजिये।

हिरण्यकशिपु सोचने लगा कि यह इसके कलेजेमें कौन घुर गया है कि ऐसी दुर्बुद्धि हो गयी?

यह जो संसारी लोग होते हैं न, वे ईश्वरके भजनको भी दुर्बुद्धि कहते हैं, ईश्वरके स्मरणको भी दुर्बुद्धि कहते हैं।

वह बोला कि अरे, ऐसी बुरी-बुरी बात बोल रहा है भगवान्‌ भजनकी। इसके मनमें कोई भूत-प्रेतका आवेश तो नहीं हो गया है

प्रह्लादने कहा कि पिताजी, केवल मेरे हृदयमें ही नहीं, वह त तीनों लोकके हृदयमें प्रवेश किये हुए हैं और वह हमको और तुमक सारी सृष्टिकी 'धियो यो नः प्रचोदयात्'—बुद्धिका प्रेरक है।

हिरण्यकशिपु प्रह्लादका उत्तर सुनकर तिलमिला गया। उस कहा कि इसको यहाँसे निकालो, हमारे सामनेसे हटाओ और जाकर गुरुजीकी पाठशालामें इसका शासन करो और इसको अच

शिक्षा दो, जिससे यह विष्णु भगवान्‌की स्तुतिमें जो लगा हुआ है वहाँसे इसका मन हट जाय।

अब दैत्य लोगोंने प्रह्लादको फिरसे पाठशालामें पहुँचा दिया और वहाँ प्रह्लाद गुरुजीकी ठीक-ठीक सेवा करें।

एक बात देखो कि हिरण्यकशिपु कितना बड़ा सम्राट् है। ये जय-विजय वैकुण्ठसे गिरे थे। वैकुण्ठसे गिरे हुए लोगोंको भी कितना ऐश्वर्य प्राप्त होता है—इसका यह नमूना है। जो वैकुण्ठमें रहता है, उसको कितना ऐश्वर्य प्राप्त होगा, इसका तो वर्णन ही क्या करें? लेकिन बहुत ऐश्वर्य, बहुत ऊँची कुर्सी मिल गयी, बहुत बड़ी हुकूमत मिल गयी, इससे मनुष्यका दिल ठीक नहीं हो जाता है। हृदयके निर्माणकी विद्या दूसरी है और ऊँची कुर्सी पाना, ऊँची पदवी पाना, बड़ी भारी हुकूमत होना—यह बात दूसरी है।

तो नारायण, प्रह्लाद पाठशालामें जाकर सब विद्यार्थियोंके समान रहने लग गये और जो शिक्षा दी जाये—धर्मकी, अर्थकी, कामकी—उसको ठीक-ठीक वे सीख लें। जब बहुत दिन बीत गया, तब हिरण्यकशिपुने फिर उन्हें अपने पास बुलाया और बोला कि प्रह्लाद, तुम्हारे मनमें जो बात अच्छी हो, उसको हमें सुनाओ!

प्रह्लादजी बोले—

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम्।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु॥

वि. पु. १.१७.३०

यह प्रकृति और पुरुष जिससे जीवित हैं और जिससे यह चराचर उत्पन्न हुआ है और जो जगत्‌का कारण है, वह विष्णु हमारे ऊपर प्रसन्न हो।

हिरण्यकशिपु सुनते ही बोला कि अरे, यह तो दुरात्मा है। प्रह्लादको हिरण्यकशिपु दुरात्मा नहीं मालूम पड़ता है। परन्तु

हिरण्यकशिपुको प्रह्लाद दुरात्मा मालूम पड़ता है। उसने कहा कि ऐसा बेटा है! घरमें न जाने क्या करेगा? यह तो अपने पक्षको नुकसान पहुँचानेवाला है। यह तो कुलांगार हो गया।

जब महाराजने अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि इसको मार डालो; तो अस्त्र-शस्त्र लेकर दैत्य लोग तैयार हो गये। अब प्रह्लादजीने कहा—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे॥

वि. पु. १.१७.३३

एक बात मैं सच-सच बोलता हूँ—तुम्हारे हथियारमें भी विष्णु भगवान् हैं, तुममें भी विष्णु भगवान् हैं, मुझमें भी विष्णु भगवान् हैं। यह बात सच्ची है और सोलहों आने सच्ची है। इसलिए, इस सत्यके प्रतापसे ये जो अस्त्र-शस्त्र हैं, ये मेरे ऊपर कोई चोट न पहुँचावें।

अब महाराज, दैत्योंके प्रहार करनेपर भी प्रह्लादको वेदना न हो। हिरण्यकशिपुने डाँटकर कहा कि मूर्ख, तुम दुश्मनोंका पक्ष ग्रहण मत करो और इतनी मूढ़ता मत करो। 'अभयं ते प्रयच्छामि'—मैं तुम्हें अभय-दान करता हूँ।

प्रह्लादजी बोले कि सम्पूर्ण भयोंको दूर करनेवाले अभय-दान करनेवाले तो परमात्मा हैं और वे जब हमारे मनमें बैठे हैं तो भय कहाँ है? जब परमात्माका स्मरण किया जाता है तो जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु आदिके सारे भय दूर हो जाते हैं।

हिरण्यकशिपुने बड़े-बड़े सर्पोंको आज्ञा दी,

भो भोः सर्पाः दुराचारमेनमत्यन्तदुर्मतिम्।
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैः सद्यो नयत सङ्क्षयम्॥

वि. पु. १.१७.३७

देखो, जो लोग भगवान्‌का भजन नहीं करते हैं, उनको

भक्तलोग दुराचारी, भगौड़े मालूम पड़ते हैं, आलसी मालूम पड़ते हैं। सब दोष उनको भक्तोंमें ही मालूम पड़ता है। हिरण्यकशिपुने कहा कि मार डालो इसको।

अब तक्षक, कुहक आदि बड़े-बड़े सर्प उसकी आज्ञासे प्रह्लादको डँसने लगे। प्रह्लादजीका जो मन है, वह तो श्रीकृष्णमें आसक्त था। उनको अपने शरीरका होश ही नहीं था, बल्कि भगवान्‌के स्मरणके आनन्दमें मग्न हो गये।

आप लोगोंके ध्यानमें यह बात होनी चाहिए कि संसारके जो सुख-दुःख हैं, ये शरीरमें नहीं होते, ये तो मनमें होते हैं। न तो वस्तुमें सुख-दुःख होता है। पहला भ्रम यह है कि चीजोंमें सुख-दुःख होता है। अमुक चीज मिलेगी तो हम सुखी और अमुक चीज नहीं मिलेगी तो दुःखी। दूसरा भ्रम होता है कि परिवारमें सुख-दुःख होता है। तीसरा भ्रम होता है कि शरीरमें सुख-दुःख होता है। यह सारा-का-सारा भ्रम है। असलमें सुख-दुःख जो है, वह मनमें है। इसीसे स्वप्नमें तो सुख-दुःख होता है, लेकिन सुषुप्तिमें सुख-दुःख नहीं होता है। सुख-दुःख बाहर है ही नहीं। अगर यह रहस्य आपकी समझमें आजाय तो क्या होगा? आप अपने मनको भगवान्‌में लगा दीजिये—न कहीं सुख, न कहीं दुःख। डॉक्टर लोग बेहोश कर देते हैं, शरीर काट देते हैं और किंचित् भी दुःख नहीं होता है। न सुख होता है, न दुःख होता है। सो यह सारा-का-सारा संसार जो है, यह मनका खेल है और मनको ठीक करनेके लिए भगवान्‌की भक्तिसे बढ़कर और दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्लादसुस्थितः।

वि. पु. १.१७.३९

भगवान्‌की स्मृतिके आनन्दमें ऐसे मग्न हो गये प्रह्लादजी कि उन्हें अपने शरीरका पता ही न चले। अब साँप लोग हिरण्यकशिपुसे

आकर बोले कि हमारी तो दाढ़ ही टूट गयी,हमारे मणि फूट गये, हमारे फणिमें आग लग गयी, हमारा दिल काँप रहा है। लेकिन, प्रह्लादकी त्वचामें जरा भी हम लोग जगह नहीं बना सके कि अपने विषको इनके शरीरमें प्रविष्ट करा दें। सो महाराज, हमारे लिए तो आप कोई दूसरी आज्ञा दीजिये! यह आज्ञा हमसे पूरी नहीं होती है। हिरण्यकशिपुने दिग्गजोंको बुलाया और बोले कि देखो, यह फूट गया लड़का। अब हमारे पक्षमें नहीं है, दुश्मनोंके पक्षमें मिल गया। सो तुम लोग इसके विनाशका उपाय करो। नारायण, अब पहाड़ोंके समान बड़े-बड़े हाथी जाकर उसको कुचलनेकी कोशिश करने लगे, दाँतोंसे मारनेकी कोशिश करने लगे। परन्तु–

स्मरतस्तस्य गोविन्दमिभदन्ताः सहस्रशः।
शीर्णा वक्षःस्थलं प्राप्य स प्राह पितरं ततः॥

वि. पु. १.१७.४३

प्रह्लाद तो भगवान्‌के स्मरणमें संलग्न हैं। हाथियोंके दाँत टूट गये। प्रह्लादजी बोले कि यह हमारा बल नहीं है कि हाथियोंके दाँत टूट गये।

महाविपत्तापविनाशनोऽयं जनार्दनानुस्मरणानुभावः॥

वि. पु. १.१७.४४

सम्पूर्ण विपत्ति और तापको नष्ट करनेवाला यह जनार्दन भगवान्‌का प्रभाव है कि हाथियोंके दाँतसे और उनके पाँवसे किसी प्रकारकी हानि प्रह्लादको नहीं पहुँची।

अब तो हिरण्यकशिपुने कहा कि आगमें इसको जला दो। तो काठकी बड़ी भारी राशि इकट्ठीकी गयी। अब उसमें आग लगायी गयी। लेकिन, आगसे तो प्रह्लाद जले नहीं।

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।

बोले, श्रीपिताजी, यह जो आपने आग लगवायी है, इससे मेरा शरीर नहीं जलता। क्योंकि, आगमें मैं ही भरपूर हूँ।

पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि॥

मैं देख रहा हूँ जैसे कमल बिछे हों इस आगमें और सारी दिशाएँ बिलकुल ठंडी हो गयी हों। आगमें तो गर्मी है ही नहीं।

अब पुरोहितोंने जो देखा कि हिरण्यकशिपुकी एक नहीं चलती है और वह उदास हो रहा है तो उन्होंने हिरण्यकशिपुकी बड़ी चापलूसी करनी शुरू की, बहुत तारीफ की और बोले कि यह तो अपना बालक है, छोटा-सा बच्चा है। इसके ऊपर आप क्रोध मत कीजिये! आपके क्रोधसे तो बड़े-बड़े देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। हमलोग आपके बालकको ले जाकर समझावेंगे-बुझावोंगे, जिससे यह आपका आज्ञाकारी हो जाय। बचपनमें मनुष्यके अन्दर बहुत सारे दोष रहते हैं, उनके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए।

न त्यक्ष्यति हरेः पक्षमस्माकं वचनाद्यदि।

यदि हमारे कहने पर भी यह विष्णु भगवान्‌का पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हमलोग पुरश्चरण करके कृत्या उत्पन्न करेंगे और कृत्या राक्षसी इसको नष्ट कर देगी।

अब हिरण्यकशिपुके किये तो कुछ होता था ही नहीं। पुरोहितकी बात मानकर प्रह्लादको फिर गुरुके घर भेज दिया और वहाँ ले जाकर पुरोहित बारम्बार उनको उपदेश करने लगे। एक दिन क्या हुआ कि प्रह्लादजीने सब बालकोंको बुलाया।

श्रूयतां परमार्थो मे दैतेया दितिजात्मजाः।

'अरे, ओ भाइयो! असुर-बालकों। मैं सच्ची बात कहता हूँ।' संस्कृतमें जिसको 'परमार्थ' बोलते हैं, उसको हिन्दीमें बोलेंगे 'सच्ची बात'। जो सच्ची चीज है, वह हम तुमको बता रहे हैं, असलियत बता रहे हैं। यही सबका परम स्वरूप है। इसको तुम लोग उलटा मत समझना। क्योंकि, मैं किसी लोभसे नहीं बता रहा हूँ। देखो, सभी मनुष्यको पहले जन्म मिलता है। फिर जन्मके बाद बाल्यावस्था होती

है, फिर जवानी आती है और फिर जवानीके बाद सबको बुढ़ापा आजाता है और बुढ़ापेके बाद मौत होती है। यह बात सबके शरीरके साथ है कि नहीं है? यह तो प्रत्यक्ष है और सबको दिखायी पड़ता है। सो नारायण, मरनेके बाद फिर जन्म भी होता है। यह बात तो सबको मालूम नहीं पड़ती है। क्योंकि देखो, 'नोपादनं विनोद्भवः'—यदि पूर्व-जन्म न होता तो यह जन्म होता ही नहीं। क्योंकि पहले जो चीज रहती है, उसीका जन्म होता है। बिना मैटरके कोई चीज पैदा नहीं होती। उपादानके बिना किसी चीजका जन्म होता ही नहीं। सो वेद-शास्त्रमें जो लिखा है सो तो लिखा ही है, युक्तिसे भी यह सिद्ध है। इस जन्ममें सुख-दुःख हमको क्यों मिलता है? बिना किसी कारणके ही मिलता है? नहीं, पूर्वजन्मके पाप-पुण्य इसमें कारण हैं। और, इस जन्ममें जो हम लोग पाप-पुण्य करते हैं, वे निष्फल चले जायेंगे? नहीं, निष्फल नहीं जायेंगे। इस जन्ममें नहीं, अगले जन्ममें उसका फल भोगना पड़ेगा।

आगमोऽयं तथा यद्य नोपादानं विनोद्भवः।

वि. पु. १.१७.५८

पुनर्जन्म सिद्ध करनेकी यही युक्ति है। यदि पूर्व-जन्ममें कोई कर्म किये बिना ही हमको यह जन्म हुआ है तो इसमें कभी सुख और कभी दुःख क्यों मिलता है? पूर्वजन्ममें जो पाप किये गये थे, उनका फल दुःख मिलता है और जो पुण्य किये थे, उनका फल सुख मिलता है और इस जन्ममें पाप-पुण्य करते हैं और उनका फल नहीं मिलता है तो अगले जन्ममें मिलेगा। कहो कि यह ईश्वर देता है। मुसलमान और ईसाई मजहबमें ऐसा मानते हैं कि यह ईश्वर ही देता है। ईश्वर देता है तो किसीको सुखी और किसीको दुःखी बनाता है तो कौन उसका रिश्तेदार लगता है कि उसका वह पक्षपात करे और कौन उसका दुश्मन है जिसको वह तकलीफ़ देवे? तो ईश्वरमें पक्षपात और

क्रूरता नामका दोष आ जायेगा। इसलिए, ईश्वर बिना कर्मके सहारे मनुष्यको सुखी-दुःखी नहीं बना सकता है। इसलिए, इस जन्ममें जो सुख-दुःख मिलता है, वह पूर्वजन्मके कर्मके अनुसार मिलता है और इस जन्ममें जो कर्म किये जाते हैं, वे यदि प्रबल होवें तब तो इसी जन्ममें अपना फल देते हैं और प्रबल न होवें तो अगले जन्ममें अपना फल देते हैं। इसलिए मनुष्यको अच्छे-अच्छे कर्म करने चाहिए।

गर्भवासादि यावत्तु पुनर्जन्मोपपादनम्।

वि. पु. १.१७.५९

गर्भवाससे लेकर मृत्यु होती है और मृत्युसे लेकर पुनर्जन्म होता है और इन सारी अवस्थाओंमें दुःख होता रहता है। जैसे रोज भूख लगती है, खा लेते हैं; रोज प्यास लगती है, पानी पी लेते हैं; ठंड लगती है तो कपड़ा पहन लेते हैं, आग ताप लेते हैं, इसी प्रकार गर्मी लगती है तो ठंडेमें चले जाते हैं; सो नारायण, यह बालकोंकी बुद्धिसे सुख-दुःखकी प्रवृत्ति और निवृत्ति नहीं होती है। जिनके शरीरमें जड़ता, आलस्य बहुत होता है, वह लोग कसरत, व्यायाम करते हैं कि इससे हम सुखी हो जायेंगे। शरीरको केवल हिलाना या डुलाना या कसरत करनेका नाम तो सुख नहीं है न? वे तो परिश्रम करते हैं और दुःखको ही सुख मानते हैं। मनुष्यके शरीरमें क्या है? कफ है, बात है, पित्त है। जो-जो चीज शरीरमें-से बाहर निकलती है, वही-वही चीज गंदी होती है। नाखून गंदा है, बाल टूटते हैं—वे गंदे हैं, पीब निकलती हैं, गंदा है, खून निकलता है, मल-मूत्र निकलता है। समस्त दुःख जो हैं, वे तो शरीरमें-से ही आते हैं। लोग कहते हैं कि बड़ा सुन्दर हैं। देखो न, यह माँस है, यह खून है, यह पीब है, विष्ठा है, मूत्र है, यह मज्जा है, यह हड्डी है। अब इस शरीरसे भी जब मनुष्य आसक्ति करता है और प्रीति करता है तो नरकमें भी इसको अच्छा लगेगा।

देखो, कभी किसीको आग सुख मालूम पड़ती है कि इससे ठंड

दूर होती है, तो कभी ठंड सुखरूप मालूम पड़ती है कि इससे गर्मी दूर होती है। प्यासेके लिए पानी अच्छा लगता है और जब प्यास न हो तो पानी बुरा लगता है और भूख लगी हो तो भात अच्छा लगता है। लेकिन जब भूख ही न हो तो भात किस कामका? और शरीरको बिगाड़ देगा। तो कभी एक तरहके लोग एक चीजको सुखदायक मानते हैं तो दूसरी तरहके लोग दूसरी चीजको सुखदायी मानते हैं। इसलिए, जितना-जितना परिग्रह संसारकी वस्तुओंका किया जाता है, जितना संग्रह किया जाता है, उतना ही संभालना पड़ता है, उतना ही बोझ पड़ता है। कमानेमें भी दुःख करना पड़ता है और उनको बचानेमें भी दुःख करना पड़ता है, उनके टूट-फूट जानेपर भी दुःख करना पड़ता है। अपने मनको प्यारे लगनेवाले जितने सम्बन्ध संसारमें जोड़े जाते हैं—

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान्।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥

वि. पु. १.१७.६६

आदमीके मनको पदार्थ जितना-जितना प्यारा लगता है, उतनी कीलें उसके मनमें गड़ती हैं। जो आज सुख देगा, वह कल दुःख जरूर देगा—यह बात बिलकुल पक्की है। घरमें भी सुख-दुःखकी सामग्री रहती है, मनमें भी सुख-दुःखकी सामग्री रहती है और मनमें ही असलमें सुख-दुःखकी सामग्री रहती है। देखो, इस जन्ममें भी दुःख है, मरनेमें भी दुःख है, गर्भमें आने-जानेमें भी दुःख है। गर्भमें क्या थोड़ा-सा भी सुख बच्चेको मिलता होगा? आप बताओ गर्भमें बच्चेको क्या सुख मिलता है? गर्भमें पड़ा बेचारा जेरसे बँधा हुआ—न पानी पीनेमें स्वतन्त्र, न खानेमें स्वतन्त्र, न शरीर हिलानेमें स्वतन्त्र—इस तरह जब गर्भमें ही दुःख पैदा हो जाता है। तो जहाँ मनुष्य फँसे वहीं उसको दुःख मालूम पड़ता है। सो नारायण—

तदेवमतिदुःखानामास्पदेऽत्र भवार्णवे।

वि. पु. १.१७.७०

इस संसार-सागरमें बड़ा भारी दुःख है। बिना भगवान्‌के भजनके, भगवद्-शरणागति ग्रहण किये बिना इस सागरको पार करनेका और कोई रास्ता नहीं है। संसार-सागरको पार करनेके लिए भगवान् ही एकमात्र नौका हैं।

प्रह्लादजी अपने साथियोंसे कहते हैं—

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

भागवत ७.६.१

आप यह मत समझो कि हम बालक हैं कि हम जवान हैं कि हम बुड्ढे हैं। यह बचपन, जवानी, बुढ़ापा—ये तो शरीरमें आते हैं, आत्मामें नहीं होते हैं। जबतक मनुष्य बालक होता है तो यह सोचता है कि जब हम जवान होंगे तब भगवान्‌का भजन करेंगे और जब जवान होता है तब सोचता है कि बुढ़ापेमें भगवान्‌का भजन करेंगे और इस तरह सारी जिन्दगी बीत जाती है। वह भगवान्‌का भजन नहीं करता। जब बुड्ढा होता है तब सोचता है कि अब तो हमसे बोला नहीं जाता, हमारी जुबान ही हिलाये नहीं हिलती है, हम भजन क्या करें? और फिर, पछताने लगता है कि मैंने जवानीमें यह बढ़िया काम नहीं किया। इस प्रकार आशा-दुराशासे मनुष्यका मन आक्षिप्त रहता है और प्यासा मर रहा है। ऐसा दुनियामें कौन है जो संसारके विषयोंके लिए प्यासा न हो? प्यासा भटक रहा है। यहाँ जानेसे तृप्ति मिलेगी, वहाँ जानेसे तृप्ति मिलेगी। भटक रहा है वह सारे संसारमें। परन्तु, परमेश्वरके सामने जाकर खड़ा नहीं होता है।

देखो, बालक रहता है तो खिलौनेसे खेलता है और जवान होता है तो विषय-भोग करने लगता है और बुढ़ापेमें असमर्थता आजाती

है। इसी प्रकार मूर्खोंका जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है केवल जड़ताकी सेवामें। इसलिए, विवेकी पुरुषको चाहिए कि बाल्यावस्थासे ही अपने कल्याणका प्रयास करे। अपनेको बच्चा, जवान या बुड्ढा न समझे। अपनेको जीवात्मा समझकर भगवान्‌में अपनेको जोड़े। सो मैंने आप लोगोंको यह बताया है, इसको आप सत्य समझिये। इसमें झूठ नहीं है। इसलिए, भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए, जो कि बन्धनसे मुक्ति देनेवाला है, उसका आप स्मरण कीजिये। भगवान्‌के स्मरणमें कोई कष्ट नहीं है, कोई क्लेश नहीं है, कोई श्रम नहीं है। वह तो हृदयमें ही बैठा हुआ है और वही अपना कल्याण देता है। भगवान्‌का स्मरण करनेसे पापका नाश हो जाता है। पाप-वृत्तिका ही नाश हो जाता है। जितनी देर भगवान्‌का स्मरण होगा उतनी देर काम, क्रोध, लोभ, मोहकी वृत्ति कहाँ रहेगी? और, इस प्रकार हृदयको निर्भार रहनेका अभ्यास हो जाता है। सो, सब प्राणियोंके हृदयमें वही बैठा है। सबसे मैत्री कीजिये। रात-दिन उसीके साथ प्रणय कीजिये, प्रेम कीजिये। आपका सारा दुःख दूर हो जायेगा।

इस दुनियामें दुःख-ही-दुःख भरा हुआ है। यहाँ जो बेवकूफ हैं, जो नासमझ हैं, जो संसारमें लगे हुए हैं—उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए। द्वेष करनेसे बड़ी भारी हानि होती है। एक दूसरेसे द्वेष करके मनुष्य उसीका चिन्तन करने लगते हैं और स्वयं चिन्तनीय हो जाते हैं। जिसको चाहते हैं कि यह गाँवमें न रहे, उसको लाकर दिलमें बसा लेते हैं। सो नारायण, जो परमेश्वरके सिवाय दूसरेको देख रहे हैं उनकी यह दशा प्रह्लादने बतायी।

वस्तुतः यह सारा जगत् परमेश्वरका विस्तार है। तुम्हारा शरीर और तुम जैसे परमेश्वरसे प्रकट हुए हो, उसी प्रकार सारी सृष्टि और सबकी आत्मा परमेश्वरके स्वरूपसे प्रकट हुई है। इसलिए, दैत्य-भाव छोड़ दो। किसीको सताओ मत। हम, तुम सब एक ही हैं। आओ, हम

मिलकर ऐसा प्रयास करें कि हमको इसी जीवनमें परमानन्दकी प्राप्ति हो।

परमात्मा एक ऐसी वस्तु है, जो आगसे जलती नहीं, सूर्यसे तपती नहीं, चन्द्रमासे ठंडी पड़ती नहीं, वायुसे उड़ती नहीं, जिसको बादल भिगोते नहीं। सिद्ध, राक्षस् जिसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। यक्ष, दैत्य, सर्प, किन्नर, मनुष्य, पशु अशवा शरीरके दोष, बुखार, अतिसार, द्वेष, ईर्ष्यासे जिसका कुछ नहीं बिगड़ता है—ऐसा जो एक परमात्मा है, नित्य निर्मल चितिस्वरूप, उसका स्मरण करनेसे उसकी प्राप्ति होती है।

असारसंसारविवर्त्तनेषु, मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि।
सर्वत्र दैत्यस्समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य॥

वि.पु. १.१७.९०

यह संसार असार है, इसमें संतोष मत करो। संसारके सुखमें अपने बड़प्पनका आरोप मत करो। मैं जोर देकर यह बात कहता हूँ कि मेरे प्यारे भाइयों, सबमें समताको देखो। यह जो समताकी दृष्टि है, यही भगवान्‌की आराधना है—**'समत्वमाराधनमच्युतस्य'**। जब परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न होता है, निर्मल, सबके हृदयमें जब समरूपसे प्रकट हो जाता है तो धर्म, अर्थ, काममें क्या रखा है? वह तो छोटी चीज है। जो परब्रह्म परमात्माका आश्रय लेता है, उसको महान फलकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार प्रह्लादजीने अपने साथियोंको समझाया।

अब आगेकी कथा आपको कल सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(२२)

पाठशालामें प्रह्लादजीने अपने साथियोंको समझाया कि संसारके जितने खेल-मेल हैं, सब असार हैं। दुनियाकी वस्तु मिलनेसे संतोष करनेका कोई कारण नहीं है। संसारमें चाहे कोई भी परिस्थिति हो, उसमें अपने मनको सम रखना चाहिए।

'सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत'।

सब अवस्थाओंमें अपने मनमें समता रखनी चाहिए। आचरणमें सदाचार हो और उद्देश्य सर्वात्मा प्रभुकी प्रसन्नता हो और भगवान्‌का स्मरण बना रहे और दुनियामें चाहे जो कुछ हो जाय—वह सब समान ही है, बराबर ही है और आत्मा तो परमात्माका स्वरूप ही है, यह निश्चय है—बस और कुछ करनेकी ज़रूरत नहीं है। जो कुछ हो रहा है, सब ठीक है।

'समत्वमाराधनमुच्यतस्य'।

'समता ही भगवान्‌की आराधना है'—यह विष्णु पुराणका सुभाषित है। रोगमें आरोगमें, जन्ममें मरणमें, दूरीमें निकटतामें, अपनेमें परायेमें, भूखमें भोजनमें जो समता है, यह समता ही परमेश्वरकी आराधना है। धनीमें गरीबमें, मूर्खमें विद्वान्‌में समता हो! जिसको विद्वान् मानते हैं न, सारी विद्या एक हथौड़ेको नहीं सह सकती। बड़े-बड़े विद्वान् दुनियामें होते हैं, अगर उनके सिरपर एक हथौड़ा जोरसे लगा दिया जाय तो सारी विद्याका लोप हो जायेगा। तो दुनियामें जिन चीजोंको बहुत मूल्यवान समझते हैं, उनका बहुत मूल्य नहीं है। मूल्यवान तो एक सत्य है, एक परमार्थ है।

तो 'सर्वत्र दैत्याः' बुद्धिमें सत्यका निश्चय हो, चित्तमें सबके प्रति समता हो, और मनमें भगवान्‌के प्रति प्रेम हो, सद्‌भाव हो, आचरणमें

पवित्रता हो और मनुष्यका जीवन पूर्ण हो जायेगा! बस, इतना-ही चाहिए और कुछ विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते।

(वि.पु. १.१७.९१)

यदि अपने हृदयके भीतर बैठा हुआ परमेश्वर प्रसन्न है, उसके साथ कोई कपट नहीं जुड़ा हुआ है तो, दुनियामें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। धर्म, अर्थ, काम—ये सब तो बहुत छोटी वस्तु हैं। ब्रह्मरूप कल्पतरुका आश्रय लो! यह अनन्त है। इससे महाफलकी प्राप्ति होगी।

श्रीमद्भागवतमें वर्णन है कि जब इस प्रकार प्रह्लादने उपदेश किया तब सब दैत्य-बालक चकित हो गये। उन्होंने पूछा कि भाई प्रह्लाद, तुम हमारे साथ ही रहते हो, पढ़ते हो। फिर यह ज्ञान तुमको कहाँसे प्राप्त हो गया?

इसके उत्तरमें प्रह्लादने यह कथा सुनायी कि जब हिरण्याक्ष मर गया और मेरे पिता हिरण्यकशिपु तपस्या करने चले गये, तब देवता लोगोंने अवसर देखकर असुरोंपर चढ़ायी कर दी। असुर लोग भाग खड़े हुए। देवताओंने मेरी माता कयाधुको बन्दिनी बना लिया, जबकि मैं उसके गर्भमें था और वे उसे अपने लोक ले जाने लगे। मार्गमें नारदजी मिल गये। उन्होंने मेरी माताको देवताओंके बन्धनसे छुड़ा लिया और वह उसे अपने आश्रममें ले गये। वहाँ उन्होंने मेरी माताको इच्छा-प्रसूतिका वरदान दिया, भागवत-धर्मका श्रवण कराया और यह कहा कि जब तक तुम्हारे पति तपस्या करके नहीं लौटते, तबतक तुम यहीं रहो! उनका भागवत-धर्म सम्बन्धी उपदेश मेरी माताको तो विस्मृत हो गया, लेकिन मुझे गर्भमें श्रवण करने पर भी याद है।

अब तो यह सुनकर सब-के-सब दैत्य बालक पहलेसे भी अधिक प्रभावित हो गये। भागवतमें प्रह्लादजी असुर-बालकोंको अपना अन्तिम निर्णय सुनाते हैं कि, **'प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्'**।

भगवान् केवल निर्मल भक्तिसे प्रसन्न होते हैं और सब साधन तो विडम्बना है। इसलिए भाइयो, '**ततौ हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः**'– भगवान्‌की भक्ति करो। भक्तिका स्वरूप क्या है? तो बोले कि,

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥

सब जगह परमात्माका दर्शन हो, भक्तिका स्वरूप यही है!

प्रह्लादने यह उपदेश अपने साथियोंको किया और सब उनके पक्षमें हो गये। अब तो हिरण्यकशिपुने लगा रखा था गुप्तचर कि देखो प्रह्लाद पाठशालामें क्या करते हैं! उन्होंने जाकर हिरण्यकशिपुसे सारा वृत्तान्त कहा। देखो यह कोई कम दुःखकी बात है कि अपने बेटेको जहर देना पड़े। उसने रसोइएको बुलाया और रसोइयेंको कहा कि देखो, हमारा बेटा खुद तो बिगड़ गया और दूसरोंको भी बिगाड़ रहा है। सारे राज्यमें आन्दोलन हो जायेगा। दैत्यलोग उसके साथ मिल जायेंगे। सो इस दुष्टको जल्दी-से-जल्दी मार डालो। हम ऐसे राजा घरानाओंको जानते हैं जिनके घरमें राजाको जहर दिया गया, स्त्रीने पतिको जहर दिया, बापने बेटेको जहर दिया, बेटेने बापको जहर दिया। अपने गुरुजीके साथ बचपनमें एक राजाके घर गया था। तो वे जब खाते थे तो पहले डॉक्टर जाँचकर लेता था कि उनके भोजनमें कहीं जहर तो नहीं है और डॉक्टर पर भी विश्वास नहीं था भला! डॉक्टर पहले जाँच कर लेता तब उसीमें-से डॉक्टरको भी परोसा जाता और राजा साहब को भी। दोनों एक साथ बैठकर खाते। यह है संसारकी स्थिति! बापने बेटेको जहर देनेका हुक्म दे दिया–

हलाहलं विषं तस्य सर्वभक्षेषु दीयताम्।
अविज्ञातमसौ पापो हन्यतां मा विचार्यताम्॥

वि.पु. १.१८.३

हिरण्यकशिपुने कहा कि उसके सारे भोजनमें हलाहल विष

मिला दो और उसको मालूम न पड़े। इसमें कुछ सोच-विचार मत करो! अब महाराज रसोइयोंने तो वैसा ही किया।

यह पैसा लेकर जीविका बिताना भी बड़ा भारी दुःख है। आदमीको गुलाम हो जाना पड़ता है, बुरा काम करना पड़ता है। उन्होंने जहर दे दिया। लेकिन प्रह्लादने भगवान्‌के नामका उच्चारण किया, हे अच्युत! हे अनन्त! हे गोविन्द! भगवान्‌के नामका उच्चारण किया और अन्नके साथ भगवन्नामका अभिमन्त्रण करके विषको भी पचा लिया।

हमको गुरुजीने एक मंत्र बताया था। जगह-जगह खाना पड़ता है न, तो पहले यह मंत्र बोलकर खाया करो। उससे क्या होगा? भोजनमें जो दोष होगा, उससे उसकी शुद्धि हो जायगी। पानी अशुद्ध होगा तो शुद्ध हो जायगा, भोजन अशुद्ध होगा तो शुद्ध हो जायेगा। पहले मंत्र बोलकर तब खाया करो! मनमें जो ग्लानि होती है न कि यह भोजन अशुद्ध है, उस ग्लानिकी निवृत्तिका एक आश्वासन मिल जाता है और भगवान्‌के नामोच्चारणमें तो बड़ी भारी शक्ति है।

मिट गया विषका असर! प्रह्लाद तो ज्यों-का-त्यों स्वस्थ। भगवान्‌के अनन्त, अच्युत नामोच्चारणसे उनका विष पच गया। अब तो रसोइया लोग बहुत डरे। मालिकके पास गये। नमस्कार करके बोलेकि हे दैत्यराज, हमने बड़ा भयंकर विष दिया था, सो प्रह्लादने तो वह भोजन भी पचा लिया और विष भी पचा लिया।

यह महाराज दुष्ट आदमीका गुरु, पुरोहित होना भी बहुत मुश्किल है। वे कहते हैं कि पुरोहितजी, हमारी ओरसे अदालतमें चलकर झूठी गवाही दो! नहीं तो हमारी-तुम्हारी यारी कुट्टी! ऐसे दुष्टोंकी पुरोहिती बहुत दुःख देती है। दुष्ट-सम्बन्ध ही बहुत दुःखदायी है। अब हिरण्यकशिपु बोला, 'हे दैत्यपुरोहितो!' 'हाँ, महाराज'! 'जल्दी कोशिश करो! इस लड़केको मारनेके लिए कृत्या—एक प्रकारकी राक्षसी पैदा

करो!' हमलोगोंके गाँवमें पहले नानीकी कहानी सुनाते थे न, तो उसमें डायन आया करती थी।

अब तो महाराज पुरोहित लोग प्रह्लादके पास गये और पहले उनको समझने लगे। प्रह्लाद तो हाथ जोड़कर खड़े थे। प्रह्लादका यह स्वभाव था कि कड़वा किसीको नहीं बोलते थे। हिरण्यकशिपुके पाँव छूते थे, प्रेमसे बोलते थे।

हमको एक बात याद है, हमको दण्डी स्वामियोंने कह दिया था कि जो दण्डी स्वामी हो उसीको प्रणाम करना, अन्यको नहीं। तो उड़िया-बाबाजी महाराजसे जब पूछा तो बोले, 'नहीं!' अपने अन्दर सद्‌गुण होना चाहिए। विनय धारण करना अपना काम है। चाहे कोई दण्डी हो, अदण्डी हो, पशु हो, पक्षी हो, स्त्री हो, पुरुष हो—उसको देखकर अपना हाथ जुड़ जाय। अपने अन्दर सद्‌गुण होना चाहिए—यह देखना चाहिए! वह ऊँच है कि नीच है—यह देखनेकी क्या जरूरत है? विचार करते समय सामने वाला कैसा है, यह विचार करना बहुत गहरा नहीं है। उसके साथ व्यवहार करते समय मैं कैसा हो जाता हूँ, यह विचार करना गहरा है। अर्न्तमानसमें अपनेको देखना चाहिए कि हम क्या कर रहे हैं!

तो पुरोहितोंने समझाया कि तुम जिस वंशमें पैदा हुए हो, वह त्रिलोकीमें विख्यात है। तुम्हारे पिता हिरण्यकशिपु दैत्यराज हैं और तुमको विष्णु भगवान्‌से कुछ लेनेकी जरूरत नहीं है। तुम इतने बड़े वंशमें पैदा होकर, इतने बड़े बापके बेटे होकर दूसरेकी शरण लेते हो? राम, राम, राम, राम! जैसे तुम्हारे पिता हैं, वैसी पदवी तुमको प्राप्त होगी। इसलिए दुश्मनोंके साथ मिलना ठीक नहीं है और पिता सबसे बड़ा होता है, उसकी हमेशा सराहना करनी चाहिए, उसका पक्ष लेना चाहिए!

देखो, उचित-अनुचितका विवेक होना आवश्यक है! उम्र देखना जरूरी नहीं है। हम जो कर रहे हैं सो उचित है कि नहीं—यह देखना आवश्यक है।

अनौचित्याद्रिते नास्ति रसभंगस्य कारणं।

जब हम अनुचित करते हैं, तब हमारे हृदयमें जो आनन्दधारा प्रवाहित होती है, वह बन्द हो जाती है।

प्रह्लादने कहा कि ठीक है महाराज, हमारा वंश बड़ा पवित्र है! मरीचिके वंशमें हमलोग पैदा हुए हैं, आपकी बात बिलकुल सही है और हमारे पिता इस जगत्‌में सबसे अधिक प्रभावशाली हैं, यह भी ठीक है, आप सच कहते हैं। इसमें झूठ नहीं है। आपका यह कहना भी सच है कि पिता परमगुरु है! देखो, तीन गुरु होते हैं—एक शरीरको देनेवाला पिता होता है, माता होती है। तो ये आधिभौतिक-गुरु होते हैं। और, जो ज्ञान देते हैं, वे आध्यात्मिक-गुरु होते हैं और जो ईश्वरकी साक्षात् अनुभूति करा देते हैं, वे अधिदैविक-गुरु होते हैं और जो इन तीन भेदोंको मिटाकर आत्मा और ब्रह्मकी एकता करा देते हैं, वे गुरु दूसरे होते हैं। शरीर देनेवाला गुरु दूसरा, विद्या देनेवाला गुरु दूसरा, देवता देनेवाला गुरु दूसरा और परमार्थ,परमेश्वरका,आत्मा-ब्रह्मकी एकताका साक्षात्कार करा देनेवाला गुरु दूसरा!

तो पिता गुरु हैं, आपने बिलकुल ठीक कहा। वह पूजनीय हैं। फिर प्रह्लादने कहा कि आपकी यह सब बात ठीक होने पर भी मैं कोई अपराध कर रहा हूँ—यह बात मेरे मनमें नहीं आती। आप कहते हैं कि ईश्वरको लेकर, अनन्तको लेकर, ब्रह्मको लेकर क्या करना है? आप हमारे गुरु होकर, पुरोहित होकर ऐसी बात कहते हैं?

'को ब्रवीति यथान्याय्यं किंतु नैतद्वचोऽर्थवत्'।

वि.पु. १.१८.१८

नारायण, ऐसी बात कौन कहेगा? यह बात बिलकुल निरर्थक है। बाप है तो क्या? पढ़ानेवाला है तो क्या? जो कहता है कि परमेश्वरको मत मानो, उसकी बात मानने योग्य नहीं है। इतना कहकर प्रह्लादजी चुप हो गये। फिर हँसने लगे! अरे, तुमलोगोंने कहा कि ईश्वरसे क्या

लेना-देना है? ठीक है जी, ईश्वरसे क्या लेना-देना है! गुरुजी, आप बिलकुल ठीक कहते हैं। ईश्वरसे क्या लेना-देना है, आप सुनो! आप दुःखी मत होना! ईश्वरसे धर्म लेना हो धर्म लो, अर्थ लेना हो अर्थ लो, काम लेना हो काम लो और मोक्ष लेना हो तो मोक्ष लो! अर्थ बाहरकी वस्तुओंको बोलते हैं। जैसे यह मकान है, रुपया है, हीरा-मोती है, पेड़-पौधा है, बगीचा है—यह अर्थ है। यह तो बाहर रहता है। जब शरीर छूटता है तो ये सब छूट जाते हैं। और, धर्म रहता है कर्ममें। वह स्वर्गमें, नरकमें मरनेके बाद भी साथ जाता है। बाहर रहता है धन और चरित्रमें रहता है धर्म। देखो आप, इसको कैसे सुधारोगे! मनमें रहता है काम। वह अर्थके लिए बेईमानी करवा देता है और धर्मको छुड़वा देता है! तो इन दोनों पर काबू रखनेके लिए बुद्धिमें धर्म होना चाहिए। शरीरमें शरीरके समान ही बाहर अर्थ है, धन है और मनमें कामनाएँ हैं, वासनाएँ हैं। तो अर्थ-पुरुषार्थ बाहर रहता है और काम-पुरुषार्थ मनमें रहता है, धर्म-पुरुषार्थ बुद्धिमें रहता है। **'विज्ञानं यज्ञं तनुते'**।

तैत्तिरीय-उपनिषद्में वर्णन है। विज्ञानमयकोशमें धर्मका निवास है। प्रेमका निवास मनोमयकोशमें है। यह छोटी चीज है। धर्म बड़ी चीज है। यह मोहब्बत, मोहब्बत, मोहब्बत करते हैं न! यह बहुत छोटी चीज है। और, मोक्षका निवास आत्मामें है। आपको क्या चाहिए? धन चाहिए कि धर्म चाहिए , भोग चाहिए कि मोक्ष चाहिए? बोले कि ये चारों पुरुषार्थ भगवान्‌का सहारा लेनेसे मिलते हैं। मरीचि, दक्ष आदि महापुरुषोंने भगवान्‌का सहारा लेकर धर्म प्राप्त किया। ध्रुवने भगवान्‌का सहारा लेकर अर्थ प्राप्त किया। पृथु आदिने भगवान्‌का सहारा लेकर काम प्राप्त किया और ईश्वरके स्वरूपको जानकर ज्ञान, ध्यान, समाधिके द्वारा लोगोंने मुक्ति प्राप्त की।

कुछ लोग मुक्तिको तो ऐसा समझते हैं कि पूछो मत! देखो, आप धन इकट्ठा करके सुखी होते हो? तो अर्थी हो। और, आप भोगकरके

सुखी होते हो तो कामी हो। और आप उत्तम-कर्म करके सुखी होते हो तो धर्मात्मा हो और आप त्यागसे सुखी होते हो तो मोक्ष-पुरुषार्थी हो। त्यागमें सुख है—यह भाव जिसके जीवनमें आता है, उसको मोक्ष-सुखकी प्राप्ति होती है। नारायण, ईश्वरकी आराधनासे सम्पदा मिलती है, ऐश्वर्य मिलता है, माहात्म्य मिलता है, ज्ञान मिलता है, कर्म मिलता है, मुक्ति मिलती है। इसलिए, जिससे सब कुछ मिलता है उससे क्या प्रयोजन है—गुरुजी आप ऐसा बोलते हैं? आपके मुँहसे यह बात शोभा देती है? आप हमारे गुरु हैं, पुरोहित हैं। लेकिन आपसे मैं बड़-बड़ बात नहीं करता! हमारा विवेक, हमारी बुद्धि अभी छोटी है। आप चाहे अच्छा कहें, चाहे बुरा कहें, मैं बहुत नहीं बोलता! लेकिन, जगत्पति जो परमेश्वर हैं वही सृष्टिके बनानेवाले हैं, वही बिगाड़नेवाले हैं, वही सहारा करनेवाले हैं और वे हमारे हृदयमें स्थित हैं।

स भोक्ता भोग्यमप्येवं स एव जगदीश्वरः।
भवद्भिरेतत्क्षन्तव्यं बाल्यादुक्तं तु यन्मया॥

वि.पु. १.१८.२८

आप एक बात पर ध्यान दें कि गुरुजीकी बातका विरोधकर रहे हैं प्रह्लाद और उनपर आक्षेप भी कर रहे हैं। लेकिन, कितने विनयसे कर रहे हैं, उसपर तो ध्यान दो! विरोधमें भी, आक्षेपमें भी वाणीमें कहीं कठोरता नहीं है। बड़ा विनय है। किसीको दुःख पहुँचानेवाली वाणी नहीं बाण है। कभी किसीको दुःख पहुँचानेवाली वाणी अपने मुखसे निकलनी ही नहीं चाहिए! दूसरेके प्रति हम दुर्भाव रखते हैं तो हमारा हृदय दुर्भावसे ग्रस्त हो जाता है, हमारे दिलमें बुराई आती है और यह द्वेष ऐसा है, कभी-न-कभी भभक उठता है।

कितना विनय है प्रह्लादमें! वे कहते हैं कि ईश्वर ही संसार है, ईश्वर ही जीव है, ईश्वर ही ईश्वर है। मैंने बचपनके कारण जो कुछ आपके सामने कहा है, यह हमारी बाल्यावस्थाकी बात है, आप क्षमा कीजिए!

पुरोहितोंने कहा कि हे बालक! जब तुमको आगसे जलाया जा रहा था तब हमने तुम्हारी रक्षा की थी और हम समझते थे कि तुम फिर ऐसी बात नहीं कहोगे! सो यदि हमारे समझाने पर भी तुम मोह नहीं छोड़ोगे तो हम तुम्हारे नाशके लिए कृत्या उत्पन्न करेंगे। 'कृत्या' माने जैसे पुरश्चरण होता है वैसे अपने दुश्मनको मारनेके लिए लोग अनुष्ठान करवाते हैं, उससे कृत्या पैदा होती है।

प्रह्लादजीने कहा, 'सुनो गुरुजी! कोई किसीको मारता नहीं है और कोई किसीकी रक्षा करता नहीं है। अपना आत्मा जब अच्छा काम करता है तब अपनी रक्षा करता है और जब बुरा काम करता है तब अपना नाश करता है।

कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः कः केन रक्ष्यते।
हन्ति रक्षति चैवात्मा ह्यसत्साधु समाचरन्॥

(वि.पु. १ १८.३१)

जब आप चोरी करते हो, व्यभिचार करते हो, बेईमानी करते हो, हिंसा करते हो, तब आप दूसरेका बुरा करते हो? न-न, अपना बुरा करते हो! 'असत्साधु समाचरन्'—जब बुरा करते हो तब दूसरेका नहीं अपना बुरा करते हो और जब अच्छा करते हो तो दूसरेका नहीं अपना ही अच्छा करते हो! दूसरा कोई रक्षा करने वाला नहीं है और दूसरा कोई मारनेवाला नहीं है।

कर्मणा जायते सर्वं कर्मैव गतिसाधनम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधुकर्म समाचरेत्॥

(वि.पु. १.१८.३२)

कर्मसे ही सबकी उत्पत्ति होती है और कर्मसे ही आदमी आगे बढ़ता है। इसलिए, ऊपर उठनेके लिए, आगे बढ़नेके लिए, कुछ बनानेके लिए मनुष्यको उत्तमकर्म करना चाहिए। उत्तम-कर्मसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

जब प्रह्लादजीने ऐसा कहा तो गुरुजी लोगोंको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कृत्या राक्षसी उत्पन्न की और उसमें आगकी लपटें उठ रहीं थीं। बडी भयंकर! पाँवसे धरतीको धमकाती हुई, हाथमें त्रिशूल लिये हुए! उसने आकर प्रह्लादकी छाती पर एक त्रिशूल मारा। सो महाराज, प्रह्लादकी छाती पर लगते ही वह टूक-टूक हो गया। त्रिशूल धरती पर गिरा और सैकड़ों टुकड़े उसके हो गये।

जगाम खण्डितं भूमौ तत्रापि शतधा गतम्॥

(वि. पु. १.१८.३५)

यत्रानपायी भगवान् हृद्यस्ते हरिरीश्वरः।
भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा॥

(वि. पु. १.१८.३६)

जिसके हृदयमें अनपायी भगवान्, अविनाशी भगवान्का नित्य-निरन्तर स्मरण होता रहता है, उसकी छाती पर वज्र भी मारा जाय तो वह टूट जाता है। त्रिशूलमें तो रखा ही क्या है? सो पुरोहितोंने राजाका पक्ष लेकर ऐसा दुष्ट-कर्म किया।

स दीनी राजसेवकः।

धनी आदमीका जो पुरोहित होता है, उसमें दीनता आ जाती है। वह गुरुकी जगह पर रहता ही नहीं। उसको तो धनी लोग अपने इशारे पर नचाने लगते हैं। वह हुकुम माननेवाला नौकर हो जाता है। पुरोहितोंको मालूम था कि वह काम बुरा है। लेकिन राजाकी आज्ञा मानकर उन्होंने ऐसा काम किया। प्रह्लाद एकदम निष्पाप थे। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया था। अपराध दूसरा कोई नहीं करता! दूसरेको अपराधी देखनेवाला मन ही अपराधी है। असलमें इसका लक्षण ही यही किया है, 'सधर्मम् बेद जाजले'। महाभारतमें जाजलिका प्रसंग है—उसमें यह बात बतायी कि जो किसीके प्रति पापी होनेकी भावना नहीं करता है, माने किसी दूसरेको जो पापी नहीं समझता है वह

धर्मके रहस्यको जानता है। धर्मका रहस्य यह है कि दूसरेमें पाप नहीं होता, अपना मन पापाकार होकर दूसरेको पापी देखता है। दूसरेमें बुराई देखनेवाला मन ही पापी है।

तो प्रह्लाद किसीमें बुराई देखते ही नहीं थे। पाप-रहित थे, निष्पाप! पुरोहितोंका मन पापी हो गया और उन्होंने यह कृत्या उनके ऊपर चलायी। सो कृत्या प्रह्लादजी के पाससे लौटकर आयी और उसने पुरोहितोंको ही मार दिया और स्वयं भी वह मर गयी। पुरश्चरणकी यह रीति है, हम तो बच्चे थे, लेकिन ऐसा सुना-देखा करते थे। उसमें यह शर्त होती थी कि यदि जिसके ऊपर कृत्या चलायी गयी वह ब्राह्मणका भक्त हुआ, भगवान्‌का भक्त हुआ तो कृत्या उसपर नहीं लगती थी, करनेवालेको लौटकर लग जाती थी, उसको ही मार डालती थी। जो दूसरेका बुरा चाहता है, उसीका बुरा होता है। बुराई दिलको पकड़ती है, बुराई विषयको नहीं पकड़ती। बुराई जिसपर फेंकी जाय, उसको नहीं पकड़ती है, जो फेंकता है उसके दिलको बुराई पकड़ती है।

अब तो महाराज पुरोहित लोगोंका शरीर आगमें जलने लगा। व्याकुल बेचारे। त्राहि, त्राहि, त्राहि! यह देखकर प्रह्लाद भगवान्‌का नाम लेकर पुरोहितोंकी ओर दौड़े, कि कहीं ये हमारे पुरोहित मर न जायें। यह है भक्तका हृदय! प्रह्लादजी प्रार्थना करने लगे, 'हे कृष्ण, बचाओ! हे अनन्त, बचाओ'!! ऐसे बोलते हुए पुरोहितोंकी तरफ दौड़े।

इसका हमको बहुत बचपनसे संस्कार है। अपनी माँको हमने सारा विष्णु-पुराण सुनाया था। हमको यह प्रसंग बहुत प्यारा लगता था। प्रह्लादजी बोले, 'हे सर्वव्यापी! हे सर्वजगद्‌गुरु! हे जगत्स्रष्टा! हे जनार्दन! इन ब्राह्मणोंकी रक्षा करो! ये दुःसह मंत्रकी आग इनको जलाये जा रही है।

देखो, अपने मारने वालेको बचानेके लिए भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं! यह सत्य है कि सबके शरीरमें एक ही सर्वव्यापी जगद्‌गुरु

भरपूर हैं। विष्णु, अगर यह बात सच्ची है, तो यह पुरोहित जिन्दा हो जायें। मैं जानता हूँ कि सबके भीतर भगवान् हैं। अविनाशी भगवान् हैं, यह बात मैं मानता हूँ और ऐसा चिन्तन करता हूँ कि जो लोग मुझसे दुश्मनी करते हैं, उनमें भी भगवान् हैं। तो यदि मैं यह चिन्तन करता हूँ तो हमारे ये गुरुजी लोग जिन्दा हो जायें।

ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनैः।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥

(वि. पु. १.१८.४२-४३)

सौगन्ध दिलायी प्रह्लादने! जो लोग मुझे मारनेके लिए आये, जिन्होंने मुझे विष दिलाया और दिया, जिन्होंने मुझे आगमें जलाया, जिन्होंने हाथियोंसे कुचलवाया और जिन्होंने साँपोंसे डँसवाया—यदि उनके प्रति भी मेरे हृदयमें, उनके प्रति भी कभी पापके विचार न आये हों, मेरी समता बनी रही हो, तो इस सत्यके प्रभावसे हमारे ये मरे हुए पुरोहित जिन्दा हो जायँ!

आप देखो न! है न यह विश्वके साहित्यमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य। बेजोड़ प्रसंग है! हमारे हृदयमें समता हो, हमारा हृदय निष्पाप हो तो ये जीवित हो जायँ। दुश्मनी करनेवालोंके प्रति भी यदि मेरे हृदयमें मित्रभाव रहा हो, समता रही हो, कभी पापकी भावना न आयी हो तो इस सचाईके बल पर हमारे ये पुरोहित जिन्दा हो जायँ! यह है प्रह्लादका हृदय! आप भक्तके हृदयको देखिए!

अब तो पुरोहित लोग जिन्दा हो गये, स्वस्थ हो गये और प्रह्लादके सामने हाथ जोड़कर बोले,

दीर्घायुरप्रतिहतं बलवीर्यसमन्वितः।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यै - युक्तो वत्स भवोत्तमः॥ (१.१८.४५)

आशीर्वाद देने लगे—'प्रह्लाद तुम्हारी आयु लम्बी हो! तो दुश्मन तुमको नीचा न दिखा सके! तुम्हारा बल, वीर्य हमेशा बना रहे। पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्यसे हमेशा युक्त रहो और उत्तम पुरुष बनो!'

अब फिर ये पुरोहित हिरण्यकशिपुके पास गये और जो कुछ हुआ था, सब उसको निवेदन कर दिया। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको पुनः अपने पास बुलाया। विष्णु-पुराणमें प्रह्लादकी कथा थोड़ा फैलाकर है और भागवतमें थोड़ा संक्षेपसे है। विष्णु-पुराणमें नृसिंह भगवान्‌की स्तुति जो प्रह्लादजीने की है, वह भागवतमें नहीं है।

तो नारायण, हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बुलाकर पूछा, 'बेटा, तुम्हारा जो इतना प्रभाव है, इसका क्या कारण है? तुमने किसी मंत्रका जप किया है कि किसी देवताकी आराधना की है कि तुम्हें जन्मसे ही यह प्रभाव प्राप्त है—यह है क्या? जन्मसे, मंत्रसे, समाधिसे, औषधियोंसे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कोई जन्मसे ही सिद्ध होते हैं, जैसे चिड़िया उड़ती है, कहीं योगाभ्यास थोड़े न करना पड़ता है चिड़ियाको। कोई औषधि खाकर सिद्ध होते हैं, कोई मंत्र जपसे सिद्ध होते हैं, कोई तपस्या करके सिद्ध होते हैं, कोई समाधि लगाकर सिद्ध होते हैं। तो यह सिद्धि तुमको कहाँसे मिली?'

तो प्रह्लादने हिरण्यकशिपुके पाँव छुए। तनकर नहीं बैठ गये। प्रह्लादने कहा,

न मन्त्रादिकृतं तात न वा नैसर्गिको मम।
प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥

(वि. पु. १.१९.४)

'मंत्रसे यह हमको नहीं मिली है पिताजी और जन्मसे भी मेरे अन्दर नहीं था। यह तो जिसके-जिसके हृदयमें भगवान् रहते हैं, उसका यह सामान्य प्रभाव है। जो अपने हृदयमें परमेश्वरको बैठाकर रखेगा, उसका यह सामान्य प्रभाव है।' थोड़ी देरके लिए विश्राम प्राप्त कर लेना

और फिर पनालेमें बह रहे हैं। थोड़ी देर तक किनारे पर बैठ गये। और बोले कि आ-हा, मरनेसे बच गये। और फिर उसीमें जाना, फिर उसीमें बहना! यह सब झूठी बात है। थोड़ी देरके लिए सुख लेकर, थोड़ी देरके लिए विश्राम लेकर, थोड़ी देर शान्ति लेकर यह जीवनमें जो शाश्वत दुःखकी धारा बह रही है, यह नहीं मिटायी जा सकती। इसके लिए शाश्वत आधार चाहिए। इसके लिए परमेश्वरका आधार चाहिए!

देखो, आदमी अपनी गलतीका चिन्तन नहीं करता है, अपना दोष उसको दिखायी नहीं पड़ता! ठीक इसी तरहसे जिसको दूसरोंका दोष नहीं दीखता है, '**अन्येषां यो न पापानि चिन्तयति**'—जो दूसरेके पापका चिन्तन नहीं करता है, उसके हृदयमें पाप आता ही नहीं है। असलमें पाप भीतरसे नहीं निकलता, पाप बाहरसे आता है। जब हम दूसरेका पाप देखने लगते हैं, तब हमारे हृदयमें पाप आ जाता है। आखिर कोई निमित्त तो होना चाहिये न! अच्छाई आनेका भी निमित्त होता है! और बुराई आनेका भी निमित्त होता है। दूसरेकी अच्छाई देखोगे तो तुम्हारे हृदयमें अच्छाईका चिन्तन होगा, अच्छाई आवेगी और दूसरेकी बुराईका चिन्तन करोगे तो तुम्हारे हृदयमें बुराई आनेका निमित्त बन जायेगा। एक बात और! यदि तुम दूसरेके हृदयमें ईश्वरको देखोगे तो तुम्हारे हृदयमें ईश्वर प्रकट हो जायेगा। यही इसकी माया है। कोई निमित्त अपने हृदयमें बुराई आनेका है ही नहीं।

अच्छा, ईश्वर अपने हृदयमें आवे, इसका क्या निमित्त है? क्या उपाय करें कि अपने हृदयमें ईश्वर आ जाय? ईश्वरके बारेमें सुनिये आप, कानके रास्तेसे ईश्वर आ जायेगा। जो लोग कथा-वार्ताके विरोधी हैं, वे इसकी महिमाको नहीं जानते हैं। हमारे हृदयमें ईश्वरको जगानेवाला, ईश्वर परसे पर्दोंको हटाने वाला यही कथा-चरित्र है।

कर्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः।
तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्यचाशुभम्॥

(वि. पु. १.१९.६)

जो कर्मसे, मनसे, वाणीसे दूसरेको सताता है, उस सतानेका बीज बन जाता है और उसका जन्म होता है और उसको बड़ा दुःख भोगना पड़ता है।

सो प्रह्लादजीने हिरण्यकशिपुसे कहा कि पिताजी, न मैं पाप चाहता हूँ, न पाप करता हूँ, न पाप बोलता हूँ! मैं देखता हूँ कि सबके हृदयमें आत्मा-परमात्मा है और जब मेरे मनमें हर जगह शुभ-ही-शुभ है।

स देवो यदेव कुरुते तदेव मङ्गलाय।

भगवान् जो करते हैं, उसमें मंगल ही है। तो चाहे कोई दूसरा दुःख देनेकी कोशिश करे, चाहे मनमें दुःखकी कल्पना हो, चाहे शरीरमें दुःखका निमित्त आवे, जब हम अपने मनको ही बिलकुल ठीक रखते हैं, तब हमको दुःख कैसे होगा?

एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम्॥ (१.१९.९)

सबसे प्रेम करो और अविचल प्रेम करो! यह नहीं कि आज किया, कल नहीं किया, अब किया, तब नहीं किया; यहाँ किया, वहाँ नहीं किया। अव्यभिचारी प्रेम करो सबसे! नारायण, सबके रूपमें परमेश्वर-ही-परमेश्वर है यह समझ लो!

एक महात्मा बैठकर भजन कर रहे थे, एक साँप घूमता हुआ आया। तो उन्होंने कहा, 'अरे, भगवान्‌से बिछुड़े बहुत दिन हो गया था, आज उन्होंने अपना दूत भेजा है बुलानेके लिए! यह साँप नहीं है, यह भगवान्‌का दूत है! अपने धाममें बुलानेके लिए आया है। अपना हृदय ऐसा होना चाहिए कि सब जगह भगवान् और भगवान्‌का हाथ दिखे!'

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(२३)

जब प्रह्लादपर ब्राह्मणोंकी कृत्याका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि कृत्या ब्राह्मणों पर ही पलट पड़ी और प्रह्लादजीने अपने चित्तकी समताकी सौगन्ध देकर उनको जीवित कर दिया। यह समाचार हिरण्यकशिपुको मिला। उसने प्रह्लादसे पूछा, बेटा, यह प्रभाव तुमको कहाँसे प्राप्त हुआ है?

एतन्मन्त्रादि जानितमुताहो सहजं तव।

क्या तुम कोई मंत्र जपते हो, कोई पूजा-पाठ करते हो? यह प्रभाव तुम्हारे अन्दर कैसे है? अथवा सहज स्वभाव ही तुम्हारा ऐसा है। सहज ही है! या जन्मके साथ ही तुम्हारे अन्दर यह प्रभाव आया है?

तो प्रह्लादने कहा कि पिताजी, यह प्रभाव मंत्र जपने या पूजा करनेसे हमारे अन्दर नहीं आया है और न तो हमारे अन्दर जन्मसे ही है। जिस-जिसके हृदयमें भगवान्‌की स्मृति है, भगवान्‌का निवास है, उसके अन्दर स्वाभाविक रूपसे ही यह प्रभाव रहता है।

हमने एक महात्माको देखा था। एक गाँवका किसान उनके ऊपर नाराज हुआ और दोनों हाथसे उसने लाठी चलायी मारनेके लिए। तो वह तो हँसते रहे और उसका हाथ उठा-का-उठा ही रह गया। लाठी ज्यों-की-त्यों, हाथ ज्यों-का-त्यों उठा हुआ। फिर बादमें मैंने महात्माजी से पूछा कि यह क्या हुआ? तो वे बोले कि मैंने तो कुछ नहीं किया। न मैंने मंत्र जपा, न देवताकी याद की। यह हुआ क्या? हुआ यह कि ईश्वर जो हैं, वह अपने भक्तोंकी रक्षामें निरन्तर सावधान रहता है। तो यह जीवकी लीला नहीं है, यह जीवकी चेष्टा नहीं है। यह ईश्वरकी क्रिया है। आजकल तो लोगोंके ऊपर ऐसा प्रभाव छा गया है कि वह ईश्वरको मानते ही नहीं हैं।

एक दिनकी बात आपको सुनाता हूँ, मैं दिल्लीमें था और भारतवर्षके बहुत बड़े लेखक, दार्शनिक मेरे पास मिलने आये थे। वे जिस सम्प्रदाय, परम्पराके हैं, उसमें ईश्वरको नहीं माना जाता। मुझसे बैठकर वे बताने लगे, अपने जीवनकी बात बतायी कि मैं तो स्वामीजी ईश्वरवादी हो गया। ईश्वरको मानने लगा। 'कैसे मानने लगे'? बोले कि एक दिन किसी कारणसे हमारे दिलमें बड़ी बेचैनी हुई नींद न आवें! तो उठकर लॉनमें घूमने लग गया, चक्कर लगाने लग गया। बड़ी बेचैनी! उसी समय मेरे मनमें एक प्रश्न उठा कि जब ईश्वर है नहीं और मैं जीव हूँ तो दुःख चाहता नहीं-यह बेचैनी मेरे दिलमें कहाँसे आ गयी? यह कौन दे रहा है? जैसे मनुष्य दुःख नहीं चाहता और दुःख उसके जीवनमें आता है। तो यह दुःख देनेवाला कौन है? यदि दुःख देने वाला कोई दूसरा न होता तो हम स्वयं तो दुःखी होते नहीं। यह जबरदस्ती हमारे सिर पर दुःख कौन थोप रहा है और बोले कि जब यह प्रश्न मेरे दिलमें उठा, मेरे चारों ओर एक प्रकाश हो गया। आप इस बातको समझ सकते हैं। और मुझे ऐसा लगा कि जो इस समय मुझे दुःख देता है वही सुख भी देता है। सुख-दुःख देनेवाला मुझे दुःख देता है वही सुख भी देता है। सुख-दुःख देनेवाला परमेश्वर है और वह हमसे ज्यादा शक्तिशाली है। हम दुःख नहीं चाहते और वह हमको दुःख देता है।

तो जो लोग ईश्वरको नहीं मानते हैं, वे तो निराधार हैं। उनको तो किसीका सहारा ही नहीं है। उनका कोई मददगार नहीं है। वे तो अभिमानमें फूले-फूले फिरते हैं। ईश्वरको न मानना-मूर्खता पूर्ण अभिमानके लक्षण हैं। चोरी करेंगे, बेईमानी करेंगे, झूठ बोलेंगे और सोचेंगे कि ईमानदारीसे काम नहीं बनेगा, बेईमानीसे बनेगा। पग-पगपर ठोकर खाते हैं, जीवनमें दुःख आता रहता है। 'सौ-सौ धक्के खायें, तमाशा घुसकर देखें'! पिटते रहते हैं, पिटते रहते हैं संसारमें।

ईश्वरको माने बिना जगत्‌की व्यवस्थाकी कोई संगति ही नहीं लग सकती। तो,

प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि।

जिस-जिसके हृदयमें परमेश्वरका स्मरण रहता है, उसका यह सामान्य प्रभाव है! आपको मालूम है कि अपने प्यारेके हाथका तमाचा भी प्यारा लगता है और दुश्मनका हाथ जोड़ना भी प्यारा नहीं लगता। आप अपने हृदयको परमेश्वरकी भावनासे भर दीजिए। जैसे शराबका नशा होता है, वैसे यह ज्यादा पढ़ने-लिखनेका भी नशा होता है, ज्यादा रुपये-पैसेका भी नशा होता है और नशेमें चूर आदमीकी नजर ईश्वर पर नहीं जाती है। इसलिए, जीवनको सहज व्यतीत करना चाहिए।

तो इधर जो बात बतायी गयी है, वह आप ध्यानमें रखो।

अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा।
तस्य पापागमस्तात हेत्वभावन्न विद्यते॥

(वि. पु. १.१९.५)

जो दूसरेको पापी नहीं समझता, उसके दिलमें भी पाप नहीं आते। जो दूसरेको पापी समझता है, दूसरेके पापका चिन्तन करता है उसीके दिलमें पाप आता है।

हमने संतोंसे एक कहानी सुनी थी—एक चन्दनकी लकड़ीका व्यापारी था। तो जब उसकी दूकानके सामनेसे किसी राजाकी सवारी निकलती तो राजाके मनमें आता कि इस व्यापारीको पकड़कर फाँसी पर चढ़ा दें! और व्यापारीके मनमें क्या आता? राजाने एक दिन बुलाया और बोला कि भई, हम तुम्हारी दूकानके सामनेसे जब निकलते हैं तब हमारे मनमें आता है कि तुमको फाँसीके तख्ते पर चढ़ा दें! तो ऐसा क्यों होता है? तुमको देखकर मेरे मनमें ऐसी बुरी बात क्यों आती है? तो व्यापारीने कहा कि सरकार, जब आप हमारी दूकानके सामनेसे निकलते हैं तो मेरे मनमें आता है कि राजा कब

मरेगा? जब यह मरेगा तो हमारे चन्दनकी सब लकड़ी बिक जायेगी, इसको जलानेमें हमको बड़ा फायदा होगा। तो यह जो दूसरेका नुकसान सोचता है न, दूसरेको हानि पहुँचानेकी बात सोचता है, उसकी ही हानि होती है—यह नियम है।

तो नारायण, प्रह्लादजी कहते हैं कि जो दूसरेको दुःख पहुँचानेकी सोचता है उसके मनमें दुःखका बीज पैदा हो जाता है और उसीसे उसको बादमें दुःख मिलता है। प्रह्लादने अपने प्रभावका कारण बताया—

सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा।
चिन्तयन्सर्वभूतस्थमात्मन्यपि च केशवम्॥

(वि. पु. १.१९.७)

'न मैं किसीकी बुराई चाहता हूँ, न बुरा करता हूँ और न किसीका बुरा बोलता हूँ। मैं हमेशा यह चिन्तन करता हूँ कि सबके हृदयमें परमेश्वर है और मेरे हृदयमें भी परमेश्वर है।'

यह बचपनेकी बात जो होती है, वह बहुत तकलीफ देती है। तकलीफका कारण यही होता है। महाभारतमें जब यह प्रश्न उठा कि धर्मका रहस्य कौन जानता है? तो वहाँ बताया गया—

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकं।
कर्मषा मनसा वाचा स धर्मम् वेद जाजले॥

संसारके किसी भी प्राणीको मनुष्य पापी नहीं समझता। सबके हृदयमें परमेश्वर है। किसी भी दृष्टिसे देखें—सब ब्रह्म है तो पापी नहीं, सब माया है तो पापी नहीं, सब ईश्वर है तो पापी नहीं, सब प्रकृति है तो पापी नहीं, सब पंचभूत है तो पापी नहीं, सब पराधीन जीवात्मा है तो पापी नहीं। यह पापी तो अपने ही राग-द्वेषके कारण बन जाता है।

एक राजा साहबके सामने तलवार आयी। वे देखने लग गये

कि इसकी धार कैसी है, तो उनका अंगूठा ही कट गया। जब कट गया अंगूठा तो मंत्री महोदयके मुखसे निकला कि 'जो हुआ सो अच्छा हुआ।' राजाको बड़ा क्रोध आया कि हमारा तो अंगूठा कट गया और यह पट्ठा बोलता है कि अच्छा हुआ। इसको जेलमें डालो। तो तुरन्त उसको जेलमें भेज दिया। छः–बारह महीनेमें अंगूठा अच्छा हो गया। वे कहीं घूमने-फिरनेके लिए गये और वहाँ उनको डाकुओंने पकड़ लिया कि राजाका बलिदान करेंगे, इससे बड़ा फायदा होता है। जब उनको स्नान कराकर, वस्त्राभूषण पहनाकर देवीके सामने ले गये, तब बलिदान करनेवाले पुरोहितने कहा कि इस पशुका तो अंगूठा ही नहीं है, अंग-भंग है, यह देवताको चढ़ाने लायक नहीं है। जो सर्वांगपूर्ण होता है, उसकी बलि होती है। बच गये। राजाको ख्याल आया कि मंत्रीने उस दिन कहा था कि 'जो हुआ, सो अच्छा हुआ।' लौट कर घरमें आये, जेलखाने गये, मंत्रीको छुड़ाया और उससे बोले कि तुमने बिलकुल ठीक कहा था कि मेरा अंगूठा कट गया तो अच्छा हुआ! अंगूठा तो कट गया, सिर बच गया। बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ। लेकिन अब तुम यह बताओ कि तुम जो जेलमें डाले गये, सो कैसे अच्छा हुआ? तो मंत्रीने कहा कि महाराज, हम जेलमें न होते तो हम भी आपके साथ जाते और आपका सिर तो बच जाता और हमारा कट जाता। देखो, ईश्वरने एकको जेलमें डालकर उसका अच्छा किया और एकका अंगूठा काटकर उसका अच्छा किया। ईश्वर जो कुछ करता है, उसमें अच्छा ही है। एक आदमीने ऐसे प्रसंगमें आकर हमको अच्छा किया था, जिसमें हमको बहुत दुःख हुआ था और उसके मुँहसे निकला कि ईश्वरने बहुत अच्छा किया महाराज! तो बादमें उसने हमको समझा दिया कि इतनी बड़ी दुर्घटना घटित हुई और उसमें क्या अच्छाई है! हमलोग पूरी तरहसे बातको नहीं समझ

सकते, इसलिए जैसे बच्चे थोड़ी-थोड़ी बातमें रोने लगते हैं, ऐसे हमलोग रोने लगते हैं! ईश्वरकी सृष्टिका रहस्य, उसकी लीलाका रहस्य समझते ही नहीं।

स देवो यदेव कुरुते तदेव मङ्गलाय।

वह परमेश्वर जो करता है उसमें हमारा मंगल है। जिस दिन भूखे रखता है, उस दिन भी मंगल है। जिस दिन चोट लग जाती है, उस दिन भी मंगल है। जिस दिन कोई मरता है उस दिन भी मंगल है। जिस दिन कोई बिछुड़ता है उस दिन भी मंगल है। जिस दिन हमारे मनके खिलाफ होता है उस दिन भी मंगल है।

एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम्॥

(वि. पु. १.१९.९)

सबके प्रति भक्ति करो। सबकी सेवा करो। सबसे प्रेम करो। सब पर विश्वास करो। जब हम किसीकी बुराई सोचते हैं, खुद बुरे हो जाते हैं। आपको क्या सुनावें! संस्कृतमें एक कहावत हैं—

'पापी सर्वत्र पापं आशंकते'।

पापीका यह स्वभाव है कि वह सबके ऊपर शंका करता है। यह शंकालु होना कि यह धोखेबाज है, यह बेईमान है—यह जो बारम्बार मनमें बात आती है, यह अपने ही मनकी खराबी है। सबमें भगवान् बैठे हैं। 'सर्वभूतमयं हरिम्' सबमें परमात्माको समझ कर समझदार पुरुषको भक्ति करनी चाहिए।

अब तो महाराज, हिरण्यकशिपु और क्रोधसे अंधा हो गया और दैत्योंको बुलाया। यह स्वभाव ही ऐसा होता है किसी-किसीका कि उसको अच्छी बात कहो तो और चिढ़ता है कि अच्छा हमको उपदेश करने चले हो! आप बढ़िया बात कहकर देख लो। कोई-कोई सुननेवाले ऐसे निकलेंगे, कहेंगे कि अच्छा, छोटे मुँह

बड़ी बात! हमको उपदेश करने चले हो! अब तो वह अन्धा हो गया।

'दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्प्रासादाच्छतयोजनात्'।

हिरण्यकशिपुको प्रह्लाद दुरात्मा मालूम पड़ते थे। उसने कहा कि सौ योजन ऊँचे इस महलके शिखरसे तुम इसको नीचे गिरा दो। पहाड़ पर इसको पटक दो और वहाँ चट्टानोंसे लगकर इसके अंग-अंग टूट-फूट जाये।

अब दैत्योंने ऐसे ही किया। लेकिन प्रह्लादके हृदयमें तो भगवान्। गिरते समय भी उनके हृदयमें भगवान् ही थे।

'पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे'।

पृथिवी देवीने देखा कि भक्तके हृदयमें बैठकर स्वयं भगवान् ही गिर रहे हैं, यह तो अपने मनको भगवान्में लगाकर, भक्तियुक्त करके बैठा हुआ है, सो धरती देवीने स्वयं आकर प्रह्लादको गोदमें ले लिया। एकदम स्वस्थ प्रह्लाद! उनको तनिक भी चोट नहीं लगी। अब तो हिरण्यकशिपुने शम्बरासुरको बलाया। वह बड़ा मायावी था। हिरण्यकशिपुने उससे कहा कि इसपर माया करो! छलसे, कपटसे, जैसे भी हो उसको मार डालो। शम्बरासुरने कहा कि देखिये महाराज मेरी मायाका बल! हम हजारों माया जानते हैं और हम प्रह्लादको मार डालेंगे। अब मायापति तो भगवान् हैं। उनके भक्त पर कैसे माया चलेगी?

अब शम्बरासुरने प्रह्लाद पर माया करना शुरू किया। समदर्शीके प्रति माया करना दुर्बुद्धि होनेका लक्षण है। माया भक्तपर नहीं की जाती, माया महात्मा पर नहीं की जाती।

मायापति सेवक सन माया?

मायापतिके सेवकसे कोई माया करेगा? तो

करे तो उलटि परे खगराया।

यदि कोई महात्माके साथ माया करता है तो वह माया करनेवाले पर उलटकर चली जाती है, करनेवालेका नुकसान होता है।

प्रह्लादका मन तो बिलकुल एकाग्र था और शम्बरासुरके प्रति भी उनके मनमें कोई मद-मत्सर नहीं था। प्रह्लादजीने भगवान्‌का स्मरण किया। अब भगवान्‌ने प्रह्लादकी रक्षाके लिए अपना चक्र भेज दिया। **'ज्वालामालि सुदर्शनम्'**। अब शम्बरासुरने जो हजारों प्रकारकी **माया** की, उसको उस चक्रने नष्ट कर दिया, बालककी रक्षाकी, **सब** मायाओंको निकालकर फेंक दिया। ऐसा वायु शम्बरासुरने छोड़ा था कि प्रह्लादका शरीर सूख जाय! परन्तु, कुछ नहीं। प्रह्लाद ठंडेपनसे भी नहीं मरा, गर्मीसे भी नहीं मरा। क्योंकि, प्रह्लादके हृदयमें स्वयं भगवान् थे। यह नहीं कि संकट आने पर उन्होंने भगवान्‌को बुलाया था! देखो, संकट आने पर हम चाहें कि मन भगवान्‌में लगावें! तो उस समय मन भगवान्‌में नहीं लगता। उस समय तो थोड़ा संकट दिखायी पड़ेगा और थोड़ा भगवान् दिखायी पड़ेंगे!

असलमें सेसारके सारे संकट जब मालूम पड़ते हैं, तभी होते हैं। 'यावत् प्रतीयेत तावत्'—जितनी देर तक संकट मालूम पड़ता है, उतनी देर तक ही संकट रहता है।

हमको एक बचपनकी याद है। हम बच्चे ही थे, धोती पहनते थे। कहीं ऐसी जगह चले गये जो बड़ी कटीली थी अब जब लौटकर आये तो हमको देखकर सब घरके लोग इकट्ठे हो गये और बोले कि यह क्या हुआ, क्या हुआ? मैंने पूछा कि क्या बात है? तो बोले कि तुम्हारे सब कपड़े—यह कुर्ता, यह धोती—खूनसे लथ-पथ हैं, क्या हुआ? अरे, मैंने तब देखा कि यह तो खून बह रहा है। अबजब उन लोगोंने बताया तो झट उसमें दर्द होने लगा। जब कांटा लगा था, तब दर्द नहीं हुआ। उसके बाद आधा घंटा घर पहुँचनेमें लगा होगा और उस आधे घंटेमें भी दर्द नहीं हुआ। दर्द कब हुआ? जब लोगोंने बताया कि यह देखो,

यह कांटा लग गया है। यह सब महाराज जैसे सपनेकी चीज जब मालूम पड़ती है तब होती है, जब होती है तब मालूम पड़ती है, वहाँ होना और मालूम पड़ना अलग नहीं है, इसी प्रकार यह संसारके दुःख हैं! दुःख नामकी कोई चीज हो—काली, पीली! आप बताइए, दुःख कैसा होता है? नीला होता है कि काला होता है? दुःखमें क्या रंग है? अच्छा, उसकी लंबाई-चौड़ाई कितनी है? एक फुटका है कि एक मीटरका है? दुःखमें कितना वजन होता है? न दुःखमें उम्र है, न दुःखमें स्थान है न दुःखमें वजन है। दुःख तो एक मनका मालूम पड़ना है। वही एक आदमीको बड़ा भारी मालूम पड़ता है तो एक आदमीको छोटा मालूम पड़ता है। यह तो बिलकुल स्वप्नका खेल है।

सो नारायण, भगवान् प्रह्लादके हृदयमें बैठ गये और शम्बरासुरकी सारी मायाको पी गये और उसकी माया क्षीण हो गयी। अब शम्बरासुर डरकर उनको छोड़कर चला गया। और प्रह्लादजी पुनः गुरुजीके पास पाठशालामें आगये। रोज-रोज उनको नीतिशास्त्र पढ़ाया जाने लगा। नीति-शास्त्र भेदपर अवलम्बित है और अध्यात्म-शास्त्र अभेद पर अवलम्बित है। नीति-शास्त्रमें यह होता है कि किसके ऊपर चढ़ायी करनी चाहिए, किससे सन्धि करनी चाहिए, किसको कुछ दे-लेकर तय करना चाहिए। साम, दाम, दण्ड, भेद—ये तो राजनीतिका शास्त्र ही है। उसमें पराया मानकर सारा काम किया जाता है और अध्यात्मशास्त्र एकताका शास्त्र है। यह दुनियादारीसे बिलकुल उलटा है। इसमें एक भगवान् है, एक ब्रह्म है, एक आत्मा है, एक तत्त्व है, एक परमार्थ है। एकताके आधार पर अध्यात्म-विद्या होती है और भेदके आधार पर नीति-विद्या होती है। अब तो प्रह्लादको नीति-शास्त्र पढ़ाया जाने लगा। शुक्र-नीतिका उपदेश होने लगा।

जब गुरुजीने देखा कि प्रह्लादको सब समझमें आता है, नीति-

शास्त्रको वे ठीक-ठीक समझ गये, तो ले जाकर हिरण्यकशिपुके पास पहुँचाया और बोले कि महाराज, आपके पुत्र नीति-शास्त्रमें पारंगत हो गये हैं। हमने सब पढ़ा-लिखाकर बिलकुल पक्का किया है। हिरण्यकशिपुने कहा कि प्रह्लाद बेटा, तुम सबकुछ पढ़-लिखकर आये हो, यह बताओ कि मित्रके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए और शत्रुसे कैसा बर्ताव करना चाहिए, मध्यस्थके प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिए? मंत्री, उपमंत्री और बाहरके जो लोग हैं, उनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, भीतरी लोगोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए और दूतके साथ कैसा बरतना चाहिए? जिनके ऊपर शंका हो, उनकी परीक्षा कैसे करना चाहिए? जिनके ऊपर विश्वास हो, उनकी परीक्षा कैसे करना चाहिए? क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्त्तव्य है? इस प्रकारसे और भी कई बातें हिरण्यकशिपुने पूछीं।

'तथा मे कथ्यतां ज्ञातुं तवेच्छामि मनोगतम्'।

मैं तुम्हारे दिलकी बात जानना चाहता हूँ, इसलिए जो प्रश्न करता हूँ, सो बोलो!

अब तो महाराज **'प्रश्रयभूषणः'**—प्रह्लाद जेवर नहीं पहनते थे। विनय ही उनका भूषण था। वे विनयका जेवर पहनते थे। उन्होंने झट हिरण्यकशिपुके चरणोंका स्पर्श किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये और कहने लगे—

ममोपदिष्टं सकलं गुरुणा नात्र संशयः।
गृहीतञ्च मया किन्तु न सदेतन्मतम्मम॥
साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथापरौ।
उपायाः कथिताः सर्वे मित्रादीनां च साधने॥

(वि.पु. १.१९.३४-३५)

प्रह्लादने कहा, 'पिताजी, हमारे गुरुदेवने हमको सब सिखाया और बिलकुल ठीक-ठीक सिखाया। उनके सिखानेमें कोई गलती नहीं

है। और, मैंने सब पढ़ लिया। परन्तु, उन्होंने जो हमको सिखाया, वह हमको सत्य नहीं लगता। वह झूठ लगता है, अन्याय लगता है। किसीके साथ समझाने-बुझानेका काम, किसीके साथ कुछ लेने-देनेका काम, किसीमें फूट डालनेका काम, किसीमें दण्ड देनेका काम—ये सब मित्र-शत्रुके प्रति करनेके लिए उपाय हैं। परन्तु, मैं जब देखता हूँ तो, **'तानेवाहं न पश्यामि मित्रादींस्तात मा क्रुधः'**—हमको तो कोई शत्रु-मित्र मालूम ही नहीं पड़ता! पिताजी आप क्रोध मत करो।

'साध्याभावे महाबाहो साधनैः किं प्रयोजनम्'।

जब हमको किसी मित्रसे मैत्री नहीं करनी है, जब हमको किसी शत्रुसे शत्रुता नहीं करनी है, तब हम उनके साथ व्यवहार करके क्या करेंगे? हम पहचानते हैं,

'सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये'।

जगन्नाथ जो प्रभु हैं, वे सर्वरूप हैं, सर्वभूतात्मक हैं। वही परमात्मा, वही गोविन्द हैं। नारायण, उनमें कोई शत्रु-मित्र कहाँसे होता है?

प्रह्लादजीने कहा—

'त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्रचास्ति सः'।

तुममें भगवान् हैं, मुझमें भगवान् हैं, दूसरी जगह भी भगवान् हैं। इसलिए, शत्रु और मित्र—ये अलग-अलग नहीं होते हैं। सो पिताजी, इन सब बातोंको बढ़ाकर कहनेमें क्या फायदा है? 'अलं'—बस-बस, ज्यादा बढ़ा-चढ़ा कर कहनेकी कोई जरूरत नहीं है। ये सब विद्याके, नासमझीके अन्तर्गत हैं। उसमें प्रयत्न करनेमें कोई लाभ नहीं है! अज्ञानके कारण जब यह नहीं समझते हैं कि सब परमात्माका स्वरूप है, तब यह संसार सच्चा मालूम पड़ने लगता है, उसमें विद्या-बुद्धि होती है, भ्रम होता है। सो नारायण, क्या बच्चा जब जुगनूको उड़ते देखता है, वह उसको आग मान बैठता है, क्यों आग मान बैठता है?

उसको लगता है कि यह अन्धकारमें दीयेकी लौ यहाँ-से-वहाँ हो रही है। परन्तु वह तो जुगनूको आग समझता है। असलमें मनुष्यको कर्म कैसा करना चाहिए?

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥

(वि.पु. १.१९.४२)

असलमें मनुष्यको कर्म ऐसा करना चाहिए जिसमें बन्धन न हो। आदमी एक काम छोड़ देता है, उसपर दूसरा काम आता है, फिर तीसरा काम आता है। बोले कि पाँच रुपया कर्ज हमको दे दो, हमारा काम बन जायेगा! फिर वह भी लग जाता है तो और माँगते हैं। ऐसा लोग फँसते हैं! देखो, हाथ ऐसी जगह डालना चाहिए, जहाँसे अपने हाथको निकाल सकते हों! और, ऐसी जगह हाथको डाल देना कि जहाँसे अपने हाथको खींच ही न सकें! लोग व्यवहारमें ऐसी जगह हाथ डालते हैं कि जहाँ और, और, और फँसते ही जाते हैं। तो कर्म वह करना चाहिए, जिसमें बन्धन न हो। जब चाहें हाथ उठाकर खड़े हो गये! और, विद्या वह प्राप्त करनी चाहिए जिसमें अपनी मुक्ति बनी रहे। और दूसरे जितने काम हैं, वे केवल परिश्रम देने वाले हैं और दूसरी जितनी विद्या हैं, वे कारीगरी हैं।

तदेतदवगम्याहमसारं सारमुत्तमम्।
निशामय महाभाग प्रणिपत्य ब्रवीमिते॥

(वि.पु. १.१९.४२)

प्रह्लादजीने कहा कि हमने दुनियाके व्यवहारको, राजनीतिको असार समझ लिया है।

हम बड़ी-बड़ी संस्थामें रहे हैं, बड़े-बड़े राजनीतिज्ञोंसे हमारा मेल रहा है, उनके भीतरकी बात जानते हैं। ऐसी-ऐसी संस्थामें रहे हैं, जिनमें आप सोच नहीं सकते हो। जो दूसरेको धोखा देता है तो जब

दूसरा कोई धोखा देने के लिए नहीं रहता है तो अपनोंको धोखा देता है। अपने भाईको धोखा देता है, अपने मित्रको धोखा देता है। धोखा देनेका जिसका स्वभाव पड़ जाता है, आदत पड़ जाती है, वह तो धोखा दिये बिना रह ही नहीं सकता।

एक बार हमलोग ५-७ जन बम्बईमें आकर रह रहे थे। एक सज्जन थे हमारे साथी, उनकी किसी-न-किसीसे रोज लड़ायी होती। तो एक दिन कोई नहीं था, सब लोग चले गये, मैं और वे रह गये। तो उन्होंने मुझसे लड़ाई शुरू की। मैंने कहा कि भाई, थोड़ी देर ठहर जाओ, कोई आजाय तो लड़ना! अब उनको लड़ाई करनेकी आदत थी तो तबतक उनका पानी नहीं पचता था, जबतक किसीसे लड़ न लें!

तो नारायण, यह तो आदमी अपना आदतके अनुसार काम करता है, उसमें किसीका दोष नहीं होता। जिसको रोनेकी आदत है वह छोटी-छोटी बातपर रो लेगा। जिसको दोष देखनेकी आदत है, वह कहेगा कि आप ऐसी टेढ़ी आँखसे हमारी ओर क्यों देखते हो? तो यह सामनेवालेका दोष नहीं है, यह अपनी आदत का दोष है यह अपनी आदत ऐसी पड़ जाती है, बिगड़ जाती है!

प्रह्लाद कहते हैं कि हम तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करके यह निवेदन करते हैं कि हे महाभाग, दुनियामें लोग राज्यका चिंतन करते हैं, धन भी चाहते हैं। लोगोंको मिलता भी है। सभी लोग महत्त्वके प्रति उद्यम करते हैं कि हमको किसी तरहका बड़प्पन मिले।

को भल कहहुँ देऊ कछु कोऊ।
असि वासना हृदय ते न जाई॥

यह सबकी वासना है और यह इतनी बढ़िया है, हम उसकी तारीफ करते हैं कि सबके मनमें यह वासना है कि सब हमको भला कहें। यह तो सबको वशमें करनेका एक मंत्र ही तुमको मिल गया, तुम सबको भला कहो न! सारी सृष्टिको वशमें करनेके लिए यह

तुमको मंत्र मिल गया। सब चाहते हैं कि लोग हमको भला कहें, तो तुम सबको भला कहना शुरू कर दो। वशीकरणका यह मंत्र है,

'तजदे वचन कठोर'।

सबको भला कहो! ओ-हो ये तो साक्षात् भगवान् हैं। अपना हृदय भी ठीक रहे दूसरेका हृदय भी ठीक रहे।

सो नारायण, मनुष्य कितना भी प्रयास करे, लेकिन केवल प्रयास करनेसे ही काम नहीं बनता है, हम तो ऐसे कई सेठोंको जानते हैं जो ठीक-ठीक अक्षर नहीं लिख सकते, उनको उतना ही आता है कि अपना नाम बही-खाते पर लिख सकें, पर हैं करोड़पति! यह पढ़ने-लिखनेसे नहीं हुआ! पर उनको व्यापार आता है।

'भाग्य भोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि'।

(वि.पु. १.१९.४५)

जो जड़ है, मूर्ख है, जो काम करनेमें बहादुर नहीं है और जिनको नीतिशास्त्र बिलकुल नहीं आता, जो बुराईके मार्ग पर चलते हैं, उनको भी राजा होते देखा जाता है। इसलिए, अपनी ओरसे हमेशा अच्छा काम करना चाहिए, अच्छा बोलना चाहिए, अच्छा सोचना चाहिए और जहाँ तक हो सके समताका बर्ताव करना चाहिए। पक्षपात और क्रूरता नहीं करनी चाहिए। अपने परिवारके रूपमें भी शत्रु रहते हैं और शत्रुके घरमें भी अपने मित्र रहते हैं। कहीं कोई गलती न हो जाय। मोक्षका मार्ग भी यही है और संसारमें उन्नतिका मार्ग भी यही है। देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, केंचुए—यह संसार—जितना है, वह सब अनन्त प्रभु विष्णुका रूप है। देखनेमें अलग मालूम पड़ता है।

एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक्॥

(वि.पु. १.१९.४८)

सो इसको पहले समझ लो कि परमात्माके सिवाय दूसरी कोई चीज नहीं है। वही चर हैं, वही अचर हैं, वही जड़ हैं और वही जंगम हैं। क्योंकि, सम्पूर्ण विश्वके रूपमें विष्णु भगवान् प्रकट हैं, जो यह बात समझ लेगा उसके ऊपर भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे।

अच्छा, भगवान् प्रसन्न हो गये! एक महात्मासे किसीने पूछा कि महाराज, हम कैसे समझें कि ईश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो गया? बोले भाई कि इसका तो बड़ा सीधा उपाय है—तुम देखो कि अपने खानेसे, अपने करनेसे, अपने सोनेसे, अपनी रहनीसे, अपने मनसे तुम अपने ऊपर प्रसन्न हो कि नहीं! यदि तुम अपने जीवनसे सन्तुष्ट हो तो ईश्वर तुम्हारे ऊपर संतुष्ट है। क्योंकि, ईश्वरने अपना अन्तःकरण अलग बनाकर तो रखा नहीं है, तुम्हारे अन्तःकरणमें ही बैठकर वह प्रसन्न होता है! तुम्हारा अन्तःकरण निर्मल है तो परमेश्वर तुम्हारे ऊपर प्रसन्न है, और परमेश्वर जिसके ऊपर प्रसन्न है, उसको कहीं दुःख ही नहीं है। दुःख तो अपने अन्तःकरणकी प्रसन्नताका नाम है। आज तुम्हारा ही मूड बिगड़ा हुआ है, दुनिया नहीं बिगड़ी हुई है।

अब जो हिरण्यकशिपुने यह सुना, उसको बड़ा भारी क्रोध आया और प्रह्लादके वक्षःस्थल पर एक पाँव उसने मारा और बड़े क्रोधसे जलता हुआ, हाथ-से-हाथ पीसकर उसने असुरोंको बुलाया, 'हे विप्रचित्ते! हे राहो! हे बल! इसको नागपाशसे बाँध लो और समुद्रमें डाल कर पहाड़से दबा दो! बहुत शासन करने पर भी यह नहीं मानता है! यह विष्णुकी ही स्तुति करता है, तो इसका वध ही करना चाहिए।'

इसके आगेका प्रसंग अब हम आपको कल सुनावेंगे!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रह्लादजीकी निष्ठा कितनी दृढ़ थी, इसका वर्णन करते हैं।

आपको पहले सुनाया था कि 'प्रह्लाद' माने जिसका आनन्द स्वाधीन हो। जिसका आनन्द पराधीन होता है—यह चीज मिलेगी तब हम सुखी होंगे, माने वह पराधीन हो गया। यह काम हो जायेगा, तब हम सुखी होंगे—तब वह पराधीन हो गया। यह आदमी ऐसा करेगा तब हम सुखी होंगे; पराधीन हो गया। जो लोग अपने आनन्दको पराधीन करके रखते हैं वे संसारमें कभी सुखी नहीं होते। उनको बारम्बार दुःखी होना पड़ता है। अपना आनन्द अपने साथ रहना चाहिए।

'हम अपने सपने साथ लिए फिरते हैं'।

हमारी शांति, हमारा सुख जहाँ हम हैं, जब हम हैं, जैसे हम हैं, जो हैं, बिलकुल स्वतन्त्र, स्वाधीन! हमारा होना क्या सबसे बड़ा सुख नहीं है? हमारा होना, हमको मालूम पड़ना—यह सबसे बड़ा सुख है। जो सत् है वही सुख है, जो चित् है वही सुख है। तो सर्वोत्तम आह्लाद, सर्वोत्तम आनन्द किसको है? जो अपने सुखको, अपने आनन्दको, अपने साथ रखता है, पराधीन नहीं करता है। संसारके लोग इसीलिए दुःखी हैं। क्योंकि, वे अपना सुख मकानमें रखते हैं, धनमें रखते हैं, रिश्ते-नातेदारमें रखते हैं। एक शरीरका सुख-दुःख सम्भालना बड़ा मुश्किल पड़ता है। जो सौ-सौ, पचास-पचास शरीरोंके सुख-दुःखका बोझ अपने सिरपर रखते हैं, वे सुखी कैसे हो सकते हैं?

दूसरा अर्थ 'प्रह्लाद' शब्दका है 'प्रकर्षेण आह्लादयति'—जो दूसरोंको सर्वोत्तम आनन्द देता है! तीसरा अर्थ है, 'प्राह्लादयति'—प्रह्लादको देखकर लोगोंके मुखसे भगवान् का नाम निकलता है। ये प्रह्लाद निष्ठावान् पुरुष थे। निष्ठावान् पुरुष कौन होता है? जो थोड़ा कष्ट उठाकर अपने धर्ममें अविचल रहता है।

देखो, जो परिश्रमसे डरते हैं, तकलीफसे डरते हैं कि इस काममें तो बड़ी मेहनत है, यह कौन करेगा? इसमें तो तकलीफ हो जानेकी संभावना है इसको कौन करेगा? तो जो लोग तकलीफ और परिश्रमसे डरते रहते हैं वे किसी धर्ममें दृढ़ नहीं हो सकते। किसी निश्चयपर अडिग रहना होगा तो कुछ-न-कुछ तकलीफ उठानी पड़ेगी। जब यह नियम करेंगे कि हम अशुद्ध भोजन नहीं करेंगे, तो किसी दिन भूखे रहना पड़ेगा। निष्ठा तभी बनती है जब तकलीफ उठायी जाती है, जब परिश्रम किया जाता है।

प्रह्लादने परमेश्वरको देखा नहीं था। अविचल विश्वास था प्रह्लादके जीवनमें, इतना कष्ट देनेवालोंके प्रति भी हृदयमें इतना सद्भाव, चरित्रमें इतना विनय, इतनी प्रेम भरी वाणी—यह देखकर आश्चर्य हो जाता है!

जब प्रह्लादको समुद्रमें डाल दिया गया, समुद्रमें डूबने लगे प्रह्लाद तो, **'ततश्चचाल चलता प्रह्लादेन महार्णवः'**—समुद्र हिल गया। निष्ठावान् पुरुषमें यह शक्ति होती है कि समुद्रमें बाढ़ आजाय, पृथिवी हिलने लगे, आकाश फटने लगे, वायु रुक जाय। क्योंकि, निष्ठावान् पुरुषका जो मन है वह व्यक्तिमें नहीं रहता, समष्टिमें मिल जाता है। इस बातको बच्चे लोग नहीं समझते हैं। आध्यात्मिक शक्तिको पहचानना बड़ा मुश्किल है। जब मनुष्यका मन सम्पूर्ण विश्व-सृष्टिके मनसे एक हो जाता है तब विश्व-सृष्टिका मन तो रहता है शान्त और उसमें निष्ठावान् पुरुषका मन मिलकर हलचल मचा देता है, क्षुब्धकर देता है उस मनको! अब तो **'उद्वेलोऽभूत्परं क्षोभमुपेत्य च समन्ततः'**—तटका, मर्यादाका समुद्र उल्लंघन करने लगा। ऐसा लगा कि सारी धरती डूब जायेगी। हिरण्यकशिपुने दैत्योंको बुलाया और बोला कि पहाड़ोंको उठा-उठाकर इस ढंगसे समुद्रको चुन दो कि प्रह्लाद उसके भीतर हजारों वर्ष तक दबा रहे! क्योंकि उसको अग्नि जलाती नहीं है,

शस्त्रसे यह कटता नहीं है, साँपोंके डँसनेसे मरता नहीं है, हवासे सूखता नहीं है, विषसे मरता नहीं है, कृत्याने इसका कुछ नहीं बिगाड़ा, मायासे कोई हानि नहीं हुई, दिग्गजोंसे कुचला नहीं गया और यह हमारे शत्रुके पक्षमें चला गया है! अब इसके जिंदा रहनेकी जरूरत नहीं है। सो समुद्रके पानीके भीतर इसको पहाड़ोंसे दबा दो! हजारों वर्ष तक वहाँ पड़ा रहेगा और अन्तमें मर जायेगा।

हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको समुद्रमें ही पहाड़ोंसे दबानेका आदेश जो दिया, दैत्योंको तो ऐसी बात प्यारी लगती है।

यदि कोई चाहे कि हम अपने मनको तौलें तो देखना चाहिए कि उसको मार-धाड़के दृश्य अच्छे लगते हैं कि शान्तिके, सद्भावके दृश्य अच्छे लगते हैं। तब आप अपने मनको तौल सकेंगे कि आपका मन किस किस्मका है। मन भी किस्म-किस्मका होता है। मनकी जाति होती है। एक बात आप बताओ—कभी बिस्तर आपको डालना होता है पलंगपर, तो आप धम्म से फेंक देते हो पलंगपर कि पलंग पर चोट न लगे सो बड़े कायदेसे सम्भालकर बिछाते हो? जब किसीको चादर ओढ़ानी होती है तो ऐसे झटककर ओढ़ाते हैं कि उसमें जो धूल पड़ी हो सो आँखमें पड़ जाय और आँखमें चोट लग जाय। किवाड़ी खोलते हो तो खटसे आवाज होती है कि नहीं? अरे भाई, तुम अपने मनको खुद नहीं तौलोगे तो दूसरा कोई तौलकर क्या बतावेगा? जैसे सद्भाव, सेवा मनुष्यके जीवनकी एक अच्छी चीज है, वैसे प्रत्येक काममें सावधान रहना, यह भी एक अच्छा काम है। एक महात्मा कहते थे, 'सावधानी ही साधना है'। पग-पग पर सावधान रहें। सावधान होकर चलें—यही साधना है।

दैत्य उसको कहते हैं, जिसको दूसरोंको तकलीफ पहुँचानेवाला काम अच्छा लगता है। हम पहले रामायण पढ़ते थे तो उसमें चित्रमें बड़ी-बड़ी दाढ़वाले राक्षस बनाये होते। शेरकी तरह बड़े-बड़े दाँत,

देखते थे और एक ओर ऋषि-मुनियोंका चित्र देखते थे। तो हमारी समझमें यह आ गया कि जिसको ऐसी दाढ़ हो, ऐसी सींग हो, ऐसा मुँह हो उसीका नाम राक्षस होता है। लेकिन बड़े होने पर वह ख्याल बदल गया अपना! ऐसा लगा कि जो देखनेमें बड़े सुन्दर होते हैं—शकल-सूरत बहुत अच्छी, पोशाक बहुत अच्छी—वे भी दैत्यलोग हो सकते हैं।

तो अपने मनको तौलना आवश्यक है। अपने मनको तौलकर अच्छे रास्ते पर ले चलना चाहिए।

अब तो दैत्य और दानव—इन दोनोंने पहाड़ ले—लेकर चुन दिये और उनके भीतर प्रह्लाद दब गये। परन्तु, प्रह्लादको तो इसका कोई ख्याल ही नहीं था।

स चितः पर्वतैरन्तः समुद्रस्य महामतिः।
तुष्टावाह्निकवेलायामेकाग्रमतिरच्युतम् ॥

(वि.पु. १.१९.६३)

'समुद्र' माने जिसमें कभी शान्ति हो और कभी तरंग उठे। कभी ज्वार, कभी भाटा—इसीको बोलते हैं 'समुद्र'। जिसकी दो मुद्रा हों—कभी शान्ति-मुद्रामें हो और कभी क्षुब्ध-मुद्रामें हो।

'मुद्राभ्यां सहितः समुद्रः'।

उस समुद्रके भीतर प्रह्लाद डाले गये और पहाड़ोंसे दबा दिये गये। अब एक बात आप देखो—शब्द तो एक ही है, लेकिन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्रह्लादजीने भगवान्‌की स्तुति की। तो समुद्रमें डूबनेसे स्तुति नहीं की और पहाड़से दबानेके कारण स्तुति नहीं की कि हे भगवान्! हम समुद्रमें डूब रहे हैं, हमको बचा लो या हम पहाड़से दबाये गये हैं, हमको बचा लो। यह स्तुति नहीं की।

'तुष्टावाह्निकवेलायामेकाग्रमतिरच्युतम्'।

आह्निकवेलामें उन्होंने स्तुति की। जब सन्ध्या-वन्दन करनेका

समय होता है, अग्निहोत्र करनेका समय होता है, रोज-रोज जैसे स्तुति करते थे वैसे ही स्तुति की। यह नहीं कि आज पहाड़से दबे हैं तो जल्दी भगवान्‌को पुकार लें कि आज समुद्रमें डूब रहे हैं। भगवान्‌के काममें ज्यादा खलल नहीं डालना चाहिए।

एक बहुत बड़े आदमी थे। हम अपनी आँखसे देखी बात सुनाते हैं। बहुत सज्जन पुरुष थे। उनके पास एकने आकर कहा कि हमारा पार्सल आया है पोस्ट ऑफिस में, सो जो पोस्टमास्टर है वह हमसे बारह आना पैसा ज्यादा माँग रहा है। आप चलो, उससे कह दो कि वह बारह आना पैसा न ले! एक मील पोस्ट ऑफिस था। डंडा उठाया उन्होंने और चल पड़े कि चलो छुड़वा देते हैं। हमने कहा कि अरे बाबा, आप इतने बड़े होकर बारह आने पैसेके लिए पोस्ट ऑफिस जाते हैं? उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, यह तो हमारा काम ही है, हमारा अपना काम है।

तो छोटे-छोटे कामके लिए, बात-बातमें कि आज हमारे दो रुपयेका नुकसान हो गया है ईश्वर, दौड़ो! एक करोड़पतिका लाख रुपयेका नुकसान हो जाय तो सौ रुपयेमें एक रुपयेका तो नुकसान हो गया न! इसके लिए ईश्वरको पुकारना—चलो, दौड़ो! दौड़ो!! प्रह्लादजी, ऐसी छोटी-छोटी बातके लिए ईश्वरको नहीं पुकारते थे। रोजकी तरह आह्निक वेलामें उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की और उनकी बुद्धि बिलकुल एकाग्र थी। न उन्हें तकलीफका कोई ख्याल था, न समुद्रमें डूबनेका, न पर्वतसे चुने जानेका।

एक बात शायद आप सुन चुके हों पहले कि देवताकी जब स्तुति की जाती है तब वह अपने हृदयमें बलशाली होता है। नहीं तो कमजोर रहता है। एक बात आपने कभी सुनी होगी तो सुनी होगी कि भक्त लोग कहते हैं कि जहाँ शंकरजीका प्रवेश नहीं है और जहाँ नारदजीका प्रवेश नहीं है, हम उस भावमें रहते हैं। तो शर्म आनी

चाहिए उन्हें कि शंकरजीका तो प्रवेश नहीं हुआ, नारदजीका प्रवेश नहीं हुआ और वह उस भावमें डूबे रहते हैं। तो नारायण, अपनी हिमाकत पर भी कुछ सोचना चाहिए। अपने दुःसाहसकी बात पर भी कुछ सोचना चाहिए।

'स्तूयमानाहि देवता बलेन वर्द्धते'।

निरुक्तमें कहाकि जब हम देवताकी स्तुति करते हैं तो स्तुति करनेपर देवताका बल बढ़ जाता है और वह हमारी मदद करनेके लिए आता है और देवता हाथमें डंडा लेकर मदद नहीं करता। बल्कि—

'यं तु रक्षितु मच्छन्ति सद्बुद्ध्या योजयन्ति तं'।

देवता लोग जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको सद्बुद्धि दे देते हैं। तब फिर मनुष्यको यह नहीं दिखता कि देवताने क्या किया है? बल्कि दिखने लगता है कि हमारी बुद्धिसे हमारे चातुर्यसे यह काम हुआ है। बुद्धि कहाँसे आयी—यह नहीं देखता!

प्रह्लाद समुद्रमें डूब रहे हैं कि पहाड़से दबे हुए हैं कि हजारों वर्ष खाना-पीना नहीं मिलेगा—यह सब कुछ उनको ख्याल नहीं है। भगवान्‌की आराधना करते हैं,

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम।
नमस्ते सर्वलोकात्मन्नमस्ते तिग्मचक्रिणे॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

(वि.पु. १.१९.६४-६५)

हे पुण्डरीकाक्ष, तुम्हें नमस्कार है! 'पुण्डरीक' माने होता है कमल। 'पुण्डरीकाक्ष' माने जिसकी आँखें कमल सरीखी हों, माने जिसकी आँखें कोमलतासे, रससे भरी हों। भगवान् रूखी आँखसे किसीको नहीं देखते। बड़ी कोमल आँखोंसे सबको देखते हैं। उत्तम पुरुष हैं, क्षर और अक्षरसे विलक्षण। क्षर-पुरुष जो है वह प्रकृतिके

अधीन है और अक्षर-पुरुष अपने स्वभावका परित्याग कभी नहीं करता और क्षर-अक्षरसे विलक्षण जो पुरुषोत्तम है, वह अपने भक्तोंके पक्षमें अपने स्वभावका परित्याग भी करता है और ज्यों-का-त्यों भी रहता है। क्षर-और अक्षर, दोनोंका मूल पुरुषोत्तममें है। स्वभाव अपना बदल देता है अपने भक्तोंके लिए—यह क्षर-स्वभाव है और ज्यों-का-त्यों अविकृत रहता है, यह अक्षरका स्वभाव है। दोनोंके स्वभावका मूल है पुरुषोत्तम। सारा लोक आपका ही स्वरूप है, हम आपको नमस्कार करते हैं। आपका काल-चक्र बड़ा तीक्ष्ण है, हम आपको नमस्कार करते हैं।

आप ब्राह्मणोंको देवता समझते हैं। गाय, ब्राह्मणकी भलाईमें संलग्न रहते हैं। सारे जगत्‌की भलाई करते हैं। हे गोविन्द! हे श्रीकृष्ण! आपको बारम्बार नमस्कार है!

ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये॥

(वि.पु. १.१९.६६)

आप ही ब्रह्मा होकर सृष्टि करते हैं, आप ही विष्णु होकर पालन करते हैं, आप ही रुद्र होकर संहार करते हैं और तीनों रूपोंमें लोगोंका भला करते हैं। देवता, यक्ष, सिद्ध, असुर, दानव, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, चींटी, दीमक, केंचुए, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल, गुण **'एतेषां परमार्थश्च सर्वमेतत्त्वमच्युत'**—ये सब तुम्हीं हो और इनका जो सच्चा रूप है, जो परमार्थ है, वह भी तुम्हीं हो।

आप ही ज्ञान हो, आप ही अज्ञान हो। आप ही सत्य हो, आप ही असत्य हो। आप ही विष हो, आप ही अमृत हो। आप ही प्रवृत्ति हो, आप ही निवृत्ति हो। आप ही वेदोक्त-कर्म हो, समस्त कर्मोंके भोक्ता हो, कर्मोंके उपकरण हो, कर्मोंके फल हो।

मय्यन्यत्र तथान्येषु भूतेषु भुवनेषु च।
तवैव व्याप्तिरैश्वर्यगुणसंसूचिका प्रभो॥

(वि.पु. १.१९.७२)

मुझमें भी तुम हो और दूसरी जगह भी तुम हो। सब प्राणियोंमें तुम हो। सब ब्रह्माण्डोंमें तुम हो। तुम्हारी ही व्याप्ति सबमें है। जैसे घड़ेमें मिट्टी रहती है, वैसे सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डमें तुम उपादानके रूपमें व्याप्त हो। यह तुम्हारा ही ऐश्वर्य है।

योगी-लोग तुम्हारा ही चिन्तन करते हैं द्रष्टाके रूपमें और याज्ञिक तुमको ही आहूति देते हैं यज्ञ-कुण्डमें और तुम्ही देवता होकर हव्य ग्रहण करते हो और तुम्हीं पितर होकर हव्य ग्रहण करते हो।

यह विश्व आपका महान् रूप है और इसके भीतर सूक्ष्मरूपसे आप ही भरे हुए हैं और ये सारे रूप आपके ही हैं। ये प्राणियोंके जो भेद हैं, वह आपका ही स्वरूप है और सबकी अन्तरात्मा आप ही हो और स्थूल सूक्ष्मादि विशेषण आप पर लगाये नहीं जा सकते। उनके अगोचर हैं आप। आपका जो परमात्मरूप है, वह अचिन्त्य है। **'तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय'**—हे प्रभु, हम आपको नमस्कार करते हैं।

'नमस्कार' शब्दका संस्कृत भाषामें अर्थ होता है 'नमन'। 'नमन' माने तुम हमसे बड़े हो, हम तुमसे छोटे हैं। 'स्वापकर्षसूचक व्यापार'। अपनेको छोटा समझना नमस्कार करना है। परोत्कर्ष सूचक व्यापार—इसका नाम नमस्कार होता है। और, 'न मे इतिनमः'—अहिर्बुध्न्य-संहितामें 'नमः' शब्दका अर्थ किया हुआ है—न मैं न मेदा। इसका नाम 'नमस्कार' है। जब तक 'मैं' और 'मेरा' बना हुआ है, तबतक नमस्कार सध्या नहीं होता।

सर्वभूतेषु सर्वात्मन्या शक्तिरपरा तव।
गुणाश्रया नमस्तस्यै शास्वतायै सुरेश्वर॥

यातीतगोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा।
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या तां वन्दे चेश्वरीं पराम्॥

(वि.पु. १.१९.७६-७७)

हे सर्वात्मन, जो सम्पूर्ण भूतोंमें आपकी शक्ति हैं, गुणोंका आश्रयभूत, शाश्वत, उसको हम नमस्कार करते हैं। जो वाणी और मनसे परे है, निर्विशेष है, ज्ञानीलोग जिसको अपने तत्त्वज्ञानके द्वारा समझते हैं, उसको हम नमस्कार करते हैं।

ॐ नमो वासुदेवाय तस्मै भगवते सदा।
व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः॥

(वि.पु. १.१९.७८)

उस वासुदेव भगवान्‌को हम नमस्कार करते हैं, जिनसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लेकिन वे सबसे अलग हैं। हजार घड़े हैं; लेकिन सब मिट्टीके बने हुए हैं। मिट्टीसे अलग नहीं हैं। लेकिन मिट्टी; घड़ोंकी जो शक्ल-सूरत है, उनका पेट है गोल-गोल और उनका गला है छोटा-छोटा-उन सबसे परे है।

हम बारम्बार उस परमात्माको नमस्कार करते हैं, जिसके न नाम है, न रूप है। एक है और 'अस्ति' सद्‌रूपसे जिसकी उपलब्धि होती है।

'अस्तीत्येवो पलब्धव्यः'।

जिसको उपनिषद् कहते हैं कि अस्ति रूपसे प्राप्त होता है, उसकी पूजा कैसे हो? बोले कि अवताररूपसे पूजा होती है। बुद्धिमें आये हुए रूपकी पूजा होती है। कैसे आप उसका अनुभव करते हैं? यह सत् है, ऐसे अनुभव करते हैं? वह सत् है, ऐसे अनुभव करते हैं? मैं सत् हूँ, ऐसे अनुभव करते हैं? अनुभवका प्रकार क्या है? किस प्रक्रियासे, किस ढंगसे उसका अनुभव करते हैं। 'यह' अनुभव करेंगे तो दृश्य, जड़-जगत्‌का हो गया और 'वह' कहेंगे तो बिलकुल विश्वासकी वस्तु

हो गयी और 'मैं' कहेंगे तो अभिमान जुड़ गया। कैसे सत्का अनुभव करेंगे? 'सत्'के अनुभवमें कोई प्रक्रिया तो चाहिए न! 'चित्'का अनुभव कैसे करेंगे? यह चित् है। वह तो दृश्य है, सो जड़ हो गया। वह चित् है? वह तो परोक्ष हो गया, विश्वासकी वस्तु हो गयी। अच्छा, मैं चित् है? तब उसमें 'मैं' जुड़ गया। असलमें उसका अनुभव कैसे करते हैं? तो परमेश्वरका बुद्धिमें आया हुआ जो रूप है उसको बोलते हैं 'अवतार'।

यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः।

(वि. पु. १.१९.८०)

देवता लोग परमात्माके उस अवताररूपकी पूजा करते हैं। उस परमेश्वरके असली रूपका दर्शन नहीं कर पाते हैं। जो सबके भीतर रहकर, सबकी अच्छाई-बुराईको, शुभ-अशुभको देखता रहता है, **'तं सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ये परमेश्वरम्'**—सबका साक्षी है—साक्षात् पश्यति देखो, हम दुनियाको देखते हैं तो साक्षात् नहीं देखते हैं। कानसे सुनते हैं, आँखसे देखते हैं, त्वचासे छूते हैं, जीभसे चखते हैं, नाकसे सूँघते हैं। बीचमें इन्द्रियाँ होती हैं। इन्द्रियोंके द्वारा हम संसारको जानते हैं। लेकिन परमात्माको किसीको जाननेके लिए किसी इन्द्रियकी जरूरत नहीं पड़ती है। किसी जरियेसे वह नहीं दिखता है। वह साक्षी माने—साक्षात् पश्यति करण बिनैव वृत्तिं बिनैव—बिना इन्द्रियोंके और बिना वृत्तियोंके वह साक्षात् देखता है।

उस विष्णु भगवान्को हम नमस्कार करते हैं, जगत् जिनसे भिन्न नहीं है। वही ध्यान करने योग्य हैं और वह हमारे ऊपर प्रसन्न हो 'स प्रसीदतु मे'।

यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम्।
आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः॥

(वि. पु. १.१९.८३)

देखो, प्रह्लाद कहीं अपनी तकलीफका नाम लेते हैं कि मैं पहाड़ोंसे दब रहा हूँ कि मुझे सताया जा रहा है कि मैं मर रहा हूँ। अपने ऊपर दृष्टि नहीं है। दृष्टि कहाँ है? परमात्मा पर है। किसीकी दृष्टि जाती है डंडा मारनेवाले पर और किसीकी दृष्टि जाती है डंडे पर और किसीकी दृष्टि जाती है डंडेकी चोट जिस शरीर पर लगती है, उस शरीरपर। और, प्रह्लादकी दृष्टि न डंडा मानेवाले पर है, न डंडे पर है, न डंडा खाने वाले पर है। उनकी दृष्टि भगवान् पर है। इसको कहते हैं परमात्माका चिंतन!

'यत्रोतमेतत्प्रोतं च'—जैसे कपड़ेमें आड़ा-सीधा ताना-बाना दोनों ो सूत हैं, सूतके सिवाय कपड़ा नहीं है, ऐसे ही यह विश्वरूप जो वस्त्र है, वह परमात्मासे बिलकुल अलग नहीं है। सबका वह आधार है।

ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः।
यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः॥

(वि.पु. १.१९.८४)

उस विष्णुको, सर्वव्यापी परमेश्वरको पुनः पुनः नमस्कार है। जो सबमें प्रविष्ट होकर नहीं, सबमें व्याप्त हो कर स्थित है, उसको 'विष्णु' कहते हैं। उसीसे सब है, उसमें सब है, वही सब है, वही सर्वाश्रय है।

प्रह्लादको संसारका दीखना तो पहले ही बंद हो गया था—न मारनेवाला दिखे, न मरनेका साधन दिखे और न हिरण्यकशिपु आज्ञा देनेवाला और न दैत्य उसको सतानेवाले, न समुद्र डुबोनेवाला,न पहाड़ दबानेवाला, न शरीर दबनेवाला—यह सब दीखना तो प्रह्लादको पहले ही बंद हो गया था परमात्माके चिंतनमें। अब क्या हुआ कि जो परमात्मा और 'मैं'का भेद मालूम पड़ता था, वह भेद भी लुप्त हो गया। स्थिति कैसे ऊँची होती है, इसका यहाँ वर्णन है—

अर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः।
मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने॥

(वि.पु. १.१९.८५)

प्रह्लाद अनुभव करने लगे कि अनन्त, सर्वव्यापी है। इसलिए 'मैं' अलग और 'अनन्त' अलग—ऐसी यदि कल्पना करेंगे तो अनन्त, अनन्त ही नहीं रहेगा। मैं कम अनन्त, अनन्त कम मैं। जो मुझसे अलग होगा वह पूर्ण कहाँसे होगा? मुझसे अलग होकर पूर्ण पूर्ण नहीं रहेगा, अधूरा हो जायेगा, परिच्छिन्न हो जायेगा, जड़ हो जायेगा, कल्पित हो जायेगा। तो जो पूर्ण है, वही मैं हूँ। मैं और पूर्ण अलग-अलग नहीं। मुझसे सब है, मैं ही सब हूँ। मुझ सनातनमें ही सब है।

मैं ही अविनाशी नित्य परमात्मा स्वाश्रय हूँ। मेरा ही नाम ब्रह्म है। मैं ही पहले था, मैं ही बीचमें हूँ, मैं ही अन्तमें हूँ। मैं ही पुरुषोत्तम हूँ। मेरे सिवाय और कुछ नहीं है।

अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः।
ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान्॥

(वि.पु. १.१९.८६)

इसप्रकार चिंतन करते-करते संसारका चिंतन छूट गया, शत्रु-मित्रका चिंतन छूट गया, मैं-तूका चिंतन छूट गया, प्रह्लाद तो अभेद-भावसे परमात्मामें स्थित हो गये और तन्मय हो गये अपनेको ही परमात्माके रूपमें देखने लगे।अपने आपको भूल गये और कुछ दूसरा है,यह ख्याल छूट गया। बस, **'अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत्'**—मैं ही अव्यय, अनन्त परमात्मा हूँ—ऐसा चिन्तन करने लगे।

देखो, लोग भावना करनेमें बहुत डरते हैं। भावना करनेसे संसारका जो सम्बन्ध है, वह टूट जाता है। अविद्या और अविद्याका कार्य—इसको पाप बोलते हैं। सबसे बड़ा पाप क्या है? जो परमात्माका अज्ञान है, वही सबसे बड़ा पाप है। सो भावनाके योगसे अविद्यारूप पाप, अविद्याका कार्य-रूप पाप क्षीण हो जाता है, अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और ज्ञानमय परमेश्वर अन्तःकरणमें स्थित हो जाता है।

योगके प्रभावसे प्रह्लाद विष्णुमय हो गये। साँपोंसे उनका शरीर जो बाँध दिया गया था, वह बंधन टूट गया और इतनी बड़ी-बड़ी तरंगे समुद्रमें उठने लगीं जैसे ग्रहगण भ्रमण करने लगे हों। समुद्र क्षुब्ध हो गया, पृथिवी हिलने लगी, पहाड़ हिलने लगे। जो पहाड़ उनके ऊपर चुने गये थे, वे अपने आप टूट-टूटकर गिरने लगे और प्रह्लाद पानीसे ऊपर निकल आये और उन्होंने देखा कि वही सब संसार सामने है। वही आकाश है। अरे, मेरा नाम तो प्रह्लाद है—अपने आपका उन्होंने स्मरण किया।

तो यह सब क्या हुआ? बोले कि यह सब भगवान्‌की लीला हुई।

'तुष्टाव च पुनर्धीमाननादिं पुरुषोत्तमम्।' वि. पु. १.२०.८

बस, भक्तकी तो एक ही बात है—शुरूमें भगवानकी स्तुति, अन्तमें भगवान्‌की स्तुति। वे संकटको नहीं देखते हैं। भगवान्‌को देखते हैं। वे दुनियाको नहीं देखते हैं, भगवान्‌को देखते हैं। दुःखमें भी प्रह्लादजीको उद्वेग नहीं हुआ और बच जानेपर भी सुखका उद्वेग नहीं हुआ। वाणी, शरीर, मानस—सब-का-सब शान्त और अव्यग्र भावसे परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। जो लोग यह कहते हैं कि मन, वाणी, शरीर काबूमें करनेकी जरूरत नहीं है, वे लोग बड़े धोखेमें डालते हैं। कहते हैं कि जो मौज हो सो खाओ और जो मौज हो सो पीओ और जो मौज हो सो करो और थोड़ी देर देख लिया करो। थोड़ी देर देख लेनेसे थोड़े कुछ बनता-बिगड़ता है? तो लोगोंको साधनासे गिराते हैं और रास्ता छुड़ा देते हैं माने परमात्माकी प्राप्तिका जो मार्ग है, उससे भ्रष्ट कर देते हैं। व्यग्रता नहीं चाहिए संसारके लिए, बुद्धि एकाग्र चाहिए, वाणी, मन, शरीर काबूमें चाहिए। अब प्रह्लादजीने भगवान्‌की स्तुति की—

ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्मक्षराक्षर।
व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन॥

गुणाअन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित।
मूर्तामूर्तमहामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट॥

वि. पु. १.२०.९-१०

संसारके रूपमें आप ही हो प्रभु! अर्थ भी आप ही हो और परमार्थ भी आप ही हो। द्रष्टा भी आप ही हो, दृङ्मात्र वस्तु ब्रह्म भी आप ही हो और यह जगत् भी आप ही हो और आप ही स्थूल। आप ही यह जाग्रत्-अवस्था हो और आप ही सूक्ष्म स्वप्नावस्था हो। आप ही क्षर हो, विनाशी कार्य-रूप जगत् हो और आप ही कारण हो। माने परमात्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है—यह बात कह रहे हैं। प्रकट रूपमें भी आप हो, अप्रकट रूपमें भी आप हो। कलातीत भी आप हो और कलेश भी आप हो। आपमें किसी प्रकारका माया मल नहीं है। यह जो सत्त्व, रज, तम तीनों गुण हैं, इनको आप ही प्रकट करते हो। इन तीनों गुणोंके आप आधार हो। आपमें कोई गुण नहीं है। आप गुणोंमें स्थित हो। आप ही मूर्त हो, अमूर्त हो, महामूर्ति हो, सूक्ष्ममूर्ति हो। प्रकाश, अप्रकाश—यह आपका ही स्वरूप है। जो कुछ भयंकर लगता है, वह भी आप ही हो।

देखो, चोरको देखकर बड़ा आदमी डर जायेगा। और नन्हा-सा बच्चा होगा तो? वह नहीं डरेगा। साँप, शेरको देखकर बड़े आदमी लोग डरते हैं, छोटे बच्चे थोड़े ही डरते हैं। क्योंकि उनको संस्कार ही नहीं है कि ये हमारा कोई नुकसान कर सकते हैं। तो भयंकर रूप भी परमात्माका ही है और सौम्य रूप भी परमात्माका ही है। वही विद्यामय है, वही अविद्या-मय है। वही ज्ञान हैं, वही अज्ञान हैं। सद्रूप भी वही हैं, असद्रूप भी वही हैं। गीतामें पढ़ते हैं, **'अमृतं चैव मृत्युश्च'**—अमृत भी भगवान् हैं, मृत्यु भी भगवान् हैं। **'सदसदचाहमर्जुन'**—सत् भी मैं हूँ, असत् भी मैं ही हूँ। **'न सत्तन्नासदुच्यते'**-न वह सत् है, न असत् है। **'सदसदत्परंयत्'**-सत् भी वही, असत् भी वही और दोनोंसे परे भी वही। इसका अर्थ है कि परमात्माके

सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह जो बोलते हैं न कि सब परमात्मा है, तो वेदान्त-चिन्तनमें यह बहुत छोटी बात है। क्यों? सब माने तुम, तुम, तुम; वह, वह, वह; मैं, मैं, मैं। तो अनेकताके समूहको 'सब' बोलते हैं और परमात्मामें न अनेकता है, न समूह है। वह तो अद्वितीय है। परमात्मा सब नहीं है, परमात्मामें सब नहीं है। सब तो केवल संसारकी दृष्टिसे मालूम पड़ता है। सत् भी वही, असत् भी वही, सदसद्-भावकी भक्ति करनेवाला भी वही। नित्यनित्य प्रपंचके रूपमें मालूम पड़नेवाला भी वही और वही निष्प्रपंच, निर्मल, निर्माय भी वही है।

'एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण'।

हे आदिकारण वासुदेव, आप ही एक हो, आप ही अनेक हो। हम आपको नमस्कार करते हैं।

यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतोर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥

(वि. पु. १.२०.१३)

स्थूल भी वही, सूक्ष्म भी वही। प्रकट-प्रकाश साक्षीके रूपमें भी वही है। वह सर्व-स्वरूप है और सर्वस्वरूप नहीं भी है। उसीसे यह विश्व है और विश्वका कार्यकारण भाव उसमें नहीं है। उस पुरुषोत्तमको हम नमस्कार करते हैं।

इस तरह प्रह्लादजीने भगवान्‌की स्तुति की। यह जो लोग कहते हैं न कि द्रष्टा-भावमें बैठनेसे ही परमात्माका दर्शन होता है या ध्यान करनेसे ही परमात्माका दर्शन होता है, वे परमात्माकी शक्तिको बहुत सीमित कर देते हैं। परमात्मामें केवल द्रष्टापन ही नहीं है। परमात्मामें अनुग्रह भी है, कृपा भी है, परमात्मा केवल हमारे ध्यानके बलसे देखा जायेगा—यह बात सोचना भी गलत है। वह बिना ध्यानके भी आ जाता है। भक्ति-पंथको आप समझें। भगवान्‌का नाम लेकर पुकारिये, वह आवेगा।

आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि।

भागवत १.६.३४

प्रह्लादजीके गुरु नारदजी कहते हैं कि जैसे कोई छोटे बच्चेको पुकारे कि मोहन, यहाँ आओ और वह बच्चा उठकर आ जाय; ऐसे ही मैं भगवान्‌को पुकारता हूँ। और मेरे पुकारनेसे आकर मुझे दर्शन देते हैं। और तन्मयता भी केवल माहात्म्य-ज्ञानसे होती हो, सो बात नहीं है। आत्मीय ज्ञानसे भी होती है। भगवान् हमारे हैं। माहात्म्य-ज्ञानसे पुकारनेपर परमात्मा आता हो, इतना ही नहीं है। आत्मीय-ज्ञानसे कि मेरा बेटा है, मेरा मित्र है, मेरा स्वामी है, मेरा गुरु है, मेरा सखा है—इस ढंगसे पुकारनेपर भी परमात्मा आता है।

अब तो प्रह्लादजीका मन लग गया परमात्मामें और वे स्तुति करने लगे। असलमें भगवान् शब्द-मूर्तिधारी हैं। भगवान्‌के निर्गुण-निराकार रूपका दर्शन करना हो तो चुप हो जाइये। मौन! बोलनेका भी परिश्रम मत कीजिए, चिन्तनका भी परिश्रम मत कीजिए। परमात्माके निर्गुण-निराकार रूपका दर्शन करना हो तो महावाक्यके अर्थका विचार कर लो, चाहे बिना विचार किये मौन। अर्थका स्फुरण हो जायेगा। क्योंकि, जहाँ शब्दकी गति नहीं है, वहाँ कुछ बोलनेकी, सोचनेकी जरूरत नहीं है। और, परमात्माके सगुण-साकार रूपका दर्शन करना हो तो आप बोलिए। प्रह्लादने भगवान्‌की स्तुति की और **'आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः'**—पीताम्बरधारी साक्षात् शंख, चक्र, गदाधारी प्रभु प्रह्लादके सामने प्रकट हो गये।

वेदान्तीके सामने आवरण-भंग करके निवारण भगवान् प्रकट होते हैं और भक्तके सामने पीताम्बरधारी भगवान् प्रकट होते हैं। कभी-कभी भगवान् सफेद कपड़ा भी पहनते हैं। यह नहीं कि हमेशा पीला ही पहनते हैं, उनके पास दूसरा है ही नहीं। सो बात नहीं। कोई भी स्त्री एक ही साड़ी पहनकर रोज निकले तो लोग कहेंगे न कि

इसके पास दूसरी नहीं है। वह तो जितनी बार घरसे निकलेगी, उतनी साड़ी पहनकर निकलेगी। अच्छा तो भगवान्‌के सफेद कपड़ेका वर्णन भी है भला!

'शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजं'।

ऐसे ही भगवान् कभी सांवरे बनकर निकलते हैं और कभी गोरे बनकर निकलते हैं। अब महाराज, पढ़े-लिखे लोग तो भगवान्‌की ही परीक्षा करने लग जायँ। इसलिए भगवान्‌के लिए बहुत पढ़ने-लिखने जरूरत नहीं; प्रेमकी, भावकी जरूरत होती है। बस, प्रह्लादके मुँहसे बारम्बार **'व्याजहारासकृद् द्विज'**—यही निकले, विष्णवे नमः, विष्णवे नमः।

भगवान्‌को सामने प्रकट देखकर प्रह्लादजी बोले कि हे प्रभु, आप अपनी प्रेम भरी नजरसे मुझे देखकर मुझे पवित्र कीजिये। आपकी नजर जिसके ऊपर पड़ जाती है, वह पावन हो जाता है। उसके देखनेसे फिर दूसरे पवित्र हो जाते हैं। इसलिए, आप अपनी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर पवित्र कर दीजिये।

प्रह्लादजीको भगवान्‌का दर्शन हुआ। यह बात मैं कई बार दोहराता हूँ कि जिसका दर्शन मनमें हो सकता है, उसका दर्शन आँखसे भी हो सकता है। क्योंकि आँख तो बाहर लगाये हुए मशीनकी तरह है। देखनवाला तो मन ही है। तो जब मन परमेश्वरमें तन्मय हो जाता है, तब परमेश्वरका दर्शन होने लगता है। ये जितने महात्मा हुए हैं—वल्लभाचार्यने भी लिखा है कि हमको भगवान्‌के दर्शन हुए, चैतन्य महाप्रभुने भी कहा है कि हमको भगवान्‌के दर्शन हुये, श्रीरामानुजाचार्यने कहा है कि हमको भगवान्‌के दर्शन हुये। सूर, तुलसी, मीरा—सबको दर्शन हुये। कहें कि ये तो झूठे हैं, हम सच्चे हैं, दर्शन नहीं होता है। तो यह कहनेवाला ही गलत है। भगवान्‌का दर्शन इन्हीं आँखोंसे होता है। इसी जीभसे भगवान्‌से बातचीतकी जाती है।

यही हृदय भगवान्‌के हृदयके साथ लगता है। इसी जीवनमें भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

प्रह्लादको दर्शन हुए। बोले, 'महाराज, आप प्रेमभरी दृष्टिसे हमारी ओर देखिए!'

ये नृसिंह भगवान नहीं हैं। ये पीताम्बरधारी भगवान् प्रह्लादके सामने प्रकट हुए हैं। बोले कि तुमने मेरी अव्यभिचारीणी भक्ति की है प्रह्लाद! एक क्षण इधर, एक क्षण उधर नहीं। 'भक्ति रसामृत सिन्धु' में वर्णन आया है कि जब बलराम और श्रीकृष्ण दोनों मथुराकी सड़क पर ग्वाल-बालोंके साथ नाचते, गाते, बजाते हुए चले तो दोनोंकी मण्डली मण्डलाकार नाचती हुई चल रही थी। तो कभी श्रीकृष्ण नाचते हुए सामने आ जाते और कभी बलराम जी आ जाते। तो मथुराकी जो स्त्रियाँ थीं, वे छज्जों पर चढ़-चढ़कर देखती थीं। तो जब उनके सामने श्रीकृष्ण नाचते हुए आते, तब तो कहतीं कि बस, हमको तो यही चाहिए। यही बड़ा प्यारा है। और, जब श्रीकृष्ण आँखसे ओझल हो जाते, बलरामजी दिखने लगते तो कहने लगतीं कि बलरामजी बड़े प्यारे हैं, बड़े अच्छे हैं, हमको तो यही चाहिए। तो व्यभिचारिणी-भक्तिके रूपमें यह उदाहरण दिया हुआ है कि उनके मनमें जो प्रेम था वह कभी बलरामसे तो कभी कृष्णसे! उनकी जो प्रीति थी वह व्यभिचारिणी थी। राम और कृष्णमें भेद था। रामको देखकर रामपर मोहित, कृष्णको देखकर कृष्णपर मोहित।

भगवान्‌ने प्रह्लादसे कहा कि तुम्हारी भक्ति अव्यभिचारिणी है, उसमें किंचित् भी व्यभिचार नहीं है। मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब प्रह्लाद तुम्हें जो वर-चाहिए, सो मुझसे माँग लो!

अब प्रह्लादजी क्या वर माँगते हैं, इसकी चर्चा कल करेंगे!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

देखो, आत्मा अजर हो, अमर हो, यह वरदान माँगना बिलकुल गलत है। क्यों? अरे, वह तो अजर, अमर है-ही-है। पिसे हुएको क्यों पीसना? कि वह नित्य हो, स्वयं-प्रकाश हो, ब्रह्म हो—यह सब माँगना लेना-देना बेकार है। अरे, जो खुद ही है, उसको क्या माँगना? तब माँगना क्या? असलमें हृदयका जो परिवर्तन है, हृदयकी जो बनावट है, वह माँगनेकी है। तो जब भगवान्‌ने प्रह्लादजीसे वर माँगनेको कहा तो वे बोले,

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

(वि.पु. १.२०.१८-१९)

प्रह्लादजी कहते हैं, 'आप हमारे स्वामी है,' नाथ-हैं-नाथ। जैसे बैलकी नाकमें नाथ लगा करके किसान अपने हाथमें रखता है, वैसे ही आप सम्पूर्ण जीवोंको अपने वशमें रखनेवाले स्वामी हैं। 'नाथ' कहते हैं स्वामीको। 'नाथ' कहते हैं जिससे हम प्रार्थना कर रहे हैं उसको। जिससे कुछ माँग रहे हों उसको भी 'नाथ' कहते हैं और जो कभी-कभी हमको सतावे उसको भी 'नाथ' कहते हैं। कभी-कभी स्वामीकी ओरसे ऐसी क्रिया भी आती है जो हमको पसन्द न हो, लेकिन वे तो हमारे मालिक हैं, वे दुःख दें तो दुःख सह लें और सुख दें तो सुख सह लें। तो 'नाथ' माने जो कभी गर्म करे, कभी ठण्डा करे, कभी अनुकूल हो, कभी प्रतिकूल पड़े; कभी डाँटकर काम ले और कभी प्रशंसा करके काम ले, कभी काममें भूखा रखनेकी भी परवाह न करे और कभी खूब खिला-पिला कर काम ले—नाथ-हैं-नाथ!

तो '**नाथ योनिसहस्रेषु**'—हे स्वामी, तुम हमें चाहे स्वर्गमें भेजो; चाहे नरकमें भेजो, चाहे हमें तुम जीवन दो चाहे मृत्यु दो; चाहे हमारे मनकी करो, चाहे हमारे मनकी कुछ भी मत करो, चाहे अपने पास रखो, चाहे अपनेसे दूर रखो—'**मत्प्राण नाथस्तु नापरः**'—मेरे स्वामी तो तुम हो, तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई मेरा नहीं है!

हाँ भाई, स्वामी तो हैं परन्तु, तुम्हारे कर्म भी तो तुम्हारे साथ लगे हुए हैं—कर्मके अनुसार पता नहीं कहाँ-कहाँ तुम्हें जाना पड़ेगा? ठीक है मालिक जहाँ भेज दे वहाँ हम जानेको तैयार हैं। परिवर्तन तो होता ही है, जो मालिक होता है वह चाहे जहाँ सेवकको भेज सकता है। बोले कि नहीं, हम तो यहीं ठहरेंगे। आपने सुना होगा कि एक गुरुजीके दो शिष्य थे; बोले—हम गुरुजीकी सेवा करेंगे, पाँव दबायेंगे। बोले—अच्छा बाँट लो कौन-सा पाँव किसका, कौन-सा पाँव किसका। बाँट लिया। अब बाँए पाँव वालेने कहा कि देखो गुरुजी, इनके वाला पाँव हमारे वाले पाँवके ऊपर चढ़ गया। 'अरे भाई, पाँव तो दोनों ही हमारे हैं'। नहीं-नहीं, यह कैसे आया और उठाया डण्डा और पाँव पर मार दिया। तो, ऐसे जो सेवक होते हैं जो गुरुजीके पाँवको तो मान लें अपना और उसको पकड़ करके लड़ाई करें असलमें वे सेवक नहीं होते।

असलमें—मालिक हैं भगवान्! वे जब, जहाँ, जिसको रख दें, भेज दें, जैसे रखें—व्रजके महात्मा लोग बोलते हैं—***जैसे राखौं वैसे हि रहौं***—हे प्रभु, तुम हमको जैसे रखते हो वैसे हम रहते हैं—

ज्योंहि ज्योंहि रखियत हो त्योंहि-त्योंहि रहियत हों हे हरि!

श्री हरिदासजी महाराज कहते हैं कि हे प्रभु, आप हमको जैसे-जैसे रखते हैं वैसे-वैसे ही हम रहते हैं। इसमें देखो कितनी भक्ति है कि भगवान् जैसे रखते हैं वैसे हम रहते हैं। लेकिन इसमें सांख्यकी असङ्गता भी है—देहसे, इन्द्रियसे, मनसे, प्राणसे चाहे जैसा रक्खा जाय मैं तो उससे असङ्ग हूँ, इसमें वेदान्तकी जीवन्मुक्ति है—न मै, न

मेरा सब कुछ तेरा। यह कहनेके लिए भक्ति है, लेकिन इसमें तो सांख्य और वेदान्त दोनों मिले हुए हैं।

अच्छा भाई, कभी मालिकका घोड़ा बनना पड़े तो? हाँ, बन जायेंगे। कभी पलंग बनना पड़े तो? कभी जूता बनना पड़े तो? कि बन जायेंगे। एक साईं थे हमारे वृन्दावनमें, कभी-कभी यमुना किनारे घूमनेके लिए जाते। मैं भी जाता। तो हमारे बैठनेके आसनके लिए तो वे अपना चदरा बिछा देते, अब तकिया वहाँ कहाँ मिले, तो उनका एक सेवक था अभी जिन्दा है, पूरण उसका उसका नाम है—उसको कहते कि तुम लेट जाओ तो स्वामीजी तुमको तकिया बना कर लेट जायेंगे। इस तरह उनके चदरेका आसन बनता, उनके सेवकका तकिया बनता और वे हमारे साथ बैठकर सत्सङ्गकी चर्चा किया करते। तो वह व्यक्ति स्वामीका सेवक हुआ। तो सेवक कौन? यदि स्वामी कहे—भगवान् कहे कि तुम कोयल बन कर कुहू-कुहू करो तो वह गाने लग जाय। जब वह कहे कि तुम कुत्तेकी तरह पहरेदारी करो तो पहरेदारी करने लग जाय; तुम घोड़ा बनो हम तुम्हारी पीठ पर चढेंगे, तो घोड़ा बन जाय। हजारों योनि हैं—जो भगवान् बना दें। एक माता कहतीं—संत तुम मेरे घर पधारो मैं परवलका साग बन जाऊँगी तुम खाना, संत तुम हमारे घर पधारो मैं कचौड़ी बन जाऊँगी और तुम हमको खाना—यह भक्तकी, एक प्रेमीकी इच्छा है कि भगवान् जैसे रक्खें वैसे रहें!

नाथ योनि सहस्त्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।

भगवान् दैत्य बना दें तो दैत्य बन गये—वृत्रासुर बन गये, प्रह्लाद बन गये; देवता बना दें देवता बन गये; मनुष्य बना दें मनुष्य बन गये। हुक्मी कि रकमी? तुम हुक्मके अनुसार चलते हो कि रकमके मालिक हो? तुम हुक्मी हो कि रकमी हो? गुरु साहबने बताया है कि जो मालिकके हुक्मको बूझ लेता है—जो अपने स्वामीके आदेशको ठीक-ठीक समझ जाता है उसीके प्रशासनमें चन्द्रमा चलता है, सूर्य चलता है,

समुद्र चलता है, वायु चलती है—सारा जीवन-मृत्यु भगवान्‌के आदेशमें है। ये सूर्य-चन्द्रमा सब उसीके अनुसारमें चलते हैं—जहाँ भेजें वहाँ जानेको तैयार! अब यदि बोले कि नहीं-नहीं, हम यह काम नहीं करेंगे—हम रसोई तो बना सकते हैं, बना लेंगे लेकिन परसनेका काम हम नहीं करेंगे; हम परस तो सकते हैं लेकिन रसोई नहीं बना सकते; हम पंखा तो झल सकते हैं लेकिन झाड़ू नहीं लगा सकते—यह सेवकका धर्म नहीं है! सेवकका धर्म है कि जैसे स्वामी रखें वैसे ही रहना। जिस वेषमें रखें, जिस देशमें रखें, जिस काममें रखें—खुश होकर मालिकका काम करना। इस दुकानमें रखता है कि उस दुकानमें रखता है—उसकी मौज है, मालिक वह है हम मुनीम हैं। कभी आदेश आया कि इस दुकानका पैसा उस दुकानमें भेज दो!—बोले कि ना-ना, हम नहीं भेजेंगे, हम तो इसी दुकानमें रखेंगे,ऐसा नहीं हो सकता। मालिक तो भेज देगा, फिर तुमको रोना पड़ेगा! तुम मुनीमकी तरह काम करो।

नाथ योनि सहस्त्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।

सब कुछ करनेको तैयार!

हे अच्युत, आप हमारे स्वामी हो और अपनी निष्ठासे आप डिगनेवाले नहीं हो—अच्युत हो। आप कभी विचलित होवोगे नहीं, आप कभी डिगोगे नहीं, आपका मन तो कभी बदलेगा नहीं—अच्युत हो आप। तो हे मालिक, एक अच्युतता हमको दे दो। क्या? कि तुम अच्युत मालिक हो और हम अच्युत भक्त हो जायँ—हमारी भक्ति अच्युता हो जाय, हमारे दिलसे सरक कर कहीं न जाय। कहीं भी रहें हम—रणमें रहें, वनमें रहें, घरमें रहें; संयोगमें रहे वियोगमें रहें; सुखमें रहें दुःखमें रहें—जहाँ भी हम रहें जैसे भी रहें, जब भी रहें, जो भी रहें वहाँ-वहाँ तुम्हारी भक्ति हमारे मनमें अच्युत बनी रहे! एक क्षणके लिए भी—जैसे आम पेड़परसे चू जाता है, जैसे फूटे बर्त्तनमेंसे पानी चू जाता है वैसे हमारे हृदयमें जो तुम्हारे प्रति प्रीति है, प्रीतिका

रस है वह कहीं चू न जाय, च्युत न हो जाय, गिर न जाय। आप अपने स्थानसे कभी च्युत नहीं होते हमारी भक्ति भी हर हालतमें आपके साथ बनी रहे!

हे अच्युत! मैं जहाँ भी रहूँ, मेरे हृदयकी भक्ति आपके प्रति अच्युत रहे!

फिर बोलते हैं कि भक्ति कैसी हो–

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

भक्ति समझदार आदमीवाली भक्ति न हो। यह सोच-समझकर जो लोग प्रीति करते हैं, वे तो फायदा उठाने लगते हैं। तुलसीदासजीने वर्णन किया है,

सेवत लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं॥

अज्ञानी-पुरुष जैसे अपने शरीरकी सेवा करता है, वैसी सेवा भगवान्‌की होवे। चतुर लोग सेवा नहीं कर सकते। चतुर लोग घूम-फिरकर अपनी सेवा करते हैं। अपना सुख, अपनी सुविधा देखते हैं। तो सेवा, भक्ति कैसी होनी चाहिए?

कामीहि नारी पियारी जिमि, लोभीहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहुँ मोहि राम॥

'या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी'–अविवेकी लोग किससे प्रीति करते हैं? विषयोंसे।

'कुरंग मातंग पतंग भृंग मीनः हतः पञ्चभिरेव पञ्च'।

तो अविवेकी लोग विषयोंसे प्रीति करते हैं। हमेशा उनको सुननेके लिए बढ़िया शब्द चाहिए, छूनेके लिए बढ़िया स्पर्श चाहिए, देखनेके लिए सुन्दर-सुन्दर रूप चाहिए, चखनेके लिए मधुर-मधुर रस चाहिए, सूँघनेके लिए सुन्दर सुगंध चाहिए। उसीमें वे रमते रहते हैं।

तो जैसे संसारके मूर्ख, जड़, अज्ञानी लोग विषयोंमें निरन्तर

रमे रहते हैं, '**त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु**'—हे प्रभु, मैं आपका निरन्तर स्मरण करता रहूँ और वह प्रेम मेरे हृदयसे हटे नहीं। '**मापसर्पतु**'—हे माप, सा प्रीति सर्पतु—वह प्रेम हमेशा आपके साथ बना रहे और विषयोंके प्रति जो प्रेम है वह हे लक्ष्मीपते, हे माप, हमारे हृदयमे न रहे।

भगवान्ने प्रह्लादसे कहा—'प्रह्लाद तुम्हारे हृदयमें तो हमारी भक्ति है ही और रहेगी भी। कोई दूसरा वर माँगो!'

हिरण्यकशिपुके जो विपक्षी हैं देवता-लोग, उनकी सभामें जब कभी चर्चा चलती थी कि भक्त कैसा होना चाहिए, तो वे कहते थे कि हिरण्यकशिपु पुत्र प्रह्लाद जैसे हैं वैसी भक्ति '**प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः**'। शत्रु लोग भी प्रह्लादकी भक्तिकी प्रशंसा करते थे।

भक्तिकी एक पहचान है—आपको मजा कहाँ मिलता है? आपको खानेमें मजा मिलता है कि पीनेमें मजा मिलता है कि देखनेमें मजा मिलता है कि पैसा कमानेमें मजा मिलता है कि भोग भोगनेमें मजा मिलता है? अपने मजाको पकड़िए। यदि भगवान्का नाम लेनेमें, भगवान्का स्मरण करनेमें, भगवान्का ध्यान करनेमें, भगवान्की पूजा करनेमें, भगवान्की कथा सुननेमें आपको मजा आता है तो समझो कि आपके हृदयमें भक्तिका अंकुर जग रहा है।

भगवानने प्रह्लादसे कहा कि प्रह्लाद, तुम्हारे हृदयमें भक्ति है और यह भक्ति बनी रहेगी। आगे भी रहेगी। लेकिन प्रह्लाद तुम मुझसे कुछ और माँगो।

असलमें देनेवालेको जब तृप्ति हो जाती है कि हमने बहुत कुछ दिया तो वह दाता नहीं है। भगवान् तो अति उदार हैं। वे तो अपने आपको भी दे देते हैं। संसारी लोग तो देनेमें अतिकृपण हैं। चीजमें-से भी ऐसी चीज देते हैं जो घरमें निकम्मी होती है। घरमें पड़ा है, बोले कि चलो दे आओ! घरमें जगह रोकती है, वहाँ दे देंगे तो जगह खाली हो

जायेगी! तो अपनी चीज देनी हो तो जो अपने ऊपर बोझ हो सो नहीं दी जाती है, जो अपनी प्यारी वस्तु है सो दी जाती है और प्यारी वस्तुसे भी बढ़िया क्या है? बोले कि अपनेको देना। भगवान् बोले कि प्रह्लाद, और लो, और लो!

अब प्रह्लादने जो दूसरा वर माँगा, वह बड़ी विचित्र बात है। वे बोले कि,

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत्संस्तुतावुद्यते तव।
मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु॥
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यद्याग्निसंहतौ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने॥
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे॥
त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्संभवं च यत्।
त्वात्प्रसादात्प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता॥

(वि.पु. १.२०.२१-२४)

'हे प्रभु, मैं आपका भक्त हूँ—यह तो आपने भी हमको प्रमाण पत्र दे दिया कि मेरे हृदयमें भक्ति है और आगे भी बनी रहेगी। अब प्रश्न यह है कि जब-जब मैं आपकी स्तुति करनेके लिए उद्यत होता था, तब-तब मेरे पिता मेरे ऊपर बहुत क्रोध करते थे और मुझसे द्वेष करते थे। देखो, भगवान्‌से द्वेष करनेमें कोई पाप नहीं है। भगवान्‌से कोई सद्या द्वेष करे तो भगवान्‌से मिल जाय। लेकिन भगवान्‌के भक्तसे द्वेष करना बड़ा भारी पाप है।'

जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

भक्तका अपराध नहीं होना चाहिए।अपने जीवनमें भगवान्‌का कोई अपराध होता है तो भक्तलोग उसको क्षमा कर देते हैं। लेकिन, भक्तका अपराध हो जाय तो कौन क्षमा करे? भगवान् तो क्षमा नहीं

करते हैं। तो प्रह्लादजीने कहा कि मैं आपका भक्त—यह आपने प्रमाणित कर दिया और मुझसे द्वेष किया मेरे पिताने। मेरे ऊपर अस्त्र-शस्त्र डाले, मुझे आगमें गिरा दिया और साँपोंसे हमको डँसवाया, हमारे भोजनमें जहर दिया, हमको बाँधकर समुद्रमें डाल दिया, हमारे ऊपर पहाड़ चुनवा दिये, और भी बहुत सारे काम हमारे पिताने किये। तो मैं हूँ आपका भक्त! इससे हमारे पिताजीको पाप लगा होगा, सो आप ऐसी कृपा कीजिए प्रभु कि उनका यह पाप छूट जाय और तत्काल छूट जाय!

देखो, ऐसा होता है भक्तका हृदय! जो अपनेसे दुश्मनी करनेवालेका भी कल्याण चाहता है। यह नहीं कि केवल अपने मित्रका कल्याण चाहता है, अपने बापका कल्याण चाहता है, अपने सेवकका कल्याण चाहता है! जो अपना दुश्मन है, जो अपना नुकसान करना चाहता है, उसका भी भला चाहता है। प्रभु, आप कृपा करो। हे प्रभु, मैं आपसे यह वरदान माँगता हूँ।

अच्छा, एक बात मैंने एक महात्मासे सुनी है कि यदि आपको मालूम पड़ता हो कि यह हमसे द्वेष करता है, हम तो उससे द्वेष नहीं करते हैं, तो आप रातको सोते समय रोज भगवान्‌की याद करके और प्रार्थना कीजिए कि हे प्रभु, वह चाहे जो करे, पर मैं तो उससे प्रेम ही करूँ। यह जो लोग क्रोधको, द्वेषको, बुराईको ढोते हैं, अपने हृदयमें बसा लेते हैं! हे भगवान्, कोई सच्चा आदमी अपने हृदयमें कैसे द्वेषको बसा सकता है! बोले कि नहीं, वह आदमी हमको बुरा नहीं लगता है, उसका काम बुरा लगता है! लो, यह और उपद्रव है! कर्ममें अच्छाई-बुराई कहाँ होती है? वह तो अपने मनमें जो कर्म बुरा बैठा दिया जाता है, वह बुरा लगता है और जो अच्छा बैठा दिया जाता है, वह अच्छा लगता है। वह तो कल्पनासे, संस्कारसे लगता है। कर्मकी वजहसे, भावकी वज़हसे किसीको अच्छा-बुरा समझना—यह तो अपनी समझमें बुराई हुई।

तो नारायण, हमारे हृदयमें किसीके प्रति—यह बुरा है, ऐसा भाव न हो और इसके मनमें जो रहा, उसको प्रभु क्षमा कर दो!

भगवान्‌ने कहा कि प्रह्लाद, जो तुम कहते हो वैसा ही हम करते हैं। तुम और वर माँगो। प्रह्लादने कहा, 'भगवन्! जिसे तुम्हारी भक्ति प्राप्त हो गयी, उसे और क्या चाहिए? उसे धर्म, अर्थ, कामका प्रयोजन नहीं, मोक्ष उसकी मुट्ठीमें है 'चाहे जिसको दें' और वह भक्ति मुझे प्राप्त हो गयी है। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए'।

भगवान् बोले कि प्रह्लाद, मेरी निश्चल भक्ति तुम्हारे हृदयमें रहती है, इसलिए तुमको निर्वाण भी प्राप्त होगा। मोक्षकी प्राप्ति होगी। इतना कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गये।

पुराणोंका कहना है कि ये राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि भगवान् किसीको पाँच मिनट दर्शन देते हैं, किसीको दस मिनट, किसीको आधा घंटा तो किसीको घंटे भर और दर्शन देकर, बातचीत कर, मिलजुलकर चले जाते हैं। उनकी भक्ति तो भक्तके हृदयमें हमेशा रहती है।

भक्तिसे प्रेम करना चाहिए, भक्तिको अपने हृदयमें रखना चाहिए। भगवान्‌को हर समय आँखके सामने रखनेकी जरूरत नहीं है। विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गये और प्रह्लादने आकर फिर हिरण्यकशिपुके चरणोंकी वन्दना की।

इसबार प्रह्लादमें कुछ ऐसा आकर्षण आगया था कि हिरण्यकशिपु उनका विरोध करनेमें हिचकता था। दूसरी ओर प्रह्लादकी माता कयाधू-का भी बड़ा आग्रह था कि अब बहुत हो गया, जाने दो आखिर अपना ही लड़का है न! जैसे रहे, वैसे रहने दो! वह पुत्रस्नेहके कारण व्यथित रहती थी। उसने प्रह्लादको भी कई बार समझाया, पिताके अनुकूल होकर रहनेकी सलाह दी, परन्तु प्रह्लाद अपनी धुनके पक्के थे, वे भजनके विपरीत किसीकी सलाह नहीं सुनते थे। ऐसी आपत्तिसे वे बेदाग लौट आये थे, सो सब लोग उनकी बात मानने लगे थे। उनके सहपाठी जो

छात्र थे, वे अब घर आगये थे और उनकी बातों पर बड़ी श्रद्धा करते थे। प्रह्लादके प्रभावसे हिरण्यपुरीमें भक्तिका खूब प्रचार हुआ।

पर, भगवान्‌की लीला भी क्या अद्‌भुत है! वे कब, कैसे, क्या करना चाहते हैं, इसे वही समझ सकते हैं, दूसरा कोई समझ नहीं सकता। मङ्गलमें अमङ्गल और अमङ्गलमें मङ्गल पैदा कर देना तो उनका मनोरञ्जन है, नित्यका खिलवाड़ है। एक दिन हिरण्यकशिपुने बड़ा भयंकर स्वप्न देखा था। शुक्राचार्यने तीर्थयात्रासे लौटकर हिरण्यकशिपुको अनिष्टकी सूचना दी। उसका मन चिन्तित था। वह कभी भयभीत होकर आकाशकी ओर देखने लगता, तो कभी अपने बल-पौरुषकी यादकरके घमण्डसे फूल उठता। कभी अपने आप ही बड़बड़ाने लगता कि कौन करेगा मेरा अनिष्ट! मैं उसे देखूँगा! विष्णु! वह तो भागा फिरता है। मेरे डरसे छिपा हुआ है! वह मेरे सामने आ ही नहीं सकता। आ जाय तो उसे मजा चखाऊँ! यही सब न जाने क्या-क्या बक रहा था वह!

इतनेमें ही किसीने आकर घर-घर संकीर्तन और मूर्तिपूजाकी बात सुनायी। एक तो वह पहलेसे ही भयभीत था, उत्तेजित था, दूसरे यह बात भी आज ही उसके कानमें पड़ी। वह आगबबूला हो गया। उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ छिटकने लगीं। उसने कहा—'प्रह्लादको बुलाओ! देखूँ, उसका विष्णु कहाँ है? आज उसकी रक्षा कैसे करता है? अब तक मुझसे पाला नहीं पड़ा था, मैं अपने हाथों ही उसकी खबर लूँगा!'

प्रह्लाद उपस्थित किये गये। प्रणाम करके अञ्जलि बाँधे हुए वे सिर नीचा करके खड़े हो गये। हिरण्यकशिपुने तिरछी नजरसे देखा। पैरसे मारे हुए साँपकी भाँति वह खलबला उठा। लम्बी सांस चलने लगी। उसने डाँटते हुए कहा—'ढीठ! नीच! कुलकलंक! मैंने समझा था अब तू विष न बोयेगा। मेरे राज्यमें रहकर मेरी आज्ञाकी अवहेलना? मैं अभी तुम्हें यमराजके घर भेज दूँगा! बोल, तूने किसके बलबूते पर मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है? प्रह्लादने बड़े विनम्र भावसे हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

न केवलं मे भवतश्च राजन् सवै बलं बलिनां चापरेषाम्।
परेऽवरेमी स्थिरजङ्गमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः॥

(भा. ७.८.८)

राजन्, ब्रह्मासे लेकर तिनके तक सब छोटे-बड़े चर-अचर जीवोंको भगवान्‌ने अपने वशमें कर रखा है। सबके भीतर एक ही परमेश्वरका बल है। उसकी दृष्टिमें ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्य-शूद्रका, देवता-दैत्यका, धर्मात्मा-पापात्माका कोई भेद नहीं है। वही सबकी आत्मा है। मेरा बल भी वही है, आपका बल भी वही है, सबका बल भी वही है।

यह सुनकर हिरण्यकशिपु और भी जलभुन गया। वह बोला—कहाँ है तेरा ईश्वर? तुमको दिखा! यदि वह सब जगह है तो इस खम्भेमें कहाँ है? इतना कहकर उसने अपनी सभाके एक खम्भेको जोरसे घूँसा मारा।

अब तो वह खम्भा तड़तड़ाकर टूट गया। उसमें-से नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये। दक्षिणमें ऐसा बोलते हैं कि भगवान्‌ने अपने भक्तके लिए लकड़ीको बाप बना लिया। उनके प्रकट होने पर हिरण्यकशिपुने उनसे युद्ध किया। अन्तमें नृसिंह भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको पकड़ लिया और उसको दरवाजे पर ले गये—वह न बाहर था, न भीतर था। उसको घुटनों पर सुला लिया—वह न ऊपर था, न नीचे था। उस समय सायंकाल था—न दिन था, न रात थी। इसके अतिरिक्त नृसिंह भगवान् न मनुष्य थे, न पशु थे और न ही ब्रह्माके बनाये थे। हिरण्यकशिपुने अपने वरदानमें जितनी शर्तें ब्रह्माजीके समक्ष रखीं थीं, सब पूरी हो गयीं। नृसिंह भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको किसी अस्त्र-शस्त्रसे नहीं मारा, पंजेसे ही उसका पेट फाड़ दिया और उसकी अंतड़ियोंको मालाकी तरह पहन लिया। उस समय ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ, जो त्रिलोकमें अद्‌भुत था, विचित्र था। नृसिंह भगवान् क्रोधमें ही हिरण्यकशिपुके सिंहासन पर बैठ गये।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि नृसिंह भगवान् हिरण्यकशिपुके सिंहासन पर क्यों बैठे? इसलिए बैठे कि सिंहासनपर प्रह्लादको बैठाना है। फिर वे हिरण्यकशिपुके उच्छिष्ट सिंहासनपर प्रह्लादको कैसे बैठाते? इसलिए उन्होंने पहले उसपर बैठकर उसको अपना प्रसाद बना दिया।

बात-की-बातमें सारा समाचार तीनों लोकोंमें फैल गया। देवता लोग पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि वहाँ उपस्थित हुए। भगवान्‌के तेजसे त्रिलोकी जल रही थी। उनके बालोंसे बादल गिर रहे थे, श्वास से समुद्र क्षुब्ध हो रहा था, घरघराहटसे डरकर दिग्गज चिल्ला रहे थे। सारे संसारमें हाहाकार मचा हुआ था। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, पितर, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर आदिने आ-आकर पृथक्-पृथक स्तुति की; किन्तु किसीकी हिम्तत न पड़ी कि उनके पास जाय। यहाँ तक कि लक्ष्मी जी भी भगवान्‌का यह रौद्ररूप देखकर भयभीत हो गयीं। सो जब ब्रह्माजीने देखा कि भगवान्‌का क्रोध शान्त करनेमें कोई सफल नहीं हुआ तो उन्होंने प्रह्लादसे कहा कि बेटा, जरा देखो तो! नृसिंह भगवान् तुम्हारे पिता पर रुष्ट हुए हैं! इसलिए तुम उनके पास जाकर उनको शान्त करो!

प्रह्लाद तो न जाने कबसे लालायित थे। उनके प्रभु चाहे जितने भयंकर वेशमें आवें, वे उन्हें पहचानते हैं। वे प्रेम गद्‌गद् होकर उनके पास चले गये और अञ्जलि बाँधकर चरणोंमें लोट गये। नृसिंह भगवान्‌ने तुरन्त उनको उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया। उनकी आँखें सुकुमार हो गयीं और वे जीभसे प्रह्लादको चाटने लगे। फिर बोले, 'प्रह्लाद, कहाँ तो तेरा यह सुकुमार शरीर, कहाँ तेरी यह छोटी-सी उम्र और कहाँ इस क्रूर असुर द्वारा तुमको दी गयी कठोर यातनाएँ! प्यारे प्रह्लाद, मेरे आनेमें विलम्ब हो गया, मुझे क्षमा करो!'

नृसिंह भगवान्‌की यह बात सुनकर तथा उनके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर प्रह्लादकी दशा ही बदल गयी। वे परमानन्दमें मग्न हो गये। शरीर पुलकित हो गया आँखोंमें आँसू भर गये, हृदय द्रवित हो गया। थोड़ी देरमें सम्भलकर वे एकाग्र मनसे हृदय और आँखोंको नृसिंह भगवान्‌के दर्शनमें लगाकर प्रेमभरी वाणीसे स्तुति करने लगे।

प्रह्लादने कहा—'प्रभो! मैं आपका स्वभाव जानता हूँ। किसीके पास चाहे जितना भी धन हो, कुलीनता हो, रूप हो, तप हो, विद्या हो, ओज हो, तेज हो, प्रभाव हो, बल हो, पौरुष हो, बुद्धि हो, भोग हो—इन बारह गुणोंसे युक्त कोई ब्राह्मण ही क्यों न हो, आप उसके ऊपर सन्तुष्ट नहीं होते। लेकिन यदि नीच-से-नीच व्यक्तिके हृदयमें आपकी भक्ति हो तो आप उससे सन्तुष्ट हो जाते हैं। गजेन्द्रपर आप सन्तुष्ट हो गये। मैं भी कितना दीन-हीन, गुणहीन, जातिहीन, ज्ञानहीन हूँ; लेकिन मुझ पर आपकी इतनी कृपा है!'

'प्रभो! बहुतसे लोग आपके इस भीषण रूपको देखकर भयभीत हो गये; परन्तु मैं तो देख-देख कर प्रसन्न हो रहा हूँ। आप तो हमारे परम प्रेमास्पद हैं, भयास्पद नहीं। मैं डरता हूँ तो केवल इस संसारसे। यह अपने चक्करमें डालकर मुझे न जाने कहाँ ले जाना चाहता है। मैं आपकी शरण लेता हूँ प्रभो! आप मुझे अपना दास स्वीकार कीजिए। मैं आपकी लीला गा-गाकर अपने जीवनको बिताऊँ, यह आशीर्वाद दीजिए।'

स्वर्गमें क्या रखा हुआ है। मैंने तो अपनी आँखोंसे देखा है कि मेरे पिता हँसी-हँसीमें क्रोधित होकर जब भौंहे टेढ़ी कर देते, तब देवता लोग भाग-भागकर जंगलोंमें शरण लेते थे। ऐसे क्षणिक और भयपूर्ण स्थानके लिए इच्छा ही क्यों करनी चाहिए? हे प्रभो! मैं तो आपके भक्तोंकी संगति चाहता हूँ।

वैसे श्रीमद्‌भागवतमें भगवान्‌के स्वरूप, सौहार्द और गुण-

लीला-चरित्र आदिका वर्णन करनेवाली बहुत सारी स्तुतियाँ हैं—जैसे भीष्मस्तुति, ब्रह्मस्तुति, अक्रूर-स्तुति, वेदस्तुति आदि। परन्तु, भगवत्-तत्त्वका निरूपण करनेवाली प्रह्लाद स्तुति अद्भुत है!

प्रह्लाद बोले कि महाराज, ज़ब यह अनुभव हो जाता है कि भगवान्‌के सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है तब कुछ बोलनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती—

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात्॥

(भा. ७.९.४९)

देखो, सामाजिक दृष्टिकोण अलग है, राजनीतिक दृष्टिकोण अलग है, भौतिक दृष्टिकोण अलग है और वैदिक दृष्टिकोण अलग है। परन्तु, भगवद्-भाव सम्बन्धी दृष्टिकोण ऐसा है जिसमें स्पर्द्धा नहीं होती, गुणों सम्बन्धी दोष-दर्शन नहीं होता, किसीका तिरस्कार नहीं होता और अहंकार नहीं होता। भगवद्-भावमें ऐसी अनुभूति होती है कि शरीरसे सर्वात्मा भगवान्‌की सेवा हो रही है, सारी इन्द्रियाँ उनके अनुभवमें लगी हैं, मनमें उनके प्रति सद्भाव है, बुद्धि विवेकसे परिपूर्ण है और अहंता गल गयी है। इस प्रकार परमात्मासे एक होकर महात्मालोग सर्वावस्थामें सर्वत्र परमात्माका दर्शन करते हैं। उनके मनमें कभी किसी प्रकारका विकार नहीं होता, इसलिए उनको कुछ बोलनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती।

अपने भक्तकी मधुरवाणी सुनकर भगवान् प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने कहा—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुमपर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो। मेरे दर्शनके पश्चात् किसी बातका ताप-संताप नहीं रह जाता'। भगवान्‌की यह प्रलोभन-वाणी सुनकर प्रह्लादका मन तलिक भी विचलित नहीं हुआ। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—

अहं त्वकामस्त्वदक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव॥

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥ भा. ७.१०.६-७

प्रभो, आप मुझे वर माँगनेके लिए कहते हैं। लेकिन मैं क्या आपसे इसलिए प्रेम करता हूँ कि मुझको आपके द्वारा वर प्राप्त हो! आप भी क्या मुझसे कोई सेवा लेनेके लिए मुझको अपना सेवक समझते हैं! नहीं-नहीं, मैं तो आपका निष्काम-सेवक हूँ और आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। जैसे राजा और उसके सेवकका परस्पर स्वार्थवश सम्बन्ध रहता है, वैसा सम्बन्ध मेरा-आपका नहीं है। फिर भी यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो ऐसा वर दीजिए, जिससे मेरे हृदयमें वरदान माँगनेकी कोई कामना ही न उठे।

प्रह्लादके वचन सुनकर नृसिंह भगवान्ने कहा—'प्रह्लाद! वास्तवमें जो तुम्हारे जैसे मेरे सच्चे भक्त हैं, वे कभी लौकिक या पारलौकिक-वस्तु मुझसे नहीं चाहते। फिर भी एक मन्वन्तरके लिए मैं तुम्हें दैत्योंका राजा बनाये देता हूँ। डरो मत! मेरी कथा सुनते रहना। सर्वत्र मुझे देखते रहना और मेरी आराधनासे प्रारब्धकर्मको नष्ट करते रहना। पुण्योंका भोग कर लो। ज्ञानसे पापोंको नष्ट कर दो। असार संसारमें मेरी भक्तिका प्रचार करो'!

प्रह्लादने आगे कहा कि प्रभो, यदि आप मुझे वर देना अनिवार्य समझते हैं तो मेरे पिता हिरण्यकशिपुने आपकी जो इतनी निन्दा की है, उसका मंगल हो जाय। मुझे इस बातकी चिन्ता है कि उनकी सद्गति हुई या नहीं?

नृसिंह भगवान्ने कहा—'प्रह्लाद! जिस वंशमें तुम्हारे जैसे भगवद्भक्तका जन्म होता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं, फिर हिरण्यकशिपु तो तुम्हारा पिता ही है, उसके सम्बन्धमें क्या कहना?' तदनन्तर शुक्राचार्य आदिके साथ नृसिंह भगवान्ने प्रह्लादका राज्याभिषेक किया और अन्तर्धान हो गये।

भगवान्‌के अन्तर्धान हो जानेपर उनके आज्ञानुसार प्रह्लाद राज-काज करने लगे। सृष्टिमें फिरसे मंगल हो गया।

यदि ठीक-ठीक राज्य किया जाय, उसमें अनुचितको आश्रय न दिया जाय, धर्मसे, न्यायसे, औचित्यसे राज्यका पालन किया जाय और प्रजाको धर्ममें, न्यायमें, उचितमें लगाया जाय तो राज्य करनेसे भी पवित्रताकी प्राप्ति होती है, कर्म और भोग शुद्ध होता है। प्रह्लादके पुत्र-पौत्र हुए, ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई।

जब उनके राज्याधिकारकी समाप्ति हो गयी और पुण्य-पाप दोनों नहीं रहा। पापसे दुःख मिलता है और पुण्यसे सुख मिलता है और दोनोंका भोग होता है। लेकिन, मोक्ष वह दशा है जिसमें न सुख रहता है, न दुःख रहता है—उस दशाको वे प्राप्त हो गये। निर्वाण की प्राप्ति हो गयी।

इसप्रकार यह प्रह्लादका जो चरित्र है, यह बड़ा प्रभावशाली चरित्र है और इनकी बुद्धि, इनका ज्ञान बहुत विलक्षण है। प्रह्लाद भगवान्‌के परम भक्त थे। इस चरित्रका जो श्रवण, वर्णन करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। एक बार मनुष्य प्रह्लाद-चरित्रका स्वाध्याय कर ले, उसके दिन-रातके पाप नष्ट हो जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं। पौर्णमासीके दिन, अमावास्याके दिन, अष्टमीके दिन, द्वादशीके दिन इसका पाठ करनेसे गोदानका फल प्राप्त हो जाता है। एक बात ध्यामें रखनेकी यह है कि

प्रह्लादं सकलापत्सु यथा रक्षितवान्हरिः।
तथा रक्षति यस्तस्य शृणोति चरितं सदा॥

(वि.पु. १.२०.३९)

जैसे हर तरहकी विपत्तिमें भगवान्‌ने प्रह्लादकी रक्षा की, वैसे ही उस पुरुषकी भी भगवान् रक्षा करते हैं, जो प्रह्लादके चरित्रका श्रवण करता है। इसका अर्थ है कि प्रह्लादके चरित्रका श्रवण करना चाहिए!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

पुस्तक नाम	मूल्य
वेदान्त	
मुण्डक सुधा	200.00
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण) भाग-1	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) भाग-2	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अद्वैत प्रकरण) भाग-3	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अलात शान्ति) भाग-4	100.00
ईशावास्य प्रवचन	60.00
ईशानुभूति (ईशावास्योपनिषद् के आधार पर)	45.00
केनोपनिषद्	150.00
कठोपनिषद् (दो भागोंमें)	250.00
बृहदारण्यकोपनिषद्	120.00
श्वेताश्वतरोपनिषद्	150.00
छान्दोग्य-बृहदारण्यक एक दृष्टिमें	40.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 1	100.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 2	100.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 3	215.00
दृग दृश्य विवेक	200.00
विवेक कीजिये (विवेक चूड़ामणि प्रवचन)	200.00
अपरोक्षानुभूति प्रवचन	120.00
वेदान्त बोध	110.00
साधना और ब्रह्मानुभूति	70.00
महाराजश्रीकी डायरीसे	60.00
आनन्द सूत्र	40.00
आनन्दानुभव	35.00
जीवन्मुक्ति विवेक	150.00
अष्टावक्रगीता	50.00
अष्टावक्रगीता प्रवचन	90.00
मिथ्यात्व ज्ञान	20.00
ध्यान और ज्ञान	90.00
गम्भीर चिन्तन	200.00
निगम चिन्तन	100.00

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-रस-रत्नाकर (सम्पूर्ण गीता)	200.00
सांख्ययोग (गीता अध्याय-2)	200.00
कर्मयोग (गीता अध्याय-3)	60.00
ध्यानयोग (गीता अध्याय-6)	150.00
ज्ञान-विज्ञान-योग (गीता अध्याय-7)	130.00
अक्षर ब्रह्मयोग (गीता अध्याय-8)	50.00
राजविद्या राजगुह्ययोग (गीता अध्याय-9)	90.00
विभूतियोग (गीता अध्याय-10)	175.00
भक्ति योग (गीता अध्याय-12)	90.00
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (गीता अ.-13)	250.00
पुरुषोत्तमयोग (गीता अध्याय-15)	120.00
दैवी-सम्पदयोग (गीता अध्याय-16)	50.00
दैनिक जीवनमें गीता	170.00
योग: कर्मसु कौशलम्	20.00
मामेकं शरणं ब्रज	45.00
गीतामें भक्तिज्ञान समन्वय	30.00
गीतामें मानवधर्म	25.00
वासुदेव: सर्वम्	10.00
मया ततमिदं सर्वं (मेरा सब ताना-बाना)	25.00
गीता दर्शन (तीन भागोंमें)	650.00

श्रीमद्भागवत

भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	600.00
ईशानुकथा (नवम स्कन्ध)	30.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
मुक्ति स्कन्ध (एकादश स्कन्ध) (दो भागोंमें)	270.00
रास पंचाध्यायी	150.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	80.00
भागवतामृत	150.00
भागवत व्यंजन	50.00
भागवत सर्वस्व	80.00
गोपीगीत	100.00
वेणुगीत	40.00
युगलगीत	50.00
प्रणयगीत	60.00
गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	20.00

उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	80.00
ब्रह्म-स्तुति	85.00
हंसगीता (हंसोपाख्यान)	15.00
सद्गुरुसे क्या सीखें ?	15.00
उनकी कृपा	20.00
ऊखल बन्धन लीला	50.00
सत्संग महिमा	20.00
प्रह्लाद चरित	170.00
उद्धव व्रजगमन	270.00
भागवत विमर्श (दो भागोंमें)	100.00
मानव जीवन और भागवत धर्म	100.00
गर्भ स्तुति	60.00
वसुदेव देवकी स्तुति	20.00
भागवत विचार दोहन	90.00
भिक्षुगीत	35.00
मैं ही मैं (चतुःश्लोकी भागवत)	40.00
सुदामा चरित	20.00

रामायण

श्रीरामचरितमानस (तीन भागोंमें)	1000.00
अध्यात्म रामायण	250.00
श्रीमद्वाल्मीकि रामायणामृत	100.00
मानस दर्शन	40.00
सुन्दरकाण्ड (वाल्मीकि रामायणान्तर्गत)	75.00
श्रीमद्वाल्मीकि रामायण	400.00

भक्ति एवं साधना

विष्णु पुराण	.00
भक्ति एवं लीला	60.00
नाम महिमा	25.00
भगवन्नाम	10.00
शरण	10.00
प्रार्थना	10.00
नारद भक्ति दर्शन	160.00
भक्ति सर्वस्व	185.00
भक्तिदर्शनामृत	50.00
भक्तिका चमत्कार	35.00
अवतार रहस्य	20.00
माधुर्य कादम्बिनी	30.00
शिव संकल्प सूक्त	50.00
कृष्ण-कृष्णके उच्चारणसे कृष्ण प्राप्ति	15.00
मोहनकी मोहनी	20.00
ध्यानके समय	20.00
हनुमत्स्तोत्र	30.00
सत्संग सुधा	20.00
प्रार्थना षट्पदी	40.00
साधन विचार	50.00
मंत्र विज्ञान	30.00
योगदर्शन	100.00
भगवान्के पाँच अवतार	50.00
विष्णु सहस्रनाम	65.00
भक्त-चरित	15.00
भक्ति : विशेषताएँ	10.00
आदित्य हृदय स्तोत्र	15.00
श्रीअखण्डानन्द स्तवः	6.00
ब्रह्ममूर्ति श्रीउड़िया बाबा	90.00
महाराजश्री-एक परिचय	25.00
सबके प्रिय सबके हितकारी	25.00
प्रेरक-प्रसंग	60.00
श्रीपूर्णानन्द तीर्थ स्तवः (चित्रावली)	100.00
श्रीगुरुदेव प्रातः स्मरणम्	35.00
भिक्षु स्वामी शंकरानन्द	20.00
पावन प्रसंग	150.00

विविध

आनन्दवाणी	80.00
आनन्द उल्लास	60.00

आनन्द बिन्दु	70.00
आनन्दवचनामृत	10.00
आनन्द वार्ता	10.00
आनन्द पत्रावली	60.00
आनन्द रस रत्नाकर	250.00
आनन्द प्रश्नोत्तरी	60.00
आनन्द मंजूषा	120.00
आनन्द जयन्ती	25.00
आनन्द रत्न	60.00
आनन्द-ही-आनन्द	25.00
आनन्द निर्झर	35.00
आनन्द कथामृत	70.00
व्यवहारशुद्धि	50.00
हृदयाकाशके हीरे	50.00
गुरुवाणी	30.00
श्री गुरवे नमः	20.00
आप सबसे श्रेष्ठ हैं	60.00
गृहस्थाश्रम धन्य है	30.00
जीवन-एक यात्रा	55.00
अमृत वाणी	25.00
व्यवहार और परमार्थ	55.00
ईश्वर दर्शन	60.00
आपका व्यवहार	20.00
अमृत महोत्सव	20.00
आपकी पसन्द	25.00
भारतीय संस्कृति	20.00
सत्यकी खोजमें	50.00
जिज्ञासा और समाधान	30.00
स्पन्द तत्त्व	15.00
प्रकाश स्तम्भ	100.00
(दैनिक कैलेण्डर :	
म.श्रीके चित्र-उपदेश)	
गुरु पूर्णिमा	10.00
सुखी रहो और सुखी रखो	30.00
सद्गुरु प्रसाद	40.00
आपके लिए	20.00
जीवनमें साधना	25.00
अब और आज	20.00
आइये विचार करें	30.00
संन्यास महोत्सव	25.00
चारु चिन्तन	.00

● अंग्रेजी (English) साहित्य ●

Anand Sutra (Teachings on bliss)	30.00
Bhagwatamrit	110.00
Bhagwat Sarvasva	60.00
Unki Kripa (His Grace)	25.00
Ishwar Darshan	
(God Realization)	15.00
Attainment of Krishna by	
Utterance of Krishna-Krishna	15.00
Anand Ullas	70.00
Indian Culture	60.00
Prakash Stambh	
(Light House) (Cidr)	50.00
Sri Poomananda Teertha Stava	25.00
Prerak Prasang	10.00

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी.जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल, मुम्बई-400006

फोन : (022) 23682055 (समय 11 से 6 बजे तक) मो. : 09619858361

शाखा कार्यालय :

श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन-281121

फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460

अखण्डानन्द सरस्वती

प्रह्लाद-चरित

भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंमें नृसिंह अवतारकी अपनी महिमा है और इस अवतारका हेतु भक्त प्रह्लाद हैं।

जिज्ञासा उठनी स्वाभाविक है कि प्रह्लादमें ऐसी कौन-कौनसी विशेषताएँ हैं कि भगवान्‌को इस दैत्य बालकके लिए अवतार लेना पड़ा।

इस प्रश्नके उत्तरके लिये आपको प्रह्लादके चरित्रके बारेमें जानना होगा, और प्रह्लादका चरित्र श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्री विष्णु पुराण आदि वृहद् ग्रन्थोंमें है। जिसका स्वाध्याय आपके लिये भाषाकी क्लिष्टताके कारण दुरुह तथा श्रमसाध्य हो सकता था; परन्तु परमपूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वतीने उपर्युक्त दोनों ग्रन्थोंको अपने सरल प्रवचनमें सम्मिलित करते हुये मुम्बईके अनेक श्रोताओंको भगवद्भावसे विभोर कर दिया। वही प्रवचन अब सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्टके माध्यमसे पाठकोंको उपलब्ध है।

चूँकि प्रह्लाद-चरित एक भक्तका चरित है और हमारे महाराजश्री स्वयं भी भक्त तथा प्रवचन भी भक्तोंके मध्य हुये अतएव ऐसा मानना है कि यह ग्रन्थ पाठकके हृदयमें भक्त भावका जागरण करा भगवद्चरणानुरागी बना देगा।

आनन्द कानन प्रेस